ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ॐ खम् ब्रह्म ॥
जो आदित्य पुरुष (ईश्वर) है, वह मैं हूँ। ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है ॥

स्वामी शरण कृत

यजुर्वेद एकादशी

(एकादशोपनिषद्, बृहद् ईशोपनिषद्)

सरल पाठ, मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ सहित

प्रकाशक :

पालीवाल प्रकाशन

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

गायत्री साहित्य केन्द्र

पालीवाल भवन, 117/एच-1/02, पाण्डु नगर,
जे. के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005
वेबसाइट - **vedayan.simplesite.com**
मो. 9839105629, 8687849004, 7985402016

मूल्य : पाँच सौ रुपये मात्र

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ॐ खम् ब्रह्म ॥
जो आदित्य पुरुष (ईश्वर) है, वह मैं हूँ। ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है ॥

पुस्तक	:	**यजुर्वेद एकादशी**
लेखक	:	स्वामी शरण
सर्वाधिकार	:	लेखकाधीन
संस्करण	:	प्रथम, 2016 ई.
		(मकर संक्रान्ति, 2072 वि., 5117 युगाब्द)
मूल्य	:	रु. 500/—
प्रकाशक	:	पालीवाल प्रकाशन
मुद्रक	:	पालीवाल प्रकाशन

पालीवाल भवन, 117/एच-1/02, पाण्डु नगर,
जे. के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005
वेबसाइट - vedayan.simplesite.com
मो. **9839105629, 8687849004, 7985402016**

YAJURVED EKADASHI
BY SWAMI SHARAN

मूल्य : पाँच सौ रुपये मात्र

ॐ

यजुर्वेद एकादशी

(एकादशोपनिषद्, बृहद् ईशोपनिषद्)

सरल पाठ, मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ सहित

विषय सूची

1. प्रथमः अध्यायः	-	वसु-विभागोपनिषद्	09-41
2. द्वितीयः अध्यायः	-	पुरुषोपनिषद्	42-63
3. तृतीयः अध्यायः	-	ब्रह्मोपनिषद्	64-79
4. चतुर्थः अध्यायः	-	देवोपनिषद्	80 -182
5. पञ्चमः अध्यायः	-	शिव-संकल्पोपनिषद्	183-237
6. षष्ठः अध्यायः	-	लोकोपनिषद्	238-256
7. सप्तमः अध्यायः	-	वेदोपनिषद्	257-275
8. अष्टमः अध्यायः	-	जीवनोपनिषद्	276-293
9. नवमः अध्यायः	-	व्यापकोपनिषद्	294-318
10. दशमः अध्यायः	-	समर्पणोपनिषद्	319-331
11. एकादशः अध्यायः	-	ईशोपनिषद्	332-351

ॐ

निवेदन

हमारी मान्यता है कि वेद भगवान् ही हमारे गुरु हैं। वेद ही परमात्मा का शब्द-शरीर तथा प्रत्यक्ष रूप है। वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा भारतीय धर्म - संस्कृति का मूल स्रोत है। वेद का पाठ तथा स्वाध्याय करना हमारा परम धर्म है। हमारी मान्यताएँ, चिन्तन तथा आचार - विचार वेद के अनुकूल होना चाहिए। प्रस्तुत पुस्तक एकादशोपनिषद् (बृहद् ईशोपनिषद्) मूलतः यजुर्वेद का अन्तिम भाग है। इसमें यजुर्वेद के अन्तिम 11 अध्याय (तीस से चालीस) सम्मिलित हैं। यही वेदान्त का आधार है, कह सकते हैं कि यही वास्तव में वेदान्त है। इसका अन्तिम अध्याय कुछ पाठभेद के साथ ईशोपनिषद् के रूप में बहुश्रुत है। इस बृहद् ईशोपनिषद् में एकादश उपनिषद् अथवा अध्याय हैं, अतः इसे एकादशोपनिषद् कहा जाता है।

वेद में सूक्त का गठन महत्वपूर्ण है। वास्तव में वेद में इकाई सूक्त है, मन्त्र उसका अंश है। अतः भाव, विचार, सन्देश को स्पष्ट रूप से समझने के लिए सम्पूर्ण सूक्त को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। मात्र एक मन्त्र को लेकर विचार करने पर भ्रम भी हो सकता है। यद्यपि बहुधा एक मन्त्र अथवा उसका कोई अंश भी अत्यन्त महत्वपूर्ण सन्देश या मार्गदर्शन दे सकता है।

हमने वेद भाष्य में मन्त्रों का सरल पाठ देने के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया है। इसका स्वाध्याय कर लें तो धात्वादि कोश, सरल संस्कृत व्याकरण तथा वैदिक शब्दकोश का उपयोग कर विचारशील परिजन सम्पूर्ण वेद का इसी रूप में प्रामाणिक अर्थ करने में समर्थ हो सकते हैं। सरल पाठ में मन्त्र का सन्धियों से मुक्त पाठ प्रस्तुत किया जाता है। इसका अर्थ है कि पदान्त में अन्य पद की सन्धि नहीं होती है। सरल पाठ में क्रिया विभक्ति अथवा नामिक विभक्ति के पश्चात् कोई शब्द या पद सन्धि के द्वारा नहीं मिलाया जाता है। इसी प्रकार अव्यय आदि शब्दों में जहाँ विभक्ति का लोप होता है, उनके अन्त में भी किसी पद या शब्द या शब्दांश की सन्धि नहीं होती है।

इस प्रकार सरल पाठ में सभी पद पृथक् तथा स्पष्ट होते हैं। वेद मन्त्रों का सरल पाठ जनसाधारण के लिए, विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए वेद पाठ तथा अर्थ समझने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

मन्त्रार्थ में हमने मन्त्र का यथासम्भव शाब्दिक अनुवाद देने का प्रयास किया है। वेदमन्त्र के किस पद के लिए भाषा में किस पद का प्रयोग किया गया है, यह भी पूर्णतः स्पष्ट है। मन्त्र का पद यथावत् देकर भाषा में अर्थ दिया गया है। संस्कृत में बहुधा वर्तमान काल की सहायक क्रियाएं अस्ति (है) आदि का लोप होता है, अर्थात् इनके विना वाक्य पूर्ण हो जाता है। भाषा में इनका प्रयोग आवश्यक होता है। हमने प्रयास किया है कि उनको भी कोष्ठक में दिया जाये जिससे यह स्पष्ठ रहे कि यह शब्द वेदमन्त्र में नहीं है तथा वाक्य पूरा करने के लिए भाषा में लिखना पड़ा है। इसी प्रकार संयोजक शब्दों (अथवा, तथा आदि) भी वाक्य पूर्ण करने के लिए इसी रूप में दिये गये हैं। इस प्रकार हमने मन्त्रार्थ में तटस्थता, निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता तथा प्रामाणिकता का ध्यान रखने का पूर्ण प्रयास किया है। फिर भी यदि कोई भूल-चूक रह गयी होगी तो विद्वानों के मार्गदर्शन के अनुसार भविष्य में संशोधन-परिष्कार किया जा सकता है।

भावार्थ में मन्त्र के भाव तथा सन्देश को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह वेदार्थ नहीं है, भावार्थ है। इसमें हमारे विवेक की सीमा है तथा मतभेद के लिए पर्याप्त अवकाश भी है। इससे वेदमन्त्र तथा वेदार्थ की प्रामाणिकता प्रभावित नहीं होती है। प्रवचनकर्ता इसमें अपने विवेक के अनुसार परिवर्तन-परिष्कार के लिए स्वतन्त्र हैं।

पदार्थ में मुख्यतः धातुज शब्दों में धातु स्पष्ट करना आवश्यक माना गया है। अन्य पदों सर्वनाम, अव्यय, संख्या, उपसर्ग आदि के अर्थ को लेकर कोई मतभेद नहीं है। संज्ञा, विशेषण तथा क्रियाएं धातुज हैं। उनमें धातु स्पष्ट कर देने से वास्तविक शाब्दिक अर्थ स्पष्ट हो जाता है। कुछ धातुएं अनेकार्थी भी होती हैं। मन्त्र में जिस अर्थ की उपयोगिता हो, उसे ग्रहण कर सकते हैं। धातु के एक से अधिक अर्थों के अनुसार भी यदि मन्त्र का अर्थ हो सकता है तो श्लेष के रूप में स्वीकार्य है। इसमें विचारधारा को लेकर कोई दुराग्रह नहीं होना चाहिए।

हमें वेद के विचारों को महत्व देना चाहिए, वेदमन्त्रों का अर्थ अपने विचार के अनुसार करने का दुराग्रह उचित नहीं है। वेदमन्त्रों का सरल स्वाभाविक शाब्दिक अर्थ सभी अध्येता सहज रूप से जानें तथा उसका चिन्तन-मनन कर स्वयम् अपने विवेक के अनुसार विचार विकसित करें। इसके पश्चात् भावार्थ तथा व्याख्या प्रत्येक व्यक्ति अपने विवेक के अनुसार स्वतन्त्र रूप से कर सकता है।

वैदिक भाषा और संस्कृत की संरचना में सूक्ष्म अन्तर मिलता है। वेद में उपसर्ग और धातुएँ संस्कृत से अधिक हैं। विभक्तियों में बहुलता है तथा विकल्प भी स्वीकार्य हैं।

कुछ उपसर्ग और अव्ययों में त्य आदि प्रत्यय जुड़कर नामिक शब्द बन जाते हैं। फिर उनमें नामिक विभक्ति लग जाती है। महर्षि पाणिनि ने एक सूत्र में इस नियम का उल्लेख किया है। इस प्रकार के शब्दों को अपवाद ही कहा जा सकता है। इस प्रकार नि उपसर्ग में त्य प्रत्यय जुड़कर नित्य शब्द बना। जिसका बहुवचन नित्यासः बना। इस शब्द का अर्थ नि उपसर्ग के अर्थ से लिया जायेगा। अतः नित्यासः शब्द का अर्थ निरन्तर बने रहना ही है।

उपसर्ग तथा अन्य अव्यय शब्दों में प्रत्यय जोड़कर नामिक शब्द बनते हैं। ऐसे अव्ययज अथवा निपातज शब्द संज्ञा और विशेषण बन जाते हैं परन्तु उनसे क्रियाएँ नहीं बनतीं अर्थात् उनमें आख्यातिक अथवा क्रिया विभक्तियाँ नहीं जुड़ती हैं। इस प्रकार नामिक अर्थात् संज्ञा विशेषण शब्द दो प्रकार के हैं - धातुज तथा अधातुज अथवा अव्ययज या निपातज। कुछ शब्द ध्वनि के अनुसार होते हैं, जिनकी कोई धातु नहीं होती है। उन्हें ध्वन्यानुसारी शब्द कहते हैं। जैसे - चिश्चा।

वैदिक भाषा और संस्कृत में उपसर्ग और धातुएँ लगभग समान हैं, परन्तु प्रत्यय और विभक्तियाँ में अन्तर मिलता है। वेद में उपसर्ग और धातुएँ संस्कृत से अधिक हैं। विभक्तियों में बहुलता है तथा विकल्प भी स्वीकार्य हैं। जिन शब्दों के क्रिया रूप मिल जाते हैं, उनकी धातु निश्चित है। (सिच्यते - सिच - यजु. 19/15)। हिंसा के भाव वाली धातुओं में गति का भाव निहित होता है तथा

गत्यर्थक धातुओं में जानना, पाना का भाव निहित होता है। वेद को श्रुति भी कहते हैं। प्राचीनकाल में गुरु से सुनकर ही शिष्य ज्ञान प्राप्त करते थे अतः वेद में श्रु-श्रवण धातु का अर्थ जानना, विद्वान होना भी स्वाभाविक रूप से माना जाना चाहिए। श्रवस्यवः आदि शब्द विद्वान्, सुनाने वाले, सुनने वाले के लिए प्रयोग किये गये हैं।

धातु अथवा शब्द के प्रथम स्वर से पूर्व अ लगता है तथा सन्धि हो जाती है। इसे परम्परागत व्याकरण में सन्धि प्रकरण में गुण कहा गया है। इस प्रकार अ जुड़ने को प्रत्यय भी माना जाता है। यदि पहले से अ, आ है तो दोनों मिलकर दीर्घ आ हो जायेंगे, इसी प्रकार इ होने पर ए, उ होने पर ओ हो जाते हैं। उदाहरण के लिए रम् से राम, कम् से काम शब्द बनते हैं। इक प्रयय लगने पर भी ऐसा होता है। वेद में इक प्रत्यय जुड़ने पर वैदिक शब्द बनेगा। वैदिक शब्द का अर्थ है - वेद से उत्पन्न, वेद से सम्बन्धित, वेद से युक्त। यह प्रत्यय स्वार्थ अर्थात् स्वयम् के अर्थ में भी लगता है। इसका अर्थ है कि कम तथा काम शब्द के अर्थ समान होंगे। अग्नि शब्द का अर्थ ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् आदि होता है। वेद में इसी अर्थ में यह शब्द परमात्मा के लिए सर्वाधिक प्रयुक्त है। शब्दार्थ के अनुसार समाज के ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, विद्वान् भी अभिप्रेत हैं। इसी प्रकार वेदमन्त्रों के अनेक अर्थ होते हैं।

लोकभाषा में पञ्चमाक्षर के स्थान पर अनुस्वार (ं) का प्रयोग अधिक होने लगा है। यह अनुचित है। इससे उच्चारण अशुद्ध होता है तथा अर्थ भी अस्पष्ट हो सकता है। हमने अनुस्वार (ं) के स्थान पर क से म तक पञ्चमाक्षर का प्रयोग करने का प्रयास किया है। य, र, ल, व, श, ष, स के पहले आने वाले अनुस्वार (ं) को तालव्य, मूर्धन्य और दन्त्य स्थान के अनुसार शब्द क्रम में रखा गया है। इसी प्रकार ह से पहले आने वाला अनुस्वार (ं) स्वाभाविक रूप से ङ के स्थान पर है। ङ के स्थान पर अनुस्वार (ं) को स्वीकार किया गया है। इससे सभी को सरलता होती है। विसर्ग (:) का उच्चारण स् (सूक्ष्म) अथवा ह् (सूक्ष्म) के रूप में है। अतः इसको शब्दकोश में इसी क्रम में स्थान दिया गया है।

वेदार्थ करने में अनेक विद्वान् अपने विचार को वेद में दर्शाने का प्रयास करते हैं। इसके लिए अनेक शब्द ही नहीं, वाक्यांश तथा कई वाक्य तक वेदमन्त्र का अर्थ करते समय जोड़ देते हैं जिनके लिए कोई शब्द या पद वेदमन्त्र में होता ही नहीं है। इसे अध्याहार कहा जाता है। कहा जाता है कि अध्याहार मन्त्र का अर्थ स्पष्ट करने के लिए दिया जाता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार विद्वान् मन्त्रार्थ के स्थान पर भावार्थ करते हैं। कई विद्वान् तो पदार्थ में भी अध्याहार के नाम पर ऐसी टिप्पणियां तक दे देते हैं जिनको उचित नहीं माना जा सकता है। हम उनकी आलोचना नहीं करना चाहते हैं। उन्होंने जो भी प्रयास किये, उससे ही वेद के अध्ययन को दिशा मिली तथा हम इस प्रकार निष्पक्ष प्रामाणिक वेदार्थ करने का प्रयास कर पा रहे हैं। भविष्य में विद्वान् अधिक उत्तम, निष्पक्ष तथा प्रामाणिक वेदार्थ प्रस्तुत करेंगे, ऐसी आशा - अपेक्षा करना स्वाभाविक है। आशा है कि हमारे सहयोगी इस कार्य को पूर्ण करेंगे। शेष जीवन काल में हमसे जो कुछ बन पड़ेगा, सेवा करने का प्रयास करते रहेंगे।

बुद्ध पूर्णिमा, वैशाख, 2074 वि.

स्वामी शरण

पाण्डु नगर, कानपुर

ॐ

प्रथमः अध्यायः

वसु-विभागोपनिषद्

(1) सूक्त 1

1. देव सवितः प्र सुव यज्ञम्,
प्र सुव यज्ञपतिम् भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतम् नः पुनातु,
वाचस्पतिः वाचम् नः स्वदतु॥ 1 ॥

मन्त्रार्थ- देव - हे देव (दिव्यस्वरूप) **सवितः** - सवित (ऐश्वर्य युक्त और उत्पन्न करने वाले परमात्मन्), **भगाय** - भग (सेवा, दान) के लिये **यज्ञम्** - यज्ञ को **प्र सुव** - उत्पन्न कीजिये, **यज्ञपतिम्** - यज्ञपति को **प्र सुव** - उत्पन्न कीजिये। **केतपूः** - गृह, संवाद को पवित्र करने वाला। **दिव्यो** - दिव्य **गन्धर्वः** - गन्धर्व (प्रगतिशील, विद्वान्) **नः** - हमारे **केतम्** - केत (केत, संवाद) को **पुनातु** - पवित्र करे। **वाचस्पतिः** - वाणी के पोषक-रक्षक **नः** - हमारी **वाचम्** - वाणी को **स्वदतु** - रुचिकर, प्रसन्नता युक्त करे॥ 1॥

भावार्थ - प्रसुव का अर्थ है उत्पन्न करें, ऐश्वर्यवान् करें। कुछ विद्वानों ने प्रेरित करें ऐसा भी अर्थ किया है। यह भावार्थ स्वीकार्य हो सकता है। यजन तथा यजनपति को उत्पन्न करने का भाव व्यक्ति को इसके लिए प्रेरित करना मानना उचित तो हो सकता है, परन्तु वास्तविक अर्थ उत्पन्न करें, ऐश्वर्यवान् करें ही है॥ 1॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - देव (दिव् - तेजस्वी होना)। **सवितः** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **प्र** (उपसर्ग)। **सुव** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **यज्ञम्** (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **यज्ञ-पतिम्** (यज्, पत् - ऐश्वर्य होना)। **भगाय** (सेवा, दान) के लिये (भज् - सेवा, दान करना)।

दिव्यो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। **गन्धर्वः** (गम् + धृ, गम् = जाना, जानना, पाना, धृ = धारण करना)। **केतपूः** (कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना)। **केतम्** (कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना)। **नः** (सर्वनाम)। **पुनातु** (पू - पवित्र करना), **वाचस्पतिः** (वच् - बोलना)। वाचम् (वच्)। **स्वदतु** (स्वद् - स्वाद लेना, रुचिकर होना, तुष्ट होना, प्रसन्न होना)॥ 1॥

2. तत् सवितुः वरेण्यम्,
भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ 2 ॥

मन्त्रार्थ - तत् - वह **सवितुः** - सविता (उत्पादक, ऐश्वर्यवान्) **देवस्य** - देव के। **वरेण्यम्** वरण योग्य। **भर्गो** - भर्ग को अर्थात् भरण, पोषण करने वाले को **धीमहि** - धारण करें। **यो** जो **नः** हमारी **धियो** बुद्धि को प्रचोदयात् प्रेरणा दे॥ 2॥

भावार्थ - भर्गो अर्थात् भर्गः या भर्ग शब्द का अर्थ भरण, पोषण करने वाला होता है। भृ धातु का अर्थ है भरण, पोषण करना। भृज धातु का अर्थ भूँजना होता है। कुछ विद्वानों ने भर्ग शब्द का अर्थ भर्जन करने अर्थात् भूँजने वाला मानकर इसका भावार्थ तेज किया है। दोषों को भूँजने - जलाने वाला तेज अथवा भरण-पोषण करने वाला तेज भी भावार्थ लिया जा सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तत् (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **देवस्य** (दिव् - तेजस्वी होना)। **वरेण्यम्** (वृ - वरण करना)। **भर्गो** (भृ - भरण, पोषण करना)। **धीमहि** (धी - धारण करना, बुद्धि होना)। **यो** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **धियो** (धी = धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना, बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि = धारण करना, युक्त होना)। **प्र** (उपसर्ग)। **चोदयात्** (चुद् - प्रेरणा देना)॥ 2 ॥

3. विश्वानि देव सवितः,
दुरितानि परा सुव।
यत् भद्रम् तत् नः आ सुव॥ 3॥

मन्त्रार्थ - **देव** - हे देव **सवितः** - सवित **विश्वानि** - विश्व के (सभी) **दुरितानि** - बुराइयों को (दुष्ट आचरण वा दुःखों को) **परा सुव** - दूर करें। **यत्** - जो **भद्रम्** - कल्याणकारी (है), **तत्** - वह **नः** - हमारे लिए **आ सुव** - उत्पन्न कीजिये॥ 3॥

भावार्थ - इस मन्त्र में पहले दोषों-दुर्गुणों को दूर करने की भावना है, तत्पश्चात् कल्याणकारी गुणों को धारण करने की कामना है। यदि हम जीवन को कल्याणकारी, शुभ, श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं तो पहले दोषों का त्याग करने का प्रयास करना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **देव** (दिव् - तेजस्वी होना)। **सवितः** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **विश्वानि** (सर्वनाम)। **दुरितानि** (दुः, दुष्, दुर् - दुष्ट आचरण करना)। **परा** (अव्यय)। **सुव** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **यत्** (सर्वनाम)। **भद्रम्** (भदि-भन्द् = सुख होना, शुभ कर्म करना, कल्याण होना)। **तत्** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **आ** (उपसर्ग)॥ 3॥

4. विभक्तारम् हवामहे,
वसोः चित्रस्य राधसः।
सवितारम् नृचक्षसम्॥ 4॥

मन्त्रार्थ- वसोः - वसु के (वासस्थान तथा वास करने वाले लोगों के) **चित्रस्य** - चेतन करने वाले, चित्र स्वरूप (अर्थात् चित्र की भाँति प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट), आश्चर्यस्वरूप, **राधसः** - दान, वृद्धि का **विभक्तारम्** - विभाग करने वाले, **नृचक्षसम्** - नरों को देखने वाले, **सवितारम्** - सविता (उत्पन्न करने वाले) का **हवामहे** - आह्वान करतें हैं॥ 4॥

भावार्थ - परमात्मा की कृपा से हम सभी तथा निवास स्थान चेतन-जीवन्त हैं, दिव्यचित्रस्वरूप हैं, कहना चाहें तो कह सकते हैं कि विचित्र अर्थात्

आश्चर्यचकित करने वाले भी हैं। वह हमको यह सबकुछ तथा और भी बहुत कुछ बाँटता है। विभक्तारम् अर्थात् बाँटने वाला पद भी महत्वपूर्ण है। प्रकृति में परमात्मा ने सब कुछ उत्पन्न कर दिया है। उनको वह हमारी पात्रता के अनुसार हममें बाँटता है। इसके लिए वह नरों को देखता रहता है। हमारे कर्म परमात्मा से छिप नहीं सकते हैं।

विशेष - इस प्रथम सूक्त के इन चार मन्त्रों को हम इस ग्रन्थ का मङ्गलाचरण भी कह सकते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में परमात्मा की स्तुति अर्थात् गुण-कीर्तन किया गया है। इसमें परमात्मा के उन गुणों को विशेष रूप से स्मरण किया गया है जो इसके मूल सन्देश के वाहक माने जा सकते हैं। विशेष रूप से इस अध्याय में ही समाज में विभिन्न कार्य करने वाले लोगों का विभाजन बताया गया है। स्तुतियों तथा कार्य-विभाजन का संकेत यही है कि हम रुचि तथा क्षमता के अनुसार कार्य का चयन करें, परमात्मा का स्मरण करें तथा अपनी ओर से पूर्ण प्रयास करें तो कार्य की सफलता में सहायता अवश्य प्राप्त होगी।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - **वसोः** (वस् - वसना, निवास करना)। **चित्रस्य** (अर्थात् चित्र की भाँति प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट), आश्चर्यस्वरूप (चित् - चेतन करना या होना, विचार करना, चित्र - चित्र बनाना, आश्चर्य करना)। **राधसः** (रा - दान करना, लेना, राध - निर्णय करना, बढ़ना)। **विभक्तारम्** (भज् - सेवा करना, दान करना, वि उपसर्ग के साथ भज् धातु का अर्थ विभाजन करना, बाँटना भी होता है), **नृचक्षसम्** (नृ- ले जाना, चक्ष - देखना)। **सवितारम्** (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना)। **हवामहे** (ह्वे - बुलाना, आह्वान करना, हु - दान करना, आदान - प्रदान करना)॥ 4॥

(2) सूक्त 2

5. ब्रह्मणे ब्राह्मणम् क्षत्राय राजन्यम्,
मरुद्भ्यो वैश्यम् तपसे शूद्रम्,
तमसे तस्करम् नारकाय वीरहणम्,

पाप्मने क्लीबम् आक्रयाया अयोगूम्,
कामाय पुंश्चलूम् अतिक्रुष्टाय मागधम्॥ 5॥

मन्त्रार्थ - ब्रह्मणे ब्रह्म के लिए (परमात्मा तथा वेद के लिए) **ब्राह्मणम्** ब्राह्मण को (वेद तथा ईश्वर के जानने वाले को), **क्षत्राय** क्षत्र अर्थात् ढकने, मारने (रक्षा हेतु) के लिए, **राजन्यम्** राजन्य को (राजकीय कर्मियों को) **मरुद्भ्यो** मरुतों के लिये (मरणशील प्राणियों अर्थात् पशुओं तथा मनुष्यों आदि के लिये) **वैश्यम्** वैश्य को (सूचना, प्रेरणा, प्रवेश करने वाले को), **तपसे** तपस्या के लिए **शूद्रम्** शूद्र को (शुद्धि करनेवाले को), **तमसे** तमस् के लिए (अन्धकार के लिये) **तस्करम्** तस्कर को (चोर को) **नारकाय** नारक के लिए **वीरहणम्** वीरहण को, **पाप्मने** पाप्मन् के लिए (पापाचरण वाले के लिए) क्लीबम् क्लीब को, **आक्रयाया** आक्रय के लिए **अयोगूम्** अयोगु को, **कामाय** कामना के लिए **पुंश्चलूम्** पुंश्चलू को (चलायमान पुरुषों को), **अतिक्रुष्टाय** अतिक्रुष्ट के लिए **मागधम्** मागध को (प्राप्त करें)॥ 5॥

भावार्थ - समाज में विविध प्रकार के कार्यों के लिए विविध योग्यता तथा गुण-कर्म वाले लोगों की आवश्यकता होती है। विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए अपनी रुचि के अनुसार लोग दक्षता प्राप्त करते हैं। समाज को सभी लोगों की आवश्यकता होती है। जो जिस कार्य का वरण कर लेता है, वह उसका वर्ण कहा जाने लगता है। यही वैदिक व्यवस्था है।

विशेष - इस अध्याय में आगे सभी मन्त्रों में इसी प्रकार से विविध प्रकार के कार्यों तथा उनके करने वाले लोगों का उल्लेख है। इन्हें वसु विभाग अर्थात् समाज में वसने वाले तथा वसाने वाले लोगों के विभाग के मन्त्र भी कहा जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ब्रह्मणे (बृह्-बढ़ना)। **ब्राह्मणम्** (बृह्-बढ़ना)। **क्षत्राय** (क्षत्-क्षद् - ढकना, मारना, रक्षा करना), **राजन्यम्** (राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)। **मरुद्भ्यो** (मृ-मरना) **वैश्यम्** (विश्-सूचना देना, प्रेरणा देना, प्रवेश करना)। **तपसे** (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तृषा होना) **शूद्रम्** (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध

होना)। **तमसे** (तम् - इच्छा होना अन्धाकर होना) **तस्करम्** (तस् - रक्षा करना, स्थापना करना, भेजना, उड़ाना)। **नारकाय** (नृ - चलना, ले जाना, विनय होना) **वीरहणम्** (वीर् - वीरता दिखाना, वीर होना, हण् - शब्द करना, कलह करना, हन् - चलना, गति करना, हिंसा करना)। **पाप्मने** (पाप् - पाप करना, दुष्ट आचरण करना) **क्लीबम्** (क्लीब् - कोमल, निर्बल होना)। **आक्रयाया** (क्री-खरीदना, विनिमय करना, जीतना) **अयोगूम्** (अय् - गति करना, शब्द करना, युज् - योग करना, जोड़ना), **कामाय** (काम्-कम् - इच्छा करना, चाहना) **पुंश्चलूम्** (पु - गति करना, रक्षा करना, चलना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, चल् - चलना)। **अतिक्रुष्टाय** (अति - अधिक, बहुत, क्रुश - पुकारना, रोना) **मागधम्** (मग्-लेना, मगध्-घेरना, चाकरी करना)॥ 5॥

6. नृत्ताय सूतम् गीताय शैलूषम्,
धर्माय सभाचरम् नरिष्ठायै भीमलम्,
नर्माय रेभम् हसाय कारिम्,
आनन्दाय स्त्रीषखम् प्रमदे कुमारी-पुत्रम्,
मेधायै रथकारम् धैर्याय तक्षाणम्॥ 6॥

मन्त्रार्थ - नृत्ताय नृत्त (नृत्य) के लिए **सूतम्** सूत को, **गीताय** गीत के लिए **शैलूषम्** शैलूष अर्थात् एकाग्र अभ्यासी को, **धर्माय** धर्म के लिए **सभाचरम्** सभाचर को (सभा में विचरने वाले सभापति, सभासद् को) **नरिष्ठायै** नरिष्ठा (नेतृत्व) के लिए **भीमलम्** भीमल को (भयंकर सामर्थ्य वाले को), **नर्माय** नर्म के लिए (नम्रता, कोमलता के लिए) **रेभम्** रेभ को (स्तुति करने वाले को), **हसाय** हास्य के लिए **कारिम्** कारि को (उपहासकर्त्ता को), **आनन्दाय** आनन्द के लिए **स्त्रीषखम्** स्त्रियों के प्रति सखाभाव अथवा स्त्रियों के समान कोमल सखाभाव वाले को, **प्रमदे** प्रमद के लिए (प्रकृष्ट आनन्द के लिए) **कुमारी-पुत्रम्** कुमारी पुत्र को, **मेधायै** मेधा के लिए **रथकारम्** रथकार को, **धैर्याय** धैर्य के लिए **तक्षाणम्** तक्षाण (शिल्पी) को (प्राप्त करें)॥ 6॥

भावार्थ - धर्म का निर्णय सभा में सभाचर या सभासद् ही कर सकते हैं।

नेतृत्व को निर्बल, कोमल नहीं भयंकर शक्ति-सम्पन्न होना चाहिए। कुमारी का पुत्र आदरणीय है क्योंकि वह सच्चे हार्दिक प्रेम का परिणाम है, किसी औपचारिक सामाजिक कर्तव्य का नहीं। यदि वह बलात्-सम्बन्ध का परिणाम हो तो भी इसमें उस सन्तान का तो कोई दोष नहीं नाना जा सकता है। वेद के इस उदात्त भाव का सम्मान करें, प्रेरणा लें तथा संकीर्ण मान्यताओं से बचकर उदार बनें।।

विशेष - कारिम् का अर्थ है करने वाला। हसाय कारिम् का अर्थ करते समय कारिम् का अर्थ हसाय को ध्यान में रखते हुए हास्य करने वाला किया गया है। इस अध्याय के अन्य मन्त्रों में भी ऐसे प्रयोग मिलेंगे।। 6 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नृत्ताय (नृत्-नृत्य करना, नाचना) **सूतम्** (सू - गति, प्रेरणा, नियमन, ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना)। **गीताय** (गा-गै - गायन करना) **शैलूषम्** (शील - मनन, एकाग्रता, अभ्यास, स्वभाव होना), **धर्माय** (धृ - धारण करना) **सभाचरम्** (स - सहित, उपसर्ग, भा - प्रकाश होना) **नरिष्ठायै** (नृ-ले जाना) **भीमलम्** (भी-भय होना)। **नर्माय** (नृ-ले जाना) **रेभम्** (रभ - आनन्द होना, आरम्भ करना, रा - देना, रि - जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, री - गति करना, झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना), **हसाय** (हस्-हंस् = हंसना, हंसाना, प्रसन्न करना, प्रसन्न रहना, प्रसन्न होना)। **कारिम्** (कृ - करना)। **आनन्दाय** (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, नन्द् - आनन्द पाना, प्रसन्न होना, समृद्ध होना, वृद्धि होना)। **स्त्रीषखम्** (स्तृ - आच्छादित करना, ढकना, सख् = मित्र होना)। **प्रमदे** (प्र - प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग), मद् - आनन्द होना, तृप्त होना, हर्षित होना) **कुमारी-पुत्रम्** (कुम् - चाहना, कुमार - खेलना, पु- गति, रक्षा करना, श्वास लेना)। मेधायै मेधा के लिए (मिध्-मेध् - जानना, समझना, एकत्र करना, हिंसा करना) **रथकारम्** (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना, कृ - करना), **धैर्याय** (धृ-धारण करना, स्थिर रहना) **तक्षाणम्** (तक्ष - आच्छादित करना, छीलना, बोलना, हिंसा करना)।। 6 ।।

7. तपसे कौलालम् मायायै कर्मारम्,
रूपाय मणिकारम् शुभे वपम्,

शरव्याया इषुकारम् हेत्यै धनुष्कारम्,
कर्मणे ज्याकारम् दिष्टाय रज्जुसर्जम्,
मृत्यवे मृगयुम् अन्तकाय श्वनिनम्।। 7 ।।

मन्त्रार्थ - तपसे तपस्या के लिए **कौलालम्** कौलाल को, **मायायै** माया के लिए **कर्मारम्** कर्मार को, **रूपाय** रूप के लिए **मणिकारम्** मणिकार को, **शुभे** शुभ के लिए **वपम्** वपन करने वाले को, **शरव्यायै** शरव्या के लिए (बाणो के लिये) **इषुकारम्** इषुकार को (बाणकर्ता को), **हेत्यै** हेति के लिए **धनुष्कारम्** धनुष्कार को, कर्मणे कर्म के लिए **ज्याकारम्** ज्याकार को (प्रत्यञ्चा निर्माता को), **दिष्टाय** दिष्ट के लिए (अतिरचना के लिये) **रज्जुसर्जम्** रज्जुसर्जक को (रज्जु बनाने वाले को), **मृत्यवे** मृत्यु के लिए **मृगयुम्** मृगयु को (व्याध को) **अन्तकाय** अन्तक के लिए **श्वनिनम्** श्वनिन को (प्राप्त करें)।। 7 ।।

भावार्थ - समाज को कठिन परिस्थितियों के लिए कठोर कार्यों के लिए उस तरह के लोगों की भी आवश्यकता होती है। युद्ध के लिए अस्त्र-शस्त्र भी चाहिए तो दुष्टों को मृत्युदण्ड देने तथा शत्रुओं का अन्त करने के लिए सक्षम पशुपालकों का सहयोग भी लेना है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी निर्वाह करने तथा कार्य करने में सक्षम होते हैं।

विशेष - कुल धातु का अर्थ आवरण करना, एकत्र करना, आत्मीयता-बन्धुत्व भाव से रहना, गणना करना है। तपस्वी में इन गुणों की अपेक्षा है। कर्मारम् का अर्थ है करने वाला। मायायै कारिम् का अर्थ करते समय कारिम् का अर्थ मायायै को ध्यान में रखते हुए माया करने वाला किया गया है। इस अध्याय के अन्य मन्त्रों में भी ऐसे प्रयोग मिलेंगे।। 6 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तपसे (तप - ऐश्वर्य होना, तपना, दाह होना, तृषा होना) **कौलालम्** (कुल् - आवरण करना, एकत्र करना, आत्मीयता-बन्धुत्व भाव से रहना, गणना करना), **मायायै** (मय् - जाना, क्लिष्ट कार्य करना, मा - मापना, शब्द करना) **कर्मारम्** (कृ-करना), **रूपाय** (रूप - रूप बनाना, आकार बनाना) **मणिकारम्** (मण् - शब्द करना), **शुभे** (शुभ् - दीप्ति-प्रकाश होना, शोभा पाना, मङ्गल होना, बोलना) **वपम्** (वप - बीज बोना, उत्पन्न

करना, बुनना, अन्नादि काटना, बाल काटना), **शरव्यायै** (शृ - सुनना, हिंसा करना) **इषुकारम्** (इष् - जाना, बीनना, छानना, चबाना, चाहना), **हेत्यै** (हि - गति, वृद्धि, प्रेरणा करना) **धनुष्कारम्** (धन् - गति, शब्द, उत्पन्न करना), **कर्मणे** (कृ-करना) **ज्याकारम्** (ज्या - वृद्ध होना, जि - जय होना, जीतना), **दिष्टाय** (दिश् - समझाना, देना, अतिरचना करना) **रज्जुसर्जम्** (रज् - रंगना, रमना, लीन होना, रज होना, सूक्ष्म होना), **मृत्यवे** (मृ - मरना) **मृगयुम्** (मृग् - खोजना, मृगया करना, मृज् - मार्जन करना, स्वच्छ करना) **अन्तकाय** (अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना) **श्वनिनम्** (शो - लघु करना, तीक्ष्ण करना)॥ 7 ॥

8. नदीभ्यः पौञ्जिष्ठम् ऋक्षीकाभ्यो नैषादम्,
पुरुषव्याघ्राय दुर्मदम् गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यम्,
प्रयुग्भ्य उन्मत्तम् सर्प देवजनेभ्यो अप्रतिपदम्,
अयेभ्यः कितवम् ईर्यताया अकितवम्,
पिशाचेभ्यो बिदलकारीम्,
यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम्॥ 8 ॥

मन्त्रार्थ- नदीभ्यः नदियों के लिए **पौञ्जिष्ठम्** पौञ्जिष्ठ को **ऋक्षीकाभ्यो** ऋक्षीक के लिए **नैषादम्** नैषाद को (निषाद पुत्र को), **पुरुषव्याघ्राय** पुरुषव्याघ्र के लिए **दुर्मदम्** दुर्मद को, **गन्धर्वाप्सरोभ्यो** गन्धर्वों तथा अप्सराओं के लिए **व्रात्यम्** व्रात्य को, **प्रयुग्भ्य** प्रयुग् के लिए (प्रयोग करने वालों के लिए) **उन्मत्तम्** उन्मत्त को, **सर्प-देवजनेभ्यो** सर्प देवजनों के लिए **अप्रतिपदम्** अप्रतिपद को, **अयेभ्यः** अय के लिए **कितवम्** कितव को, **ईर्यताया** ईर्यता के लिए (कम्पन के लिए) **अकितवम्** अकितव को **पिशाचेभ्यो** पिशाच के लिए (दुष्टाचार करने से जिन की आशा नष्ट हो गई वा रुधिरसहित कच्चा मांस खाने के लिये प्रवृत्त) **बिदलकारीम्** बिदलकारी को (पृथक् पृथक् टुकड़ो को करनेवाली को), **यातुधानेभ्यः** यातुधान के लिए **कण्टकीकारीम्** कण्टकीकारी (कांटे बोने वाली) को (प्राप्त करें)॥ 8 ॥

भावार्थ - आवश्यकता के अनुसार कार्यों में लोगों को नियुक्त करना

चाहिए। उपयोगी कार्यों में कुशल व्यक्तियों को तथा दुष्टों के दमन के लिए उसके अनुकूल रणनीति बनाने में सक्षम लोगों की आवश्यकता होती है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नदीभ्यः (नद् - शब्द करना, झंकार करना, चमकना) **पौञ्जिष्ठम्** (पुञ्ज बनाना, एकत्र होना)। **ऋक्षीकाभ्यो** (ऋक्ष् - काटना, हिंसा करना, प्रकाश करना) **नैषादम्** (नि - उपसर्ग, सद्-षद - बैठना, गति करना, काटना, नष्ट करना), **पुरुषव्याघ्राय** (पु - पवित्र करना, पुर् - अग्रगामी, मुख्य होना, शम् - शमन करना, शान्त होना या करना, वि - उपसर्ग, अघ् - पाप करना) **दुर्मदम्** (दुः - उपसर्ग, मद् - मद होना, हर्ष होना, तृप्त होना, थकना), **गन्धर्वाप्सरोभ्यो** (गन्धर्वः = गतिशीलता, विद्वता को धारण करने वाला, गम् + धृ, गम् = जाना, जानना, पाना, धृ = धारण करना, अप् - पालन करना, सृ - चलना, सरकना)। **व्रात्यम्** (वृत् - वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। **प्रयुग्भ्य** (युज् - एकाग्रचित्त होना, तपस्या करना, मिलना, ज़ोड़ना, घृणा करना) **उन्मत्तम्** (उत् - उपसर्ग, मद् - मद होना, हर्ष होना, तृप्त होना, थकना), **सर्प-देवजनेभ्यो** (सृ - चलना, सरकना, दिव् - तेजस्वी होना, जन् - उत्पन्न करना या होना), **अप्रतिपदम्** (अ-प्रति - उपसर्ग, पद - चलना), **अयेभ्यः** (जाना, शब्द करना) **कितवम्** (कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना)। **ईर्यताया** (ईर - जाना, कम्पन करना, प्रेरणा देना, फेंकना) **अकितवम्** (कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना, अक् - जाना, वक्रगति करना) **पिशाचेभ्यो** (पिश् - जाना, प्रकाश होना, चीरना, टुकड़े करना)। **बिदलकारीम्** (वि - उपसर्ग, दल् - टुकड़े करना), **यातुधानेभ्यः** (या - जाना, यत् - यत्न करना, दुःख देना, छाया-आच्छादन करना, रोकना) **कण्टकीकारीम्** (कण्ट - पीड़ा होना, जाना)॥ 8 ॥

(3) सूक्त 3

9. सन्धये जारम् गेहाय उप पतिम्,
आर्त्यै परिवित्तम् निर्ऋत्यै परिविविदानम्,
अराध्या एदिधिषुः पतिम्, निष्कृत्यै पेशस्कारीम्,

संज्ञानाय स्मरकारीम्, प्रकामोद्याय उपसदम्,
वर्णाय अनुरुधम् बलाय उपदाम्॥ 9॥

मन्त्रार्थ- सन्धये **सन्धि के लिए** जारम् **जार को,** गेहाय **गेह के लिए** उप पतिम् **उपपति को,** आर्त्यै **आर्ति के लिए (पीड़ा के लिये)** परिवित्तम् **परिवित्त को,** निर्ऋत्यै **निर्ऋत्य या ऋतहीन के लिए** परिविविदानम् **परिविविदान को,** अराद्ध्या **अराद्ध्य के लिए** एदिधिषुः पतिम् **एदिधिषृ के पति को,** निष्कृत्यै **निष्कृति के लिए** पेशस्कारीम् **पेशस्कारी को,** संज्ञानाय **संज्ञान के लिए** स्मरकारीम् **स्मरणकारी को,** प्रकामोद्याय **प्रकामोद्य के लिए (उत्कृष्ट कामों से उद्यत हुए के लिये)** उपसदम् **उपसद को (साथी को)**, वर्णाय **वर्ण के लिए (स्वीकार के लिए)** अनुरुधम् **अनुरुध को,** बलाय **बल के लिए** उपदाम् **उपदा को (प्राप्त करें)**॥ 9॥

भावार्थ - मुख्य भाव उचित कार्य के लिए उचित व्यक्ति के चयन का है। यह सम्भव है कि अनेक वैदिक शब्दों के लिए आधुनिक व्यवसाय तथा प्रचलित शब्द का चयन करना कठिन हो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सन्धये **(सम्-धि, सम् - सम्यक्, धि - धारण करना)** जारम् **(जृ - वृद्ध होना, ज्रि - जय होना, वृदध होना)**, गेहाय **(गेह - गति करना, कम्पन करना, हिंसा करना)** उप **(उपसर्ग)** पतिम् **(पत् - ऐश्वर्य होना, पा - पालन करना, रक्षा करना)**, आर्त्यै **आर्ति के लिए (ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति होना, हिंसा करना)** परिवित्तम् **(परि - सब ओर, वित्त - दान करना)**, निर्ऋत्यै **(ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति होना, हिंसा करना)** परिविविदानम् **(परि - सब ओर, वि - विशेष, विद् - जानना)**, अराद्ध्या **(अ - नहीं, राध् - सिद्ध करना, पूरा करना, बढ़ना)** एदिधिषुः **(एध् - बढ़ना, आ-इदि-धिष्, इदि-इन्द् - ऐश्वर्य होना, धि - धारण करना, धिष् - शब्द करना)**, पतिम् **(पत् - ऐश्वर्य होना, पा - पालन करना, रक्षा करना)**, निष्कृत्यै **(निः - उपसर्ग, कृ - करना)** पेशस्कारीम् **(पिश् - जाना, लगना, प्रकाश करना, व्यवस्था करना, चीरना, टुकड़े करना, कृ - करना)**, संज्ञानाय **(सम् -सम्यक्, ज्ञा - जानना)**, स्मरकारीम् **(स्मृ - स्मरण करना,**

कृ - करना), प्रकामोद्याय **(प्र - प्रकृष्ट, काम् - कामना करना, चाहना, उत् - ऊपर, उच्च)** उपसदम् **(उप - समीप, सद् - बैठना)**, वर्णाय **(वृ - वरण करना, स्वीकार करना, वर्ण - वर्णन करना, चमकना)** अनुरुधम् **(अनु - पीछे, रुध् - बढ़ना, गर्व करना, रोकना, चाहना, कृपालु होना)**, बलाय **(बल् - बल होना, जाना, प्राण होना, चेतन होना, रक्षा करना, धान्य सञ्चय करना)** उपदाम् **(उप - समीप, दा - दान करना)**॥ 9॥

10. उत्सादेभ्यः कुब्जम् प्रमुदे वामनम्,
द्वार्भ्यः स्रामम् स्वप्नाय अन्धम्,
अधर्माय बधिरम् पवित्राय भिषजम्,
प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम् आशिक्षायै प्रश्निनम्,
उपशिक्षाया अभिप्रश्निनम्, मर्यादायै प्रश्नविवाकम्॥ 10॥

मन्त्रार्थ - उत्सादेभ्यः **- उत्सादों के लिए (नाश करने को प्रवृत्त हुए के लिए)** कुब्जम् **कुब्ज (क्रोध करने वाले) को,** प्रमुदे **प्रमुद के लिए (प्रबल आनन्द के लिये)** वामनम् **वामन को,** द्वार्भ्यः **द्वाः (द्वारों)के लिए (आच्छादन के लिए)** स्रामम् **स्राम को,** स्वप्नाय **स्वप्न के लिए (निद्रा के लिये)** अन्धम् **अन्ध को (अन्धकार को)**, अधर्माय **अधर्म के लिए** बधिरम् **बधिर को,** पवित्राय **पवित्र के लिए** भिषजम् **भिषज को (वैद्य को)**, प्रज्ञानाय **प्रज्ञान के लिए (उत्तम ज्ञान के लिए)** नक्षत्रदर्शम् **नक्षत्रदर्शक को,** आशिक्षायै **आशिक्षा के लिए (अच्छे प्रकार विद्या ग्रहण के लिये)** प्रश्निनम् **प्रश्निन को (प्रश्नकर्त्ता को)**, उपशिक्षाया **उपशिक्षा के लिए** अभिप्रश्निनम् **अभिप्रश्निन को (सब ओर से बहुत प्रश्न करने वाले को)**, मर्यादायै **मर्यादा के लिए (न्याय अन्याय की व्यवस्था के लिये)** प्रश्नविवाकम् **प्रश्नविवाक (प्रश्नों के विवेचन कर उत्तर देने वाले को (प्राप्त करें)**॥ 10॥

भावार्थ - उत्सादेभ्यः का शब्दार्थ उत्सादों के लिए होगा। उत् उपसर्ग सहित सद् धातु का अर्थ नाश करना भी होता है। अतः इसका अर्थ नाश करने को प्रवृत्त हुए किया गया है। ऐसे लोगों के लिए कुब्ज अर्थात् क्रोध करने वाले

की कामना की गयी है। कुप् धातु का अर्थ कोप करना या क्रोध करना होता है, इसी से कुब्ज शब्द को निष्पन्न माना गया है। द्व (द्वृ) धातु का अर्थ वरण करना, स्वीकार करना, आच्छादन करना होता है। इसका भावार्थ आच्छादन किया है। द्वार्भ्यः का शब्दार्थ द्वाः अर्थात् द्वारों अर्थात् जिसके द्वारा या जिसकी सहायता से कार्य किया जाता है, उसके लिए भी हो सकता है। इसी प्रकार अन्य शब्दों को भी समझने का प्रयास करना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत्सादेभ्यः - **(उत् - उपसर्ग, सद् - बैठना, उत् - साद- नाश करना)**। कुब्जम् **(कुप् - क्रोध करना)**। प्रमुदे **(प्र - उपसर्ग, मुद् - आनन्द होना)** वामनम् **(वा - चलना, गन्ध होना)**, द्वार्भ्यः (द्व–द्वृ – वरण करना, स्वीकार करना, आच्छादन करना) स्रामम् - **(जाना, सरकना)**। स्वप्नाय **(स्वप् - सोना, निद्रा लेना)** अन्धम् **(अन्ध - नेत्र बन्ध करना, अन्धकार होना)**। अधर्माय (अ – नहीं, धृ – धारण करना)। बधिरम् **(बध् - बाँधना, हिंसा करना)**, पवित्राय **(पु - पू - पवित्र होना या करना)** भिषजम् **(भिषज - चिकित्सा करना)**, प्रज्ञानाय **(प्र - उपसर्ग, ज्ञा - जानना)** नक्षत्रदर्शम् **(नक्ष - जाना, आना, पहुंचना, जानना, पाना, दृश् - देखना)**। आशिक्षायै **(आ - उपसर्ग, शिक्ष् - विद्या ग्रहण करना, सीखना, सिखाना)** प्रश्निनम् **(पृष्-पृश् - पूछना, प्रश्न करना, प्रस् - विस्तार करना)**। उपशिक्षाया **(उप =** समीप (उपसर्ग), **शिक्ष् - विद्या ग्रहण करना, सीखना, सिखाना)** अभिप्रश्निनम् **(अभि =** अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा (उपसर्ग), **पृष्-पृश् - पूछना, प्रश्न करना, प्रस् - विस्तार करना)**। मर्यादायै **(मर्याद् - सीमा बनाना, मर्यादा होना या करना, मृ - मरना, मर्य - मरणशील, दा - देना)** प्रश्नविवाकम् **(प्रश्नों का विवेचन करने वाले) को (पृष्-पृश् - पूछना, प्रश्न करना, प्रस् - विस्तार करना,** वच् – बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)॥ 10॥

11. अर्मेभ्यो हस्तिपम् जवाय अश्वपम्,
पुष्ट्यै गोपालम् वीर्याय अविपालम्,
तेजसे अजपालम् इरायै कीनाशम्,

कीलालाय सुराकारम् भद्राय गृहपम्,
श्रेयसे वित्तधम् आध्यक्ष्याय अनुक्षत्तारम्॥ 11॥

मन्त्रार्थ- अर्मेभ्यो - **अर्म के लिए (प्राप्ति कराने वालों के लिये)** हस्तिपम् - **हस्तिप को (हाथियों के रक्षक को)** जवाय - **जव के लिए (वेग के लिए)** अश्वपम् - **अश्वप को (घोड़ों के रक्षक पालक को)**, पुष्ट्यै - **पुष्टि के लिए** गोपालम् - **गोपाल को (गौओं के पालनेवाले को)** वीर्याय - **वीर्य (बल-वीरता) के लिए** अविपालम् - **अविपाल को (भेड़ पालने वाले गड़रिये को)**, तेजसे - **तेजस् के लिए (तेजवृद्धि के लिये)** अजपालम् - **अजपाल को (बकरे बकरियों के रक्षक को)** इरायै **इरा के लिए (अन्नादि के लिए)** – कीनाशम् **कीनाश को (खेतिहर को)**, कीलालाय - **कीलाल के लिए (अन्न के लिये)** सुराकारम् **-सुराकार को (आसवन करने वाले को)** भद्राय - **भद्र के लिए (कल्याण के लिए)** गृहपम् - **गृहपालक को (घरों के रक्षक को)**, श्रेयसे **श्रेयस् के लिए** वितधम् - **वितध को (धन धारण करने वालों को)** आध्यक्ष्याय - **आध्यक्ष्य के लिए (अध्यक्षों के स्वत्व के लिये)** अनुक्षत्तारम् - **अनुक्षत्तार (अनुकूल सारथि) को (प्राप्त करें)**॥ 11॥

भावार्थ - पशुपालकों, कृषकों जैसे समाज के लिए उपयोगी वर्गों का महत्व बताया गया है। ये लोग ही मनुष्य की मौलिक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अर्मेभ्यो **(ऋ - अर् - जाना, जानना, पाना)** हस्तिपम् **(हस् - हँसना, पा - रक्षा करना)** जवाय **(जु - जाना, वेग से जाना, दौड़ना)** अश्वपम् **(अश्-अशु - व्याप्त होना, फैलना, तीव्रता से पहुँचना, पा - रक्षा करना, पालन करना)**, पुष्ट्यै **(पुष् - पोषण करना, धारण करना)** गोपालम् **(गु - शब्द करना, मनन करना, पा - पालन करना)**। वीर्याय **(वीर् - वीर होना, वीरता दिखाना)** अविपालम् **(अव् - रक्षा करना, पा - पालन करना)**, तेजसे **(तिज्-तेज् - प्रभाव होना, चमकाना, तीक्ष्ण करना)** अजपालम् **(अज् - जाना, स्थापना करना, अ - नहीं, जन् - जन्म होना, पाल् - पालन करना)**। इरायै **(इर् - ईर्ष्या करना)** –

कीनाशम् (**कन्-कन्नु - प्रकाश होना**), कीलालाय (**किल् -श्वेत होना, खेलना, कील् - बाँधना, कील लगाना**) सुराकारम् (**सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना**)। भद्राय (**भन्द्-भद्र - कल्याण होना, सुखी होना, शुभ कर्म करना**) गृहपम् (**गृह् - ग्रहण करना, स्वीकार करना, पा - रक्षा करना, पालन करना**), श्रेयसे (**श्री - शोभा होना, सेवा करना**) वित्तधम् (**वित्त - दान करना, धर्म में व्यय करना, धा - धारण करना**)। आध्यक्ष्याय (अधि – अधि = अधिगत, अधिकृत, अधिक, उच्च, ऊपर, पूर्णतः, अधिकार, अक्ष् = खेलना, देखना, व्याप्त होना) अनुक्षत्तारम् (**अनु - अनुकूल, क्षत्-क्षद् - ढकना, मारना, रक्षा करना**)॥ 11॥

(4) सूक्त 4

12. भायै दार्वाहारम् प्रभाया अग्न्येधम्,
ब्रध्नस्य विष्टपाय अभिषेक्तारम्,
वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्, देवलोकाय पेशितारम्,
मनुष्यलोकाय प्रकरितारम्, सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारम्,
अव ऋत्यै वधाय उपमन्थितारम्,
मेधाय वासः पल्पूलीम्, प्रकामाय रजयित्रीम्॥ 12॥

मन्त्रार्थ - भायै **प्रकाश, दीप्ति के लिये**) दार्वाहारम् **दार्वाहार को (काष्ठों को पहुँचाने वाले को)** प्रभाया **प्रभा के लिए (कान्ति शोभा के लिये)** अग्न्येधम्, (अग्नि-एधम्) - **अग्नि वाहक को**), ब्रध्नस्य **ब्रध्न (वाणी, वरणीय) के** विष्टपाय **विष्टप (अभिषेक की रक्षा) के लिए** अभिषेक्तारम् **अभिषेक्ता को (अभिषेक करने वाले को)**, वर्षिष्ठाय **वर्षिष्ठ के लिए** नाकाय **नाक के लिए** परिवेष्टारम् **परिवेष्टा को,** देवलोकाय **देवलोक के लिए** पेशितारम् **पेशितार को,** मनुष्यलोकाय **मनुष्यलोक के लिए** प्रकरितारम् **प्रकरितार को (विक्षेप करने वाले को)**, सर्वेभ्यो **सभी** लोकेभ्य **लोकों के लिए** उपसेक्तारम् **उपसेक्तार को (उपसेचन करने वाले को)**, अव ऋत्यै **अव ऋत्य के लिए (विरुद्ध प्राप्ति जिसमें हो उसके)** वधाय **वध के लिए** उपमन्थितारम् **उपमन्थितार को,** मेधाय

मेधा के लिए वासः - **निवास का** पल्पूलीम् - **शुद्धि को,** प्रकामाय **प्रकाम के लिए (उत्तम कामना के लिये)** रजयित्रीम् **रजयित्री (उत्तम रङ्ग करने वाली) को (प्राप्त करें)**॥ 12॥

भावार्थ - समाज के लिए विविध रूप में उपयोगी सुयोग्य कर्मियों का वर्णन किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - भायै (**भा - प्रकाश होना, चमकना**) दार्वाहारम् (**दृ-द्रि-द्री - आदर करना, हृ - हरण करना, ले जाना, पहुँचाना**) प्रभाया (**प्र - प्रकृष्ट भा - कान्ति, शोभा होना**) अग्न्येधम्, (**अग् - आगे जाना, एध् - वृद्धि करना**)। ब्रध्नस्य (**बृ-ब्री - वरण करना, ब्रु - बोलना, कहना**) विष्टपाय (**विश् - प्रवेश, सूचना, प्रेरणा करना, विष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, पा - पालन करना**) अभिषेक्तारम् (**अभि - उपसर्ग, सीक् - सींचना, अभिषेक करना, विचार करना**)। वर्षिष्ठाय (**वृष् - बरसना, सींचना**) नाकाय (**नश्-नक्क -नाश होना, नक्ष-नक्क-नख् -जाना, नज् - लज्जा होना**) परिवेष्टारम् (**परि - उपसर्ग, विश् - प्रवेश, सूचना, प्रेरणा करना, विष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना**), देवलोकाय (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना, लोक - देखना, बोलना**) पेशितारम् (**पिश् - जाना, चमकना, चूर्ण करना**), मनुष्यलोकाय (**मन् - मनन करना, विचार करना**) प्रकरितारम् (**कृ - विक्षेप करना**)। सर्वेभ्यो (सर्वनाम)। लोकेभ्य (**लोक - देखना, बोलना**) उपसेक्तारम् (**सीक् - सींचना, अभिषेक करना, विचार करना**)। अव ऋत्यै (**अव - उपसर्ग, ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति करना**) वधाय (**वध्-हन् - वध करना, मारना**) उपमन्थितारम् (**उप - उपसर्ग, मन्थ् - मन्थन करना, हिंसा करना, मन् - विचार करना**), मेधाय (**मेधा - शीघ्र समझना, हिंसा करना**) वासः (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना) पल्पूलीम् (**पल्पूल - शुद्ध करना**), प्रकामाय (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, काम् - कामना करना, चाहना)। रजयित्रीम्

(रज् - रंगना, लीन होना)॥ 12 ॥

13. ऋतये स्तेन-हृदयम् वैरहत्याय पिशुनम्,
विविक्त्यै क्षत्तारम् औपद्रष्ट्र्याय अनुक्षतारम्,
बलाय अनुचरम् भूम्ने परिष्कन्दम्,
प्रियाय प्रियवादिनम्, अरिष्ट्या अश्वसादम्,
स्वर्गाय लोकाय भागदुघम्,
वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्॥ 13॥

मन्त्रार्थ- ऋतये **ऋत के लिए** स्तेन हृदयम् **स्तेन हृदय को**, वैरहत्याय **वैरहत्या के लिए** पिशुनम् **पिशुन को,** विविक्त्यै **विविक्ति के लिए (विवेक के लिये)** क्षत्तारम् **क्षत्तार को (ताड़ना से रक्षा करने वाले को)** औपद्रष्ट्र्याय **(उपद्रष्टा के लिये)** अनुक्षतारम् **अनुक्षतार को,** बलाय **बल के लिए** अनुचरम् **अनुचर को** भूम्ने **भूम्ना के लिये (सृष्टि की अधिकता के लिये)** परिष्कन्दम् **परिष्कन्द को (सब ओर से सींचने वाले को)**, प्रियाय **प्रिय के लिए** प्रियवादिनम् **प्रियवादी को**, अरिष्ट्या **अरिष्टय के लिए (कुशल प्राप्ति के लिये)** अश्वसादम् **अश्वसाद को (घोड़ों के चालाने वाले को),** स्वर्गाय **स्वर्ग के लिए** लोकाय **लोक के लिए (देखने वा संचित करने के लिये)** भागदुघम् **भागदुघ को (अशों को पूर्ण करने वाले को),** वर्षिष्ठाय **वर्षिष्ठ के लिए** नाकाय **नाक के लिए** परिवेष्टारम् **परिवेष्टार (सब ओर से व्याप्त विद्या वाले को) (प्राप्त करें)**॥ 13॥

भावार्थ - समाज के लिए विविध रूप में उपयोगी सुयोग्य कर्मियों का वर्णन किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ऋतये **(ऋ - गति, ध्वनि, हिंसा करना, ऋती - निन्दा करना)** स्तेन-हृदयम् (स्तेन् - चुराना, हृ - प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना) वैर-हत्याय **(वै - शोषण होना, शुष्क होना, सूखना, हन् - मारना, हिंसा करना)** पिशुनम् **(पिश् - जाना, प्रकाश होना, चीरना, टुकड़े करना)**, विविक्त्यै **(वि - उपसर्ग, विक् - विवेक होना, तारतम्य देखना, अलग करना)** क्षत्तारम् **(क्षत्-क्षद् - ढकना, मारना, रक्षा करना)** औपद्रष्ट्र्याय **(उप - समीप, दृश् - देखना)** अनुक्षतारम् **(अनु - अनुकूल, क्षत्-क्षद् - ढकना, मारना, रक्षा करना)**, बलाय (बल् - बल होना, जाना, स्पष्ट करना, प्राण होना, चेतन होना, जीना, जीते रहना, रक्षा करना, धान्य सञ्चय करना, द्रव्य को रोकना) अनुचरम् **(अनु - पीछे, चर् - चलना)।**भूम्ने **(भू - होना, प्राप्त होना, एकत्र करना, कल्पना करना)** परिष्कन्दम् **(परि - सब ओर, कन्द् - आनन्द होना, सन्तोष होना, रोना)**, प्रियाय **(प्री - प्रीति करना, तृप्त करना, प्रसन्न करना)** प्रियवादिनम् (प्री = स्नेह करना, प्यार करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, चाहना, **वद् - बोलना)**, अरिष्ट्या **(ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)** अश्वसादम् **(अश्-अशु - व्याप्त होना, फैलना, तीव्रता से पहुँचना, साद् - चलना, बैठना, सूखन, चढ़ाई करना)**, स्वर्गाय **(सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, स्वर् - शब्द करना)** लोकाय **(लोक् - देखना, बोलना)** भागदुघम् **(भज्-भग् - सेव करना, दान करना, अलग करना, दु - जाना, सुगन्ध करना, जलना, जलाना, दुःख होना, दुह् - दुहना)**, वर्षिष्ठाय **(वृष् - बरसना, सींचना, पराक्रमी होना)** नाकाय **(नश्-नक्क - नाश होना, नक्ष-नक्क-नख् -जाना, नज् - लज्जा होना)** परिवेष्टारम् **(परि - उपसर्ग, विश् - प्रवेश, सूचना, प्रेरणा करना, विष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना)**॥ 13॥

14. मन्यवे अयस्तापम् क्रोधाय निसरम्,
योगाय योक्तारम् शोकाय अभिसर्तारम्,
क्षेमाय विमोक्तारम् उत्कूल निकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम्,
वपुषे मानस्कृतम् शीलाय आञ्जनीकारीम्,
निर्ऋत्यै कोशकारीम् यमाय असूम्॥ 14॥

मन्त्रार्थ - मन्यवे **मन्यु के लिए** अयस्तापम् **अयस् को तपाने वाले को,** क्रोधाय **क्रोध के लिए** निसरम् **निसर को (निश्चित या निरन्तर चलायमान**

को), योगाय **योग के लिए (योगाभ्यास के लिये)** योक्तारम्- **युक्त करने वाले को,** शोकाय **शोक के लिए (शोच के लिये प्रवृत्त हुए)** अभिसर्तारम् **अभिसर्तार को (सन्मुख चलने वाले को)**, क्षेमाय **क्षेम के लिए (रक्षा के लिये)** विमोक्तारम् **विमोक्तार को (मुक्त कराने वाले को)** उत्कूलनिकूलेभ्यः **उत्कूल - निकूल के लिए (ऊपर नीचे किनारों पर चढ़ाने उतारने के लिये)** त्रिष्ठिनम् **त्रिष्ठिन को,** वपुषे **वपुष के लिए** मानस्कृतम् **मान करने वाले को** शीलाय **शील के लिए** आञ्जनीकारीम् **आञ्जनीकारी को**, निर्ऋत्यै **निर्ऋत्य के लिए** कोशकारीम् **कोशकारी को,** यमाय **यम के लिए (नियमन के लिये)** असूम् **असू (फेंकने वाले को) (प्राप्त करें)**।। 14 ।।

भावार्थ - समाज के लिए विविध रूप में उपयोगी सुयोग्य कर्मियों का वर्णन किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मन्यवे **(मन् - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना)**, अयस्तापम् (अय – जाना, जानना, पाना, तप – तप्त होना, तप्त करना, ऐश्वर्य होना)। क्रोधाय **(क्रुध् - क्रोध करना)** निसरम् **(नि - निश्चित या निरन्तर, सृ - सरकना, चलना, चलायमान होना)**, योगाय **(युज् - योग करना, जोड़ना)** योक्तारम् **(युज् - योग करना, जोड़ना)** शोकाय **(शुक् - जाना, शुच् - पवित्र होना)**। अभिसर्तारम् **(अभि - सन्मुख, उपसर्ग, सृ - सरकना, चलना)**। क्षेमाय **(क्षि - निवास करना, जाना, जानना, पाना)**। विमोक्तारम् **(वि - उपसर्ग, मुच् - मुक्त करना)**। उत्कूल-निकूलेभ्यः **(उत् - ऊपर, नि - नीचे, कूल - आच्छादित करना)** त्रिष्ठिनम् **(त्रि - तीन, स्था - स्थित होना, ठहरना, बैठना)**, वपुषे **(वप् - बीज बोना, बुनना)** मानस्कृतम् **(मान - पूजा करना, सम्मान करना, श्रेष्ठ होना, शोध करना, कृ - करना)**। शीलाय **(शील् - अभ्यास करना, धारण करना)** आञ्जनीकारीम् **(अञ्ज् - बोलना, जाना, चमकना, स्वच्छ करना, सराहना, विख्यात करना, सजाना)**, निर्ऋत्यै **(नि - उपसर्ग, ऋ - गति करना, ज्ञान, प्राप्ति करना)** कोशकारीम् **(कुश् - आलिङ्गन करना, कुशि - समाधान करना, सहन करना)**। यमाय

(यम - आवरण करना, पोषण करना, नियमन करना)। असूम् **(सू - नियमन करना, प्रेरणा देना)**।। 14 ।।

(5) सूक्त 5

15. यमाय यमसूम्, अथर्वभ्यो अवतोकाम्,
सम्वत्सराय पर्यायिणीम्, परिवत्सराय अविजाताम्,
इदावत्सराय अतीत्वरीम्, इद्वत्सराय अतिष्कद्वरीम्,
वत्सराय विजर्जराम्, सम्वत्सराय पलिक्नीम्,
ऋभुभ्यो अजिनसन्धम्, साध्येभ्यः चर्मम्नम्।। 15 ।।

मन्त्रार्थ- यमाय **यम के लिए (नियमकर्त्ता के लिये)** यमसूम् **यमसू को (नियन्ताओं को उत्पन्न करने वाली को)** अथर्वभ्यो **अथर्वों के लिए** अवतोकाम् **अवतोक को,** सम्वत्सराय **सम्वत्सर के लिए (प्रथम सम्वत्सर के अर्थ)** पर्यायिणीम् **पर्यायिणी को (सब ओर से काल के क्रम को)**, परिवत्सराय **परिवत्सर के लिए** अविजाताम् **अविजात को,** इदावत्सराय **इदावत्सर के लिए** अतीत्वरीम् **अतीत्वरी को (अत्यन्त चलने वाली को)** इद्वत्सराय **इद्वत्सर के लिए** अतिष्कद्वरीम् **अतिष्कद्वरी को (अतिशय जानने वाली को)**, वत्सराय **वत्सर के लिए** विजर्जराम् **विजर्जरा को (वृद्धा को)**, सम्वत्सराय **सम्वत्सर के लिए** पलिक्नीम् **पलिक्नी को (श्वेत केशों वाली को)**, ऋभुभ्यो **ऋभु के लिए (बुद्धिमानों के अर्थ)** अजिनसन्धम् **अजिनसन्ध को (नहीं जोतने योग्य पुरुषों से मेल रखने वाले को)**, साध्येभ्यः **साध्यों के लिए** चर्मम्नम् **चर्मम्न को (प्राप्त करें)**।। 15 ।।

भावार्थ - समाज के लिए विविध रूप में उपयोगी सुयोग्य कर्मियों का वर्णन किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यमाय **(यम - आवरण करना, पोषण करना, नियमन करना)**। यमसूम् **(यम - आवरण करना, पोषण करना, नियमन करना, सु-सू - उत्पन्न करना)**। अथर्वभ्यो **(अ - नहीं, थर्व - अस्थिर होना, हिंसा करना)**। अवतोकाम् **(अव् - रक्षा करना, तु - गति,**

वृद्धि, हिंसा करना)। सम्वत्सराय (**सम् - सम्यक्, वद् - बोलना,** सृ - चलना, सरकना)। पर्यायिणीम् (**परि - आयिणी, परि - सब ओर से, अय् - गति, ज्ञान, प्राप्ति होना, शब्द करना, ध्वनि करना**), परिवत्सराय (**परि- वत्सर, परि - उपसर्ग, वद् - बोलना,** सृ - चलना, सरकना)। अविजाताम् (**अवि - उपसर्ग, अव् - रक्षा करना, जन् - उत्पन्न करना**)। इदावत्सराय (**इदा - उपसर्ग, वद् - बोलना,** सृ - चलना, सरकना) अतीत्वरीम् (**अति - अत्यन्त, त्वरा - तीव्र गति होना, द्रुत चलना**)। इद्वत्सराय (**इत् - उपसर्ग, वद् - बोलना,** सृ - चलना, सरकना)। अतिष्कद्वरीम् (**अति - अतिशय, स्कन्द् - चलना, जाना, जानना, सूखना, स्खद् - जीतना, रक्षा करना**), वत्सराय (**वद् - बोलना,** सृ - चलना, सरकना)। विजर्जराम् (**वि - विशेष, जृ - जीर्ण होना, वृद्ध होना**), सम्वत्सराय (**सम् - सम्यक्, वद् - बोलना,** सृ - चलना, सरकना)। पलिक्नीम् (**पल् - जाना, फलित- पुष्पित होना, फल देना, काटना, गिराना, उढ़ाना, शुद्ध करना**)। ऋभुभ्यो (**ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति होना,भा - प्रकाश होना**)। अजिनसन्धम्` (**अज् - जाना, स्थापना, दौड़ाना, फेकना, सन् - सेवा करना, योग्य होना, दान करना, पूजा करना,सत्कार करना**), साध्येभ्यः (**साध् - निर्णय करना, पूर्ण करना, सिद्ध करना, जीतना, यशस्वी होना, साधना करना**)। चर्मम्नम् (**चर् - चलना, आचरण करना, वीरता दिखाना, प्रयास करना**)॥ 15॥

16. सरोभ्यो धैवरम्, उपस्थावराभ्यो दाशम्,
वैशन्ताभ्यो वैन्दम्, नड्वलाभ्यः शौष्कलम्,
पाराय मार्गारम्, अवाराय केवर्तम्,
तीर्थेभ्य आन्दम्, विषमेभ्यो मैनालम्,
स्वनेभ्यः पर्णकम्, गुहाभ्यः किरातम्,
सानुभ्यो जम्भकम्, पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम्॥ 16॥

मन्त्रार्थ - सरोभ्यो **सरो के लिए** (**बड़े तालाबो के लिये**) धैवरम् **धैवर को**, उपस्थावराभ्यो **उपस्थावर के लिए** (**समीपस्थ के लिए**) दाशम् **दाश अर्थात् दान करने वाले को**, वैशन्ताभ्यो **वैशन्त के लिए** (**छोटे छोटे जलाशयों के लिये**) वैन्दम् **वैन्द को**, नड्वलाभ्यः **नड्वल के लिए** (**नरसल वाली भूमि के लिये**) शौष्कलम् **शौष्कल को** (**मत्स्य जीवी को**), पाराय **पार के लिए** मार्गारम् **मार्गार को** (**व्याध के पुत्र को**), अवाराय **अवार के लिए** (**अपनी ओर आने के लिये**) केवर्तम् **केवर्त को** (**जल में नौका को इस पार उस पार पहुंचाने वाले को**), तीर्थेभ्य **तीर्थ के लिए** (**तरने के साधनों के लिये**) आन्दम् **आन्द को** (**बाँधने वाले को**), विषमेभ्यो **विषम के लिए** मैनालम् **मैनाल को** (**कामदेव को रोकने वाले को**), स्वनेभ्यः **स्वन के लिए** (**शब्दों के लिये**) पर्णकम् **पर्णक को,** गुहाभ्यः **गुहा के लिए** किरातम् **किरात को,** सानुभ्यो **सानु के लिए** जम्भकम् **जम्भक को** (**नाश करने वाले को**), पर्वतेभ्यः **पर्वत के लिए** किम्पूरुषम् **किम्पूरुष को** (**प्राप्त करें**)॥ 16॥

भावार्थ - दाशम् अर्थात् दाश का अर्थ जिसको दिया जाये, ऐसा भी किया गया है। किरात शब्द को लोक व्यवहार में बहेलिये के लिए भी प्रयोग किया जाता है।

विशेष - अन्द् धातु का अर्थ बन्धन (अदि-अन्द् बन्धने) करना होता है। विषम शब्द में विष् धातु मानने पर उसका अर्थ पृथक् करना अथवा व्याप्त होना होगा। इसका अर्थ वि-षम के रूप में करने पर वि उपसर्ग तथा षम् धातु होगी। षम् का मूल शम् या सम् धातु मान सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सरोभ्यो (सृ - चलना, सरकना) धैवरम् (धिव् - प्रेम करना, प्रीति करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, जाना, जानना, पाना)। उपस्थावराभ्यो (उप - समीप, स्था - स्थित होना, ठहरना) दाशम् (दश् = देना), वैशन्ताभ्यो (**विश् - सूचना देना, प्रेरणा देना, प्रवेश करना**)। वैन्दम् (**विन्द् - लाभ होना, प्राप्त होना**), नड्वलाभ्यः (**नड् - अवस्यन्दन होना, टपकना, गिरना, झरना, वल् - आच्छादित करना, अंकुरित होना**) शौष्कलम् (**शूष् - उत्पन्न करना, शुष् - सूखना, सुखाना**), पाराय (**पृ - पूर्ण करना, पालन-पोषण करना, प्रेम करना**) मार्गारम् (**मृग् - अन्वेषण करना, खोजना**), अवाराय (**अव् - रक्षा करना**) केवर्तम् (**केव् - सेवा करना, सिंचन करना,**

घर्षण करना, रिक्त होना)। तीर्थेभ्य (**तृ - तरना, तैरना, उतराना**) आन्दम् (**अदि-अन्द् - बाँधना, बन्धन करना**)। विषमेभ्यो (**विश् - प्रवेश, सूचना, प्रेरणा करना, विष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना, शम् - शमन करना, शान्त करना, प्रसिद्ध करना, सम् - समान होना, बाँटना, श्रम करना, थकना, परिणाम होना**)। मैनालम् (**मी - जाना, जानना, हिंसा करना**), स्वनेभ्यः (**स्वन् - शब्द करना, सजाना**) पर्णकम् (**पर्ण - हरा करना, हरा होना**), गुहाभ्यः (**गुह् - छिपाना, ठकना, जाना, जानना, हिंसा करना**) किरातम् (**कृ - करना, कृ - विक्षेप करना, छिड़कना, वयहानि होना, हिंसा करना**), सानुभ्यो (**सन् - सेवा करना, योग्य होना, मिश्रण करना, अलग करना, दान करना, पूजा करना, सत्कार करना**) जम्भकम् (**जम्भ् - नाश करना, गर्व करना, आलस्य होना**), पर्वतेभ्यः (**पर्व् - पूर्ण करना, विभाग करना**) किम् (**कौन, कि - जानना**), पूरुषम् (**पूर्-पृ - पूर्ण करना, पू - पवित्र करना, पुर् अभिगमन करना**)॥ 16॥

17. बीभत्सायै पौल्कसम्, वर्णाय हिरण्यकारम्,
तुलायै वाणिजम्, पश्चादोषाय ग्लाविनम्,
विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलम्, भूत्यै जागरणम्,
अभूत्यै स्वपनम्, आ ऋत्यै जनवादिनम्,
व्युद्ध्या अपगल्भम्, सम् शराय प्रच्छिदम्॥ 17॥

मन्त्रार्थ - बीभत्सायै **बीभत्सा के लिए** पौल्कसम् **पौल्कस को**, वर्णाय **वर्ण के लिए (सुन्दर रूप बनाने के लिये)** हिरण्यकारम् **हिरण्यकार को (प्रकाश, शब्द करने वाले को)**, तुलायै **तुला के लिए (तोलने के अर्थ)** वाणिजम् **वणिज को**, पश्चादोषाय **पश्चादोष के लिए (पीछे दोष देने के लिए)** ग्लाविनम् **ग्लाविन को (हर्ष को नष्ट करने वाले को)**, विश्वेभ्यो **सभी** भूतेभ्यः **भूतों के लिए (अस्तित्व वाले अर्थात् प्राणियों के लिये)** सिध्मलम् **सिध्मल को (सिद्ध करने वाले को)**, भूत्यै **भूत्य के लिए** जागरणम् **जागरण को (प्रबोध को)**, अभूत्यै **अभूत्य के लिए** स्वपनम् **स्वपन को (सोने को)**, आ

ऋत्यै **आ अर्थात् सम्यक् ऋत्य के लिए** जनवादिनम् **जनवादी को**, व्युद्ध्या **व्युद्ध के लिए (संपत् के बिगाड़ने के लिए)** अपगल्भम् **अपगल्भ को (प्रगल्भतारहित को)**, सम् शराय **सम्यक् शर के लिए** प्रच्छिदम् **प्रच्छिद (अधिक छेदन करने वाले को)(प्राप्त करें)**॥ 17॥

भावार्थ - आ ऋत्यै का शब्दार्थ सम्यक् ऋत्य के लिए होगा। इसका अर्थ हुआ पूर्ण रूप से ऋत के अनुकूल व्यवस्था के लिए। इसका भावार्थ पीड़ा की निवृत्ति के लिये भी किया गया है। ऋत के अनुकूल व्यवस्था से ही पीड़ा की निवृत्ति हो सकती है। इसके लिए जनवादी अर्थात् जनों के हित को ध्यान में रखकर विचार करने वाले मनुष्यों की कामना की गयी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - बीभत्सायै (**भी - डरना**) पौल्कसम् (**पुल् - महत्व होना, पूज्य होना, राशि करना, ढेर करना, गति करना, बनाना**), वर्णाय (**वृ - वरण करना, स्वीकार करना, वर्ण - वर्णन करना, चमकना**) हिरण्यकारम् (**हिरण्य - प्रकाश, शब्द होना, कृ - करना**), तुलायै (**तुल् - तोलना, तुलना करना**) वाणिजम् (**वण् - बोलना, भीड़ होना**), पश्चादोषाय (**पश्च - पीछे, दुष् - दोष देना**) ग्लाविनम् (**ग्लै - हर्ष होना, हर्ष नष्ट होना**), विश्वेभ्यो (सर्वनाम)। भूतेभ्यः (**भू - होना**) सिध्मलम् (**सिध् - पूरा करना, सिद्ध होना, जीत होना, पूर्ण होना, जाना, पठन-पाठन करना, आज्ञा करना, मंगल कार्य करना**), भूत्यै (**भृ - भरण-पोषण, धारण करना**) जागरणम् (**जागृ - जागना, प्रबोध होना**), अभूत्यै (**अ - नहीं, भृ - भरण-पोषण, धारण करना**), स्वपनम् (**स्वप् - सोना, नींद लेना**), आ ऋत्यै (**आ - पूर्ण, सम्यक्, ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति होना, भा - प्रकाश होना**)। जनवादिनम् (**जन् - उत्पन्न होना, वद् बोलना**), व्युद्ध्या (वि = विशेष, विविध, विना, विलोम (उपसर्ग), **ऋध् - बढ़ना**) अपगल्भम् (**अप - उपसर्ग, गल्भ - प्रगल्भ होना, जाना, ज्ञान होना, धैर्य-चातुर्य-साहस होना**), सम् (उपसर्ग), शराय (**शृ - मारना, हिंसा करना**), प्रच्छिदम् (**प्र - प्रकृष्ट, अधिक, छिद् - छेदना, काटना, टुकड़े करना**)॥ 17॥

(6) सूक्त 6

18. अक्षराजाय कितवम्, कृताय आदिनवदर्शम्,
त्रेतायै कल्पिनम्, द्वापराय अधिकल्पिनम्,
आस्कन्दाय सभास्थाणुम्,
मृत्यवे गोव्यच्छम्, अन्तकाय गोघातम्,
क्षुधे यो गाम् विकृन्तन्तम् भिक्षमाणः उपतिष्ठति,
दुष्कृताय चरकाचार्यम्, पाप्मने सैलगम्॥ 18॥

मन्त्रार्थ- अक्षराजाय **अक्षराज के लिए** कितवम् **कितव को,** कृताय **(किये हुए) कृत के लिए** आदिनवदर्शम् **आदिनवदर्श को (आदि में नवीनों को देखने वाले को),** त्रेतायै **त्रेता के लिए** कल्पिनम् **कल्पिन को (प्रशंसित सामर्थ्य वाले को),** द्वापराय **द्वापर के लिए** अधिकल्पिनम् **अधिकल्पिन को (अधिकतर सामर्थ्य युक्त को),** आस्कन्दाय **आस्कन्द के लिए (अच्छे प्रकार सुखाने के लिए)** सभास्थाणुम् **सभास्थाणु को (सभा में युक्त को),** मृत्यवे **मृत्यु के लिए** गोव्यच्छम् **गोव्यच्छ को,** अन्तकाय **अन्तक के लिए** गोघातम् **गोघात को,** क्षुधे **क्षुध के लिए** यो **जो** गाम् **गौ को** विकृन्तन्तम् **विकृन्तन करने वाले को (काटते हुए को)** भिक्षमाणः **भिक्षमाण (भीख मांगता हुआ)** उपतिष्ठति **उपस्थित होता है,** दुष्कृताय **दुष्कृत के लिए (दुष्ट आचरण वाले के लिये)** चरकाचार्यम् **चरकाचार्य को,** पाप्मने **पाप्मन के लिए (पापी के लिए)** सैलगम् **सैलग सैलग को (प्राप्त करें)**॥ 18॥

भावार्थ - इस मन्त्र में कृत, त्रेता, द्वापर शब्द आये हैं। इससे समय को युगों में विभाजन का संकेत माना जा सकता है, परन्तु कलि शब्द नहीं आया है, इससे निश्चित रूप से ऐसा नहीं कहा जा सकता है। युगों के लिए कृत, त्रेता, द्वापर का प्रयोग मानकर मन्त्र का अर्थ करना भी कठिन होगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अक्षराजाय **(अक्ष् - खेलना, देखना,** राज् – दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना) कितवम् **(कित् - निवास करना, रोग दूर करना, शासन करना, नष्ट करना, जानना),**

कृताय **(कृ - करना)** आदिनवदर्शम् **(आदि - प्रारम्भ, नव - नवीन, दर्श् - देखना),** त्रेतायै **(त्रि - तीन, त्रै - पालन, रक्षण करना)** कल्पिनम् **(कल्प् - समर्थ होना, रचना करना, कल्पना करना),** द्वापराय **(द्वा, द्वि - दो)** अधिकल्पिनम् **(अधि - अधिक, कल्प् - समर्थ होना),** आस्कन्दाय **(आ - उपसर्ग, स्कन्द् - गति करना, चलना, सुखाना)** सभास्थाणुम् **(स - सहित, भा - प्रकाश होना, स्था - स्थित होना),** मृत्यवे **(मृ - मरना)** गोव्यच्छम् **(गु - बोलना, मनन करना, वि - विशेष, अच्छ् - गति करना, निर्मल होना, सत्य होना),** अन्तकाय **(अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, समाप्त होना, प्राप्त होना)** गोघातम् **(गु - बोलना, मनन करना, घात्-हन् - हिंसा करना, मारना),** क्षुधे **(क्षुध् - भूख लगना)** यो **(सर्वनाम)** गाम् **(गु - बोलना, मनन करना)** विकृन्तन्तम् **(वि - विशेष, कृन्त् - काटना)** भिक्षमाणः **(भिक्ष् - भीख मांगना)** उपतिष्ठति **(उप - समीप, तिष्ठ् - ठहरना, स्थित होना),** दुष्कृताय **(दुः - अशुभ, दुःखद, कृ - करना)** चरकाचार्यम् **(चरक-आचार्य, चर् - चलना, विचरण करना, आ - समन्तात्, सम्पूर्णता से),** पाप्मने **(पाप् - पाप करना, पाप होना, दुष्कृत्य करना)** सैलगम् **(सिल् - चबाना, बीनना, दाना चुगना)**॥ 18॥

19. प्रतिश्रुत्काया अर्तनम् घोषाय भषम्,
अन्ताय बहुवादिनम् अनन्ताय मूकम्,
शब्दाय आडम्बर आघातम् महसे वीणावादम्,
क्रोशाय तूणवध्मम् अवरस्पराय शङ्खध्मम्,
वनाय वनपम् अन्यतोरण्याय दावपम्॥ 19॥

मन्त्रार्थ- प्रतिश्रुत्काया **प्रतिश्रुत्का के लिए (प्रतिज्ञा करने वाली के लिए)** अर्तनम् **अर्तन को (प्राप्ति कराने वाले को)** घोषाय **घोष के लिए (घोषणा के लिये)** भषम् **भष को (बोलने वाले को),** अन्ताय **अन्त के लिए (समीप वा मर्य्यादा वाले के लिये)** बहुवादिनम् **बहुवादिन को (बहुत बोलने वाले को)** अनन्ताय **अनन्त के लिए (मर्यादा रहित के लिये)** मूकम् **मूक को**

(गूंगे को), शब्दाय **शब्द के लिए** आडम्बराघातम् **आडम्बर पर आघात करने वाले को**, महसे **महस् के लिए (बड़े के लिये)** वीणावादम् **वीणावादी को (वीणा बजाने वाले को)**, क्रोशाय **क्रोश के लिए** तूणवध्मम् **तूणवध्म को (तूण बजाने वाले को)** अवरस्पराय **अवरस्पर के लिए (नीचे के शत्रुओं के अर्थ)** शङ्खध्मम् **शङ्खध्म को (शङ्ख बजाने वाले को)**, वनाय **वन के लिए** वनपम् **वनप को (जङ्गल की रक्षा करने वाले को)**, अन्यतोरण्याय **अन्यतोरण्य के लिए** दावपम् **दावप को (प्राप्त करें)** ॥ 19 ॥

भावार्थ - समाज के लिए विविध रूप में उपयगी सुयोग्य कर्मियों का वर्णन किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रतिश्रुत्काया **(प्रति - उपसर्ग, श्रु - सुनना)** अर्तनम् **(ऋ - जाना, जानना, पाना, शब्द करना, महत्व दिखाना)**।घोषाय **(घुष् - घोषणा करना, शब्द करना, प्रशंसा करना)** भषम् **(भष् - बोलना, कहना, घोषणा करना, निन्दा करना)**, अन्ताय **(अन्त् - अन्त होना, समाप्त होना, बाँधना, पाना, हिंसा करना, अन् - प्राण होना, चेतन होना)** बहुवादिनम् **(बहु - बहुत, वद् - बोलना)**, अनन्ताय (अन् – नहीं, अन्त – अन्त होना, बाँधना, पाना, हिंसा करना)। मूकम् **(मुच् - घर्षण करना, ऐश्वर्य होना, पूजा करना, बोलना, कहना, मुक्त करना, त्याग करना, प्रसन्न होना)**।शब्दाय **(शब्द् - शब्द करना, भाषण करना, प्रकट करना)** आडम्बराघातम् (**आ** = समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग), **अड् - उद्यम करना, प्रयत्न करना, उपयोग करना, व्यापना, फैलना, अपने अधिकार में लाना, डम्ब् - मर्दन करना, अधिक खाना)** महसे **(मह् - पूजा करना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)** वीणावादम् (वीण् – जानना, समझना, चिन्तन करना, सूक्ष्म दृष्टि से देखना, सुनना, वद् – बोलना, स्पष्ट करना, समझाना), क्रोशाय **(क्रुश् - रोना, पुकारना, शब्द करना)** तूणवध्मम् **(तुण - गति करना, अंकुरित होना, कुटिल होना, वक्र होना, वद् - बोलना)**।अवरस्पराय **(अवर - नीचे, स्पृ - प्रीति करना, सेवा करना, चलना, पालना, जाना)** शङ्खध्मम् **(शङ्ख् - सेवा करना, ध्वनि करना)**, वनाय **(वन् - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपदाग्रस्त होना, मिश्रित होना, वर्षा होना, स्मरण करना, अंकुरित होना, याचना करना, उद्योग-व्यापार करना)** वनपम् **(वन् - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपदाग्रस्त होना, मिश्रित होना, वर्षा होना, स्मरण करना, अंकुरित होना, याचना करना, उद्योग-व्यापार करना, पा - पालन करना, रक्षा करना)**

अन्यतोरण्याय **(अन्य - इतर, अरण्य - अ - नहीं, रण् - शब्द करना, चलना, युद्ध करना)** दावपम् **(दा - देना, दु - दव् - जाना, आना,** पा – पालन करना)।।19 ।।

20. नर्माय पुंश्चलूम् हसाय कारिम्,
यादसे शाबल्याम् ग्रामण्यम् गणकम्,
अभिक्रोशकम् तान् महसे वीणावादम्,
पाणिघ्नम् तूणवध्मम्,
तान् नृत्ताय आनन्दाय तलवम् ॥ 20 ॥

मन्त्रार्थ - नर्माय **नर्म के लिए (क्रीड़ा के लिये)** पुंश्चलूम् **पुंश्चलू को**, हसाय **हास्य के लिए** कारिम् **कारि को**, यादसे **यादस के लिए** शाबल्याम् **शाबल्या** ग्रामण्यम् **ग्रामण्य (ग्रामाधीश)** गणकम् **गणक को**, अभिक्रोशकम् **अभिक्रोशक को (सब ओर से बुलाने वाले को)** तान् **उनको** महसे **महस के लिए (सत्कार के अर्थ)** वीणावादम् **वीणावादक को**, पाणिघ्नम् **पाणिघ्न को (हाथों से वादिन बजाने)** तूणवध्मम् **तूणवध्म को (तूणव नामक बाजे को बजाने वाले)** तान् **उनको**, नृत्ताय **नृत्य के लिए (नाचने के लिये)** आनन्दाय **आनन्द के लिए** तलवम् **तलव को अर्थात् ताली आदि बजाने वाले को (प्राप्त करें)** ॥ 20 ॥

भावार्थ - समाज के लिए विविध रूप में उपयोगी सुयोग्य कर्मियों का वर्णन किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नर्माय **(नृ - नम्र होना, चलना, ले जाना)** पुंश्चलूम् **(पुंस् - बढ़ना, बढ़ाना, चल् - चलना, कम्पन करना, खेलना, पालना, बढ़ाना)**, हसाय **(हस् - हँसना, हास्य करना)** कारिम् **(कृ - करना)**, यादसे **(यत् - यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना, दुःख देना, रोकना, एकत्र करना, या - जाना, जानना, पाना, अद् - खाना, नष्ट करना)** शाबल्याम् **(शब् - जाना, आगे जाना)** ग्रामण्यम् **(ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना)** गणकम् **(गण् - गिनना, शब्द करना, नापना, मानना, समझाना,समूह बनाना)**,

अभिक्रोशकम् (**अभि - सब ओर से, क्रुश् - रोना, पुकारना, शब्द करना**) तान् (सर्वनाम)। महसे (**मह् - पूजा करना, पूज्य होना, सत्कार करना, बढ़ना, सम्मान करना**) वीणावादम् (**वीण् - जानना, समझना, चिन्तन करना, सूक्ष्म दृष्टि से देखना, सुनना, बद् - बोलना, स्पष्ट करना, समझाना**), पाणिघ्नम् (**पण् - शब्द करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना, उद्योग-व्यापार करना, व्यवहार करना,** हन्-घ्न - हिंसा करना, हनन करना), तूणवध्मम् (**तुण् - जाना, अंकुरित होना, कुटिल होना, तूण् - पूर्ण करना, भरना, कुटिल होना**) तान् (सर्वनाम), नृत्ताय (**नृत् - नाचना, नृत्य करना**) आनन्दाय (**आ - उपसर्ग, नन्द - आनन्द पाना, प्रसन्न होना, समृद्ध होना, वृद्धि होना**) तलवम् (**तल् - पूर्ण होना, स्थापना करना, सिद्ध करना**)।20।

(7) सूक्त 7

21. अग्नये पीवानम्, पृथिव्यै पीठसर्पिणम्,
वायवे चाण्डालम्, अन्तरिक्षाय वंशनर्त्तिनम्,
दिवे खलतिम्, सूर्याय हर्यक्षम्,
नक्षत्रेभ्यः किर्मिरम्, चन्द्रमसे किलासम्,
अह्ने शुक्लम् पिङ्गाक्षम्,
रात्र्यै कृष्णम् पिङ्गाक्षम्।। 21 ।।

मन्त्रार्थ - अग्नये **अग्नि के लिए** पीवानम् **पीवान को (मोटे पदार्थ को)**, पृथिव्यै **पृथिवी के लिए** पीठसर्पिणम् **पीठसर्पिण को (पीठ अर्थात् आसन को सरकाने में समर्थ अथवा पीठ के बल सरकने वाले को)**, वायवे **वायव के लिए (वायु के लिए)** चाण्डालम् **चाण्डाल को**, अन्तरिक्षाय **अन्तरिक्ष के लिए** वंशनर्त्तिनम् **वंशनर्त्तिन को**, दिवे **दिव के लिए** खलतिम् **खलति को**, सूर्याय **सूर्य के लिए** हर्यक्षम् **हर्यक्ष को**, नक्षत्रेभ्यः **नक्षत्र के लिए** किर्मिरम् **किर्मिर को**, चन्द्रमसे **चन्द्रमा के लिए** किलासम् **किलास को (थोड़े श्वेतवर्ण वाले को)**, अह्ने **अह्न के लिए (दिन के लिये)** शुक्लम् **शुक्ल** पिङ्गाक्षम् **पिङ्गाक्ष को**, रात्र्यै **रात्रि के लिए** कृष्णम् **कृष्ण (आकर्षण या काले रंग वाले)**

पिङ्गाक्षम् **पिङ्गाक्ष को (प्राप्त करें)**।। 21।।

भावार्थ - समाज के लिए विविध रूप में उपयोगी सुयोग्य कर्मियों का वर्णन किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्नये (**अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना**) पीवानम् (**पिव् - सेवा करना, सिंचन करना, बीज बोना, प्रकाश करना, पी - पीना, पीव - पुष्ट होना, मोटा होना**), पृथिव्यै (**पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना**) पीठसर्पिणम् (**पीठ - प्रतिष्ठा होना, बैठना, आसन बनाना, सृप् - जाना, सरकना, सरकाना**), वायवे (**वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना**) चाण्डालम् (**चण्ड - तीक्ष्ण होना, क्रोध करना, दुष्टता करना**), अन्तरिक्षाय (**अन्तः - बीच में, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना**) वंशनर्त्तिनम् (**वंश् - बढ़ना, ऊँचा होना, उठना, ऊपर चढ़ना, नृत् - नाचना, नृत्य करना**), दिवे (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**) खलतिम् (**खल् - संचय करना, चलना**), सूर्याय (**सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना**) हर्यक्षम् (**हर्य - चलना, चमकना, प्रकाशित होना, चाहना, हृ - हरण करना, ले जाना, नाश करना, पाप काटना, अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना**), नक्षत्रेभ्यः (**नक्ष् - जाना, आना, जानना, पाना**) किर्मिरम् (**कृ - करना, कृ - विकीर्ण करना, विखेरना, फेकना, हिंसा करना**), चन्द्रमसे (**चन्द् - चमकना, आनन्द होना, प्रकाश होना, सन्तोष होना**) किलासम् (**किल् - श्वेत होना, खेलना, भेजना, उड़ाना**), अह्ने **अह्न के लिए (अह् - जाना, हिंसा करना, अह्न - व्याप्त होना, विस्तार होना, देना**) शुक्लम् (**शुक्ल - त्याग करना, रचना करना, शुक् - जाना, शुच् - शुद्ध होना**) पिङ्गाक्षम् (**पिङ्क्-पिङ्ग् - रंगना, चमकीला करना, शब्द करना**), रात्र्यै (**रा - दान करना, ग्रहण करना**) कृष्णम् **कृष्ण (कृष् - खींचना, आकर्षण होना)** पिङ्गाक्षम् (**पिङ्क्-पिङ्ग् - रंगना, चमकीला करना, शब्द करना**)।। 21।।

22. अथ एतान् अष्टौ विरूपान् आ लभते
अतिदीर्घम् च, अतिह्रस्वम् च,
अतिस्थूलम् च, अतिकृशम् च,
अतिशुक्लम् च, अतिकृष्णम् च
अतिकुल्बम् च, अतिलोमशम् च।
अशूद्रा अब्राह्मणाः ते प्राजापत्याः।
मागधः पुंश्चली कितवः क्लीबो,
अशूद्रा अब्राह्मणाः ते प्राजापत्याः ॥ 22 ॥

मन्त्रार्थ- अथ **अब** एतान् **इन** अष्टौ **आठ** विरूपान् **विरूपों को (अनेक प्रकार के रूपों वाले)**, आ लभते **सम्यक् प्राप्त करते हैं,** अतिदीर्घम् **अतिदीर्घ को (बहुत बड़े)** च **और,** अतिह्रस्वम् **अतिह्रस्व को (बहुत छोटे)** च **और** अतिस्थूलम् **अतिस्थूल को (बहुत मोटे)** च **और**, अतिकृशम् **अतिकृश को (बहुत दुबले)** च **और** अतिशुक्लम् **अतिशुक्ल को (अतिश्वेत)** च **और,** अतिकृष्णम् **अतिकृष्ण को (बहुत काले)** च **और** अतिकुल्बम् **अतिकुल्ब को (लोमरहित)** च **और,** अतिलोमशम् **अतिलोमश को (बहुत लोमों वाले)** च **और** अशूद्रा **अशूद्र (शूद्रभिन्न)** अब्राह्मणाः **अब्राह्मण (ब्राह्मण भिन्न)** ते **वे** प्राजापत्याः **प्राजापत्य (प्रजापति सम्बन्धी)** मागधः **मागध** पुंश्चली **पुंश्चली (व्यभिचारिणी)** कितवः **कितव (जुआरी)** क्लीबो **क्लीब को (नपुंसक),** अशूद्रा **अशूद्र (अशूद्र)** अब्राह्मणाः **अब्राह्मण (ब्राह्मण से भिन्न)** ते **वे** प्राजापत्याः **प्राजापत्य (है)** ॥ 22 ॥

भावार्थ - इस अध्याय में समाज में विविध प्रकार के लोगों का वर्णन किया गया है तथा यह भी कहा गया है कि ये सभी लोग हमें प्राप्त हों। सभी मनुष्य समान गुण-कर्म-स्वभाव वाले नहीं हो सकते हैं। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि समाज में विविध प्रकार के कार्यों के लिए विविध योग्यता तथा गुण-कर्म वाले लोगों की आवश्यकता होती है। विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए अपनी रुचि के अनुसार लोग दक्षता प्राप्त करते हैं। समाज को सभी लोगों की

आवश्यकता होती है। महत्वपूर्ण संदेश यह है कि हमको सभी तरह के लोगों को अपनाना है, किसी की उपेक्षा, अवहेलना नहीं की जानी चाहिए। कुछ लोग जन्म से शारीरिक रूप से विशेष गुण वाले हो सकते हैं तथा कुछ अपने प्रयासों से बन जाते हैं। सबको अपनायें, यही वैदिक आदर्श है।

विशेष - इस अध्याय में विविध प्रकार के कार्यों तथा उनके करने वाले लोगों का उल्लेख है। वेद-प्रादुर्भाव काल में उन शब्दों का क्या भावार्थ लिया जाता था, यह पूर्णतः समझ पाना कठिन है। भाष्यकारों ने अपने विचार के अनुसार वैदिक शब्दों को विभिन्न व्यवसायों से जोड़ने का प्रयास किया है। वे सभी प्रयास सराहनीय हैं, परन्तु किसी को अन्तिम रूप से सत्य मानना उचित नहीं होगा। व्याकरण परक धातुज अर्थ का ध्यान रखते हुए उन शब्दों से व्यक्त होने वाले कार्यों को समझने का प्रयास करना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हम इतना ही सन्देश ग्रहण कर लें कि समाज अनेक कार्य हैं, अनेक प्रकार के लोग हैं तथा सभी स्वीकार्य, उपयोगी तथा सम्माननीय हैं। विविध अवसरों पर सभी की उपयोगिता - आवश्यकता का अनुभव हमें होता है, उन कार्यों में कुशल लोगों का भी समाजहित में सार्थक उपयोग हो सकता है जिनको सामान्यतः अनुचित माना जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अथ (अव्यय)। एतान् (सर्वनाम)। अष्टौ (अष्ट - आठ, संख्या, अष् - ग्रहण करना, जाना, जानना, पाना, चमकना, प्रकाश करना) विरूपान् (**वि - विशेष, विविध, रूप - आकार बनाना, रचना करना**), आ लभते (**आ - समन्तात, सम्यक्, लभ् - पाना**), अतिदीर्घम् (**अति - बहुत, दीर्घ - बड़े**) च (**अव्यय**), अतिह्रस्वम् (**अति - बहुत, ह्रस्व - अल्प होना, छोटा होना, शब्द करना**) अतिस्थूलम् (**अति - बहुत, स्थूल - पुष्ट होना, स्थूल होना, मोटा होना**) अतिकृशम् (**अति - बहुत, कृश् - सूक्ष्म होना, कृश होना, दुबला होना**) अतिशुक्लम् (**अति - अधिक, शुक्ल - त्याग करना, रचना करना, शुक् - जाना, शुच् - शुद्ध होना**), अतिकृष्णम् (**अति - बहुत, कृष् - खींचना, आकर्षण होना**) अतिकुल्बम् (**अति - बहुत, कुल् -आवरण करना, गणना करना, बन्धुता होना**), अतिलोमशम् (**अति -**

बहुत, लोम् - रोम होना, रोयेंदार होना), अशूद्रा **(अ - नहीं, (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना)।** अब्राह्मणाः **(अ - नहीं, बृह्-बढ़ना)** ते (सर्वनाम)। प्राजापत्याः **(प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)** मागधः **(मग्-लेना, मगध्-घेरना, चाकरी करना)** पुंश्चली **(पुंस् - बढ़ना, बढ़ाना, चल् - चलना, कम्पन करना, खेलना, पालना, बढ़ाना)**, कितवः **(कित् - निवास करना, रोग निवारण करना, केत - सम्मुख वार्ता करना, आमन्त्रण करना, अक् - जाना, वक्रगति करना)** क्लीबो **(क्लीब् - कोमल, निर्बल होना)।**अशूद्रा **(अ - नहीं, (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना)।**अब्राह्मणाः **(अ - नहीं, बृह्-बढ़ना)** प्राजापत्याः **(प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)**।।22।।

इति प्रथमः अध्यायः

ॐ

द्वितीयः अध्यायः

पुरुषोपनिषद्

(8) सूक्त 1

23. सहस्रशीर्षा पुरुषः,
सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिम् सर्वत स्पृत्वा,
अति अतिष्ठत् दशाङ्गुलम्।। 1 ।।

मन्त्रार्थ - सहस्रशीर्षा हजारों शिरों वाला **पुरुषः** पुरुष (सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक परमात्मा), **सहस्राक्षः** हजारों नेत्र वाला, **सहस्रपात्** हजारों पाद अर्थात् पैरों वाला (है)। **स** वह **भूमिम्** भूमि को **स्पृत्वा** स्पर्श करते हुए (सब ओर से व्याप्त) **दशाङ्गुलम्** दश अंगुल **अति अतिष्ठत्** अधिक होकर स्थित है **।। 1 ।।**

भावार्थ - परमात्मा अनादि-अनन्त है। प्रतीकात्मक रूप से कहा जाता है कि उसके अनन्त शिर, अनन्त हाथ, अनन्त नेत्र, अनन्त पैर आदि हैं। वह सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होने के साथ ही उससे भी अधिक है। परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि से भी अधिक विराट है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सहस्रशीर्षा हजारों शिरों वाला (सहस्र - हजार, शीर्ष - शीर्ष होना, उच्च होना, मुख्य होना) **पुरुषः** पुरुष (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना), **सहस्राक्षः** हजारों नेत्र वाला (अक्ष् - देखना, खेलना), **सहस्रपात्** हजारों पाद अर्थात् पैरों वाला (पद् - चलना, पत् - चलना, ऐश्वर्य होना)। **स** = वह, उसने (सर्वनाम)। **भूमिम्** भूमि को (भू - होना) **स्पृत्वा** पालन, स्पर्श करते हुए (स्पृ - प्रीति करना, पालन करना, सेवा करना, जाना, स्पृश् - छूना, कम्पन करना) **दशाङ्गुलम्** दश अंगुल (दश - दस, अङ्ग - चलना, अंकुरित होना,

अंग होना, अवयव होना) **अति** = बहुत, अत्यधिक (उपसर्ग, अव्यय)। **अतिष्ठत्** स्थित है (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, तिष्ठ् - ठहरना, स्थित होना)॥ 1 ॥

24. पुरुष एव इदम् सर्वम्,
यत् भूतम् यत् च भाव्यम्।
उत अमृतत्वस्य ईशानो,
यत् अन्नेन अति-रोहति॥ 2 ॥

मन्त्रार्थ - इदम् यह **सर्वम्** सब (समस्त जगत्), **यत्** जो **भूतम्** उत्पन्न हुआ **यत्** जो **च** और **भाव्यम्** उत्पन्न होने वाला (है), **पुरुष** पुरुष अर्थात् परिपूर्ण परमात्मा **एव** ही (है)। **उत** ही **अमृतत्वस्य** अमृतत्व का (अमरता का) **ईशानो** शासन करता हुआ **यत्** जो अन्नेन = अन्न द्वारा **अति-रोहति** अत्यन्त बढ़ता है॥ 2 ॥

भावार्थ - जो कुछ है, जो भविष्य में हो सकता है, वह सबकुछ पुरुष अर्थात् परिपूर्ण परमात्मा ही है, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। वही अमृतत्व अर्थात् अमरता का शासक है, उसके अतिरिक्त सबकुछ मरणशील है, नाशवान् है। विभिन्न रूपों में वहीं वृद्धि कर रहा है, शेष सभी तो नाशवान् हैं, क्षरणशील हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इदम् (सर्वनाम)। **सर्वम्** (सर्वनाम)। **यत्** (सर्वनाम)। **भूतम्** (भू - होना, उत्पन्न होना) **च** (अव्यय)। **भाव्यम्** (भू - होना, उत्पन्न होना), **पुरुष** (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना), **एव** (अव्यय)। **उत** (अव्यय, निपात)। **अमृतत्वस्य** (अ - नहीं, मृ - मरना) **ईशानो** (ईश - अधिकार होना, शासक होना) **अन्नेन** (अन - जीवन होना, प्राणवान् होना, समर्थ होना, जाना, अद् = खाना)। **अति-रोहति** (अति - अधिक, रुह् - जन्म होना, बढ़ना, चढ़ना)॥ 2 ॥

25. एतावान् अस्य महिमा,
अतो ज्यायान् च पूरुषः।

पादो अस्य विश्वा भूतानि,
त्रिपाद् अस्य अमृतम् दिवि॥ 3 ॥

मन्त्रार्थ - एतावान् यह (दृश्य अदृश्य ब्रह्मण्ड) **अस्य** इसका (परमात्मा का) **महिमा** महिमा है, **अतो** इससे **ज्यायान्** अति प्रशंसित और बड़ा **च** और **पूरुषः** परिपूर्ण परमात्मा (है)। **पादो** पाद को (अंश) **अस्य** इसका **विश्वा** सब **भूतानि** सृष्टि एक, **त्रिपाद्** तीन पाद (तीन अंश) **अस्य** इसका **अमृतम्** अमृत **दिवि** दिव (द्योतनात्मक स्वरूप) में (है)॥ 3 ॥

भावार्थ - सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा का ही महत्व प्रकट कर रही है। सम्पूर्ण सृष्टि तो मात्र एक पाद या अंश है, तीन अंश तो सृष्टि से परे उससे भी अधिक केवल परमात्मा ही है। परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त तो है ही, उससे भी कई गुना अधिक विराट रूप परमात्मा का है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - एतावान् (सर्वनाम)। **अस्य** (सर्वनाम)। **महिमा** (मह् - महत्व होना, पूज्य होना) है, **अतो** (अव्यय)। **ज्यायान्** (ज्या - ज्येष्ठ होना, बड़ा होना, वृद्ध होना) **च** (अव्यय), **पूरुषः** (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना), **पादो** (पद् - चलना, भूषित होना) **विश्वा** (सर्वनाम) **भूतानि** (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना) **त्रिपाद्** (त्रि - तीन, पद् - चलना, भूषित होना) **अमृतम्** (अ - नहीं, मृ - मरना) **दिवि** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)॥ 3 ॥

(9) सूक्त 2

26. त्रिपात् ऊर्ध्व उत् ऐत् पुरुषः,
पादो अस्य इह अभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् वि अक्रामत्,
साशनानशने अभि॥ 4 ॥

मन्त्रार्थ- अस्य **इसका (परमात्मा का)** त्रिपात् **तीन पाद (अंश)** ऊर्ध्व

ऊपर या उच्च अवस्था उत् ऐत् **प्राप्त है।** पुरुषः **पुरुष (परमात्मा),** पादो **पाद (एक भाग)** इह **यह (सृष्टि)** अभवत् **हुआ** पुनः **फिर।** ततो **इसके अनन्तर** विष्वङ् **विश्व अथवा व्याप्त** वि अक्रामत् **विशेष रूप से प्राप्त हुआ,** साशनानशने **खाने वाले और न खाने वाले** अभि **प्रति**॥ 4॥

भावार्थ - परमात्मा का तीन पाद या अंश तो उच्च अवस्था अर्थात् शुद्ध स्वरूप में अवस्थित रहता है, केवल एक पाद या अंश ही सृष्टि के रूप में व्यक्त होता है। इस एक पाद में खाने वाले तथा न खाने वाले सभी रूप सम्मिलित हैं। साशन तथा अनशन अर्थात् खाने वाले और न खाने वाले, इसका एक भावार्थ तो यह है कि भोजन कर जीवन यापन करने वाले अर्थात् जीव तथा विना भोजन के रहने वाले अर्थात् निर्जीव पदार्थ। सामाजिक दृष्टि से इसका भावार्थ खाने वाले, नष्ट करने वाले, अन्य लोगों अधिकार या भाग छीनने वाले दुर्जन तथा सहजता से सरल जीवन जीने वाले सज्जन। इस प्रकार से अन्य तर्कसंगत भावार्थ भी लिये जा सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अस्य (सर्वनाम)। त्रिपात् **(त्रि - तीन, पद् - चलना, भूषित होना)** ऊर्ध्व (सर्वनाम)। उत् (अव्यय)। ऐत् **(इ - जाना, जानना, पाना)।** पुरुषः **(पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना),** पादो **(पद् - चलना, भूषित होना)** इह (सर्वनाम)। अभवत् (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। पुनः (अव्यय)। ततो (सर्वनाम)। विष्वङ् **(विष्-विविष् - व्याप्त होना)** वि अक्रामत् **(वि -** विशेष, विविध, विना, विलोम (उपसर्ग), अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, **क्रम् - चलना, निर्भयता से जाना, रक्षा करना),** साशनानशने **(स-अशन-अन्-अशन्, स - सहित, साथ, अश् - खाना, अन् - नहीं)** अभि (उपसर्ग)॥ 4॥

27. ततो विराट् अजायत्, विराजो अधि पूरुषः। स जातो अति अरिच्यत्, पश्चात् भूमिम् अथो पुरः॥ 5॥

मन्त्रार्थ- ततो **उससे, उसके अनन्तर** अधि **अधिष्ठाता** पूरुषः **पुरुष (परमात्मा) से** विराट् **विराट (ब्रह्माण्ड रूप परमात्मा)** विराजो **विराज अर्थात् विशेष तेज या ज्योति अथवा ऊर्जा** अजायत् **उत्पन्न हुआ।** स **उसने**

पश्चात् **पीछे** भूमिम् **भूमि को** अति अरिच्यत् **अतिशय रचा** अथो **इसके अनन्तर** पुरः **पुरों अर्थात् शरीरों या वन, ग्राम, नगर आदि** जातो **उत्पन्न हुआ**॥ 5॥

भावार्थ - इस मन्त्र से पूर्व यह स्पष्ट किया जा चुका है कि परमात्मा का एक अंश ही सम्पूर्ण सृष्टि के रूप में व्यक्त हुआ है। इस मन्त्र में सृष्टि के सृजन का क्रम या प्रक्रिया बतायी जा रही है। सर्वव्यापी परम चेतन स्वरूप परमात्मा से सबसे पहले विराट् तेज उत्पन्न हुआ। उसके पश्चात् उस विराट् तेज से भूमि तथा पुर उत्पन्न हुए। पुर शब्द का अर्थ अभिगमन होता है। सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग अभिगमन के आधारभूत माध्यम या लक्ष्य जीव शरीर, ग्राम नगर आदि के अर्थ में होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ततो (सर्वनाम) अधि (उपसर्ग)। पूरुषः **(पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना),** विराट् **(वि - विशेष, राज् - चमकना, शोभित होना, तेज होना),** विराजो **(वि - विशेष, राज् - चमकना, शोभित होना, तेज होना)** अजायत् (अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, **जन् - उत्पन्न होना)।** स (सर्वनाम) पश्चात् = पीछे या पश्चिम दिशा से। भूमिम् **(भू - होना)** अति अरिच्यत् **(अति =** बहुत, अत्यधिक (उपसर्ग, अव्यय), अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, **रिच् - एकत्र करना, जोड़ना, फैलाना, अलग करना)** अथो (अव्यय)। पुरः **(पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना),** जातो **(जन् - उत्पन्न होना)**॥ 5॥

28. तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः, सम्भृतम् पृषदाज्यम्। पशून् तान् चक्रे वायव्यान्, आरण्या ग्राम्याः च ये॥ 6॥

मन्त्रार्थ - **(परमात्मा ने)** तस्मात् **उस** सर्वहुत **सब को दान अथवा आह्वान करने वाले** यज्ञात् **यजन से** पृषदाज्यम् **पृषद् तथा आज्य अर्थात् अभिसिञ्चन, स्थापन, गमन में समर्थ (पदार्थ या ऊर्जा)** सम्भृतम् **सम्यक् भरण किया अर्थात् भलीभाँति भर दिया।** तान् **उन** पशून् **पशुओं को** वायव्यान्

वायव्य, आरण्याः **वन के** च **और** ये **जो** ग्राम्याः **ग्रामों वाले** चक्रे **(उत्पन्न) किया**॥6॥

भावार्थ - परमात्मा ने जो सृष्टि रचना रूपी यजन प्रारम्भ किया, उस यजन से जीवन-यापन के लिए अनुकूल साधन उत्पन्न हुए। उसके पश्चात् वन तथा ग्रामों में रहने वाले पशु उत्पन्न हुए। मनुष्य सहित सभी पशु अर्थात् देखने में समर्थ प्राणी या जीवों की उत्पत्ति से पूर्व उपयोगी भूमि, जल, वनस्पति आदि उत्पन्न हो गये, तभी विकसित जीवन का अस्तित्व सम्भव हो सका।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तस्मात् (सर्वनाम)। सर्वहुत **(सर्व - सब, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना)** यज्ञात् **(यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)** पृषदाज्यम् **(पृष् - जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना, अज् - स्थापन, गमन, प्रक्षेपण करना)** सम्भृतम् **(सम् - सम्यक्, भलीभाँति, भृ - भरना)**। तान् (सर्वनाम)। पशून् **(पश् - देखना)** वायव्यान् **(वा - गति करना, बहना, पवन-सा चलना)**, आरण्याः **(अरण्य, अ - नहीं, रण् - शब्द करना, चलना, युद्ध करना)** च **(अव्यय)** ये (सर्वनाम) ग्राम्याः **(ग्राम - बुलाना, बुद्धिपूर्वक कहना, एकत्र होना)** चक्रे **(कृ - करना)**॥6॥

(10) सूक्त 3

29. तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः, ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्, यजुः तस्मात् अजायत॥ 7॥

मन्त्रार्थ - तस्मात् **उससे** सर्वहुतः **सब को दान अथवा आह्वान करने वाले** यज्ञात् **यजन से** ऋचः **ऋचायें (ऋग्वेद के मन्त्र)** सामानि **साम (सामवेद के मन्त्र)** जज्ञिरे **उत्पन्न हुए।** तस्मात् **उससे** छन्दांसि **छन्द (सभी छन्द अथवा विशेष रूप से अथर्ववेद के मन्त्र)** जज्ञिरे **उत्पन्न हुए,** यजुः **यजुः या यजुष् (यजुर्वेद के मन्त्र)** तस्मात् **उससे** अजायत **उत्पन्न हुए**॥7॥

भावार्थ - सम्यक् दृष्टि-सम्पन्न जीव, विशेष रूप से मनुष्य के अस्तित्व में आने पर उसको समुचित ज्ञान तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता थी। इसके लिए परमात्मा ने वेदों को उत्पन्न किया। वेदों का सृजन कैसे हुआ तथा मनुष्य

को कैसे प्राप्त हुए, यह गम्भीर चिन्तन तथा शोध का विषय है। माना जा सकता है कि जीवों में चेतनशक्ति तो परमात्मा की चेतना ही है, अतः आदि मानवीय सृष्टि के सरल पवित्र मनुष्य उस परम चेतन सत्ता परमात्मा की चेतना से एकात्म स्थापित कर उस वेद ज्ञान को प्राप्त कर सके होंगे।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तस्मात् (सर्वनाम)। सर्वहुत **(सर्व - सब, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना)** यज्ञात् **(यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)** ऋचः **(ऋच् - स्तुति करना, चमकना, आच्छादित करना)** सामानि **(साम - सान्त्वना देना, शान्त करना, समाधान करना)** जज्ञिरे **(जन् - उत्पन्न होना)**। छन्दांसि **(छन्द - बल-प्राण होना, आच्छादन करना)** जज्ञिरे **(जन् - उत्पन्न होना)**। यजुः **(यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)** अजायत **(जन् - उत्पन्न होना)**॥7॥

30. तस्मात् अश्वा अजायन्त, ये के च उभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्, तस्मात् जाता अजावयः॥ 8॥

मन्त्रार्थ- च **और** तस्मात् **उससे** ये **जो** के **कोई** उभयादतः **दोनों ओर खाने वाले** अश्वा **अश्व (घोड़े)** अजायन्त **उत्पन्न हुए,** तस्मात् **उससे,** ह **ही** गावो **गौ** जज्ञिरे **उत्पन्न हुए।** तस्मात् **उससे** अजावयः **बकरी भेड़** जाता **उत्पन्न हुए**॥8॥

भावार्थ - जिस तरह परमात्मा ने वेद का ज्ञान सभी के कल्याण के लिए दिया, उसी प्रकार अश्व, गौ, भेड़-बकरी आदि भी प्रकृति के संरक्षण तथा संतुलन के लिए उपयोगी सृष्टि हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - च **(अव्यय)**, तस्मात् (सर्वनाम)। ये (सर्वनाम) के (सर्वनाम)। उभयादतः **(उभय - दोनो, अद् - खाना, खिलाना, नष्ट करना)** अश्वा **(अश् - व्याप्त होना, पाना, पहुँचना, संग्रह करना, ढेर करना)** अजायन्त **(जन् - उत्पन्न होना)**। ह (अव्यय)। गावो **(गु - बोलना, मनन करना)** जज्ञिरे **(जन् - उत्पन्न होना)**। अजावयः **(अज - अवयः, अज् - स्थापन, गमन, प्रक्षेपण करना, अव् - रक्षा करना)** जाता **(जन् - उत्पन्न होना)**॥8॥

31. तम् यज्ञम् बर्हिषि प्र औक्षन्, पुरुषम् जातम् अग्रतः।
तेन देवा अयजन्त, साध्या ऋषयः च ये॥ 9॥

मन्त्रार्थ – तम् **उस** अग्रतः **अग्रणी (सबसे आगे या पूर्व)** जातम् **उत्पन्न (प्रसिद्ध)** यज्ञम् **यज्ञ को (सम्यक् पूजने योग्य)** पुरुषम् **पुरुष को (पूर्ण परमात्मा को)** बर्हिषि **श्रेष्ठता-प्रधानता में, प्रयास में (श्रेष्ठ प्रयासों में)** प्र औक्षन् **सींचते (अर्थात् धारण करते) हैं।** तेन **उससे** ये **जो** देवा **देवगण (विद्वान्),** साध्या **साध्यगण** च **और** ऋषयः **ऋषिगण** अयजन्त **यजन (पूजन-दान) करते है**॥ 9॥

भावार्थ - वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। सबसे पहले ज्ञान वेद से ही मिला। यह तथ्य पूर्व मन्त्र में बताया जा चुका है। उससे ही देवगण अर्थात् दिव्यगुणों तथा विद्या से युक्त श्रेष्ठजन, साध्यजन तथा ऋषि यजन अर्थात् पूजन, दान तथा संगठन के सामाजिक कार्य करते हैं। बर्हिषि का अर्थ श्रेष्ठता–प्रधानता में तथा प्रयास में होता है। अतः इसका पदार्थ श्रेष्ठ प्रयासों में मानता उपयुक्त है। अनेक विद्वानों ने इसका भावार्थ मानस ज्ञान यज्ञ में किया है। ऐसा भावार्थ लेना उचित ही कहा जा सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) – तम् **(सर्वनाम)** अग्रतः **(अग् - जाना, आगे जाना)** जातम् **(जन् - उत्पन्न होना)** यज्ञम् **(यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)** पुरुषम् **(पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना),** बर्हिषि **(बर्ह् - श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना)** प्र औक्षन् **(प्र - प्रकृष्ट, उक्ष् - सिंचन करना, स्वच्छ करना)।** तेन (सर्वनाम)। ये (सर्वनाम) देवा **(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना),** साध्या **(साध् - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जीतना, साधना करना, यशस्वी होना)** च **(अव्यय)** ऋषयः **(ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना)** अयजन्त **(यज् - देव-पूजन, संगतिकरण, दान करना)**॥ 9॥

(11) सूक्त 4

32. यत् पुरुषम् वि अदधुः,
कतिधा वि अकल्पयन्।
मुखम् किम् अस्य आसीत्,
किम् बाहू किम् ऊरू पादौ उच्येते॥ 10॥

मन्त्रार्थ - यत् **जिस** पुरुषम् **पुरुष को (परमात्मा को)** वि अदधुः **विशेष रूप से धारण करते हैं,** कतिधा **कितने प्रकार से** वि अकल्पयन् **विशेषकर कल्पना करते है।** अस्य **इसका** मुखम् **मुख** किम् **क्या** आसीत् **था,** किम् **क्या** बाहू **हाथ,** किम् **क्या** ऊरू **जङ्घाएं,** पादौ **पैर** उच्येते **कहे जाते हैं।**॥ 10॥

भावार्थ - परम सत्य यही है कि परमात्मा का कोई आकार या शरीर है ही नहीं। फिर भी सरलता से समझने के लिए तथा समाज की व्यवस्था में परमात्मा के प्रति श्रद्धा भावना का लाभ उठाने के लिए उसके शरीर की कल्पना रूपक के माध्यम से की गयी है। इस मन्त्र में प्रश्न किया गया है कि उसके मुख, हाथ, पैर आदि की कल्पना किस रूप में की गयी है। आगे के मन्त्रों में इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यत् (सर्वनाम)। पुरुषम् **(पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)** वि अदधुः **(वि - विशेष, धा - धारण करना),** कतिधा (सर्वनाम)। वि अकल्पयन् **(वि - विशेष, कल्प् - कल्पना करना)।** अस्य **(सर्वनाम)** मुखम् **(मुख् - मुख्य होना, जाना, खाना)** किम् (सर्वनाम) आसीत् **(अस् - होना),** किम् (सर्वनाम) बाहू **(बाह् - प्रयास करना, बह् - गति करना, हिंसा करना),** ऊरू **(ऊ - शब्द करना, ध्वनि करना, विश्वास करना),** पादौ **(पद् - चलना, भूषित होना)** उच्येते **(उच्-वद् - कहना, बोलना)॥ 10॥**

33. ब्राह्मणो अस्य मुखम् आसीत्,
बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तत् अस्य यत् वैश्यः,

पद्भ्याम् शूद्रो अजायत॥ 11॥

मन्त्रार्थ- ब्राह्मणो **ब्राह्मण (ब्रह्म अर्थात् वेद तथा ईश्वर का ज्ञाता या उपासक)** अस्य **इसका** मुखम् **मुख** आसीत् **था,** बाहू **हाथ** राजन्यः **राजकर्मी** कृतः **किये।** अस्य **इसकी** ऊरू **जङ्घाएं** तत् **वह** यत् **जो** वैश्यः **वैश्य (है),** पद्भ्याम् **पैरों के लिए** शूद्रो **शूद्र** अजायत **उत्पन्न अर्थात् कल्पित हुआ**॥ 11॥

भावार्थ - ब्रह्म का अर्थ है बड़ा। सबसे बड़ा होने से परमात्मा ब्रह्म है। वेद को शब्द ब्रह्म कहा जाता है। इनको जानने वाला उपासना करने वाला ब्राह्मण है। उस ज्ञान को प्रवचन-शिक्षण के माध्यम से अन्य लोगों को देने के कारण वह मुख की भूमिका में कल्पित है। राजन्य अर्थात् राज्यकर्मी ही तो शासन के हाथ हैं। सभी प्राशासनिक कार्य वे ही करते हैं। विश् धातु का अर्थ प्रवेश करना, भीतर जाना है। जो लोग समाज में घुले-मिले हैं, समाज के कार्यों में सहभागी हैं, वे वैश्य हैं। सामान्यतः लोकभाषा में विश शब्द सामान्य जनों के लिए आता है जिस अर्थ में इस समय देशवासी या नागरिक शब्द प्रचलित है। यह जन-सामान्य ही विद्वान्, शासकीय कर्मचारी आदि सभी के निर्वाह का दायित्व निभाता है। शूद्र शब्द का अर्थ है शुद्ध-पवित्र करने वाला। वह पैर अर्थात् गतिशीलता का प्रतीक माना गया है। प्राकृतिक वस्तुओं को शोधन-परिष्कार कर समाज के लिए उपयोगी बना देने वाले शिल्पी इसी प्रकार के लोग हैं। वाहन आदि का निर्माण यदि शिल्पी-यन्त्रविद् न करें तो गतिशीलता सीमित हो जायेगी तथा जन-जीवन पंगु हो जायेगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ब्राह्मणो **(बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना)** अस्य (सर्वनाम) मुखम् **(मुख् - मुख्य होना, जाना, खाना)** आसीत् **(अस् - होना),** बाहू **(बाह् - प्रयास करना, वह् - गति करना, हिंसा करना),** राजन्यः **(राज् - दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, शोभित होना, जीतना)** कृतः **(कृ - करना)।** ऊरू **(ऊ - शब्द करना, ध्वनि करना, विश्वास करना)** तत् (सर्वनाम) यत् (सर्वनाम) वैश्यः **(विश्-सूचना देना, प्रेरणा देना, प्रवेश करना)।** पद्भ्याम् **(पद् - चलना, भूषित होना)** शूद्रो **(शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना,**

शुद्ध होना)। अजायत **(जन् - उत्पन्न होना)॥ 11॥**

34. चन्द्रमा मनसो जातः,
चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च,
मुखात् अग्निः अजायत॥ 12॥

मन्त्रार्थ- चन्द्रमा **चन्द्रमा** मनसो **मन से** जातः **उत्पन्न हुआ,** चक्षोः **चक्षु अर्थात् नेत्रों से** सूर्यो **सूर्य** अजायत **उत्पन्न हुआ।** श्रोत्रात् **श्रोत अर्थात् कानों से** वायुः **वायु** च **और** प्राणः **प्राण** च **और,** मुखात् **मुख से** अग्निः **अग्नि** अजायत **उत्पन्न हुआ**॥ 12॥

भावार्थ - ध्यान देने योग्य है कि पहले मूल प्रश्न यह किया गया है कि विराट पुरुष परमात्मा के शरीर की कल्पना करने पर रूपक के रूप में समाज और प्रकृति की कल्पना किस रूप में की गयी है॥ इस मन्त्र में बताया गया है कि चन्द्रमा को इस रूपक में मन से उत्पन्न माना गया है। चन्द्रमा का प्रकाश शीतल होता है। मन को प्रकाश तो चाहिए, परन्तु वह शीतल होना चाहिए। नेत्र को सूर्य के रूपक में कल्पित किया गया है। सूर्य से ही हमारे नेत्रों को देखने की शक्ति प्राप्त होती है। प्रकाश के अन्य साधन भी तो परोक्ष रूप में सूर्य की ऊर्जा से ही कार्य करते हैं। वायु के कम्पन तथा तरंगों से ही सुनना सम्भव हो पाता है तथा मुख से ग्रहण किया गया भोजन भी जठराग्नि से ही पचता है। मुख की वाणी को भी अग्नि के समान अग्रणी, ऊर्ध्वगामी तथा तेजस्वी होना चाहिए, यह भावना भी इस कल्पना में है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - चन्द्रमा (चन्द् - चमकना, आनन्द होना, प्रकाश होना, सन्तोष होना) मनसो **(मन् - मनन करना)** जातः **(जन् - उत्पन्न होना),** चक्षोः (चक्ष् - स्पष्ट बोलना, कहना, देखना) सूर्यो (सू - उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना) अजायत **(जन् - उत्पन्न होना)।** श्रोत्रात् (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना) वायुः (वय - जाना, जानना, पाना, उड़ना, वा - गति करना, पवन की भाँति बहना, जाना, जानना, पाना, गन्ध

होना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना) च (अव्यय) प्राणः (**प्र - प्रकृष्ट, अन् - चेतन होना, प्राण होना**) मुखात् (मुख् - मुख्य होना, जाना, खाना) अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना)॥ 12॥

35. नाभ्या आसीत् अन्तरिक्षम्,
शीर्ष्णो द्यौः सम् अवर्तत।
पद्भ्याम् भूमिः दिशः श्रोत्रात्,
तथा लोकान् अकल्पयन्॥ 13॥

मन्त्रार्थ- नाभ्या **नाभि के रूप में** अन्तरिक्षम् **अन्तरिक्ष या आकाश (अन्तः - बीच में, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)** आसीत् **था (अस् - होना)**, शीर्ष्णो **शिर (अन्तः - बीच में, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)** आसीत् **था (अस् - होना)**, द्यौः **प्रकाशयुक्त (लोक)** सम् अवर्तत **सम्यक् रूप से हुआ।** पद्भ्याम् **पैरों के लिए** भूमिः **भूमि**, दिशः **दिशा** श्रोत्रात् **श्रवण से**, तथा **उसी प्रकार** लोकान् **लोकों को** अकल्पयन् **कल्पना की**॥ 13॥

भावार्थ - नाक्षि मध्य स्थान है, उसी स्थान से शरीर को पोषण भी मिलता है। उसे आकाश कहा गया है। आकाश में ही सभी लोक अवस्थित हैं। भूमि भी पैर के रूप में है। जैसे पैर के आश्रय से ही शरीर स्थित होता है तथा गति करता है, उसी प्रकार से भूमि के आधार पर ही जीव तथा प्रकृति स्थित हैं। प्रकृति में भूमि तथा समाज में शूद्र का स्थान पैरों के समान महत्वपूर्ण है। समाज तथा प्रकृति के संरक्षण के लिए आवश्यक है कि भूमि की रक्षा की जाये, इसी प्राकार से शूद्र अर्थात् तकनीकी ज्ञान वाले शूद्रों का भी संरक्षण-सम्मान किया जाये॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नाभ्या (**नभ् - मध्य होना, केन्द्र होना, हिंसा करना**) अन्तरिक्षम् (**अन्तः - बीच में, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना**) आसीत् (**अस् - होना**), शीर्ष्णो (**शीर्ष - शीर्ष

होना, उच्च होना, मुख्य होना**) द्यौः (द्युत् = प्रकाशित होना, द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, प्रकाश होना, जानना) सम् अवर्तत (**सम् =** सम्यक् रूप से, भली भाँति (उपसर्ग), **वृत् - वर्तना, वर्तमान होना, होना**)। पद्भ्याम् (**पद् - चलना**) भूमिः (**भू - होना**), दिशः (**दिश् - दिखाना, समझाना, देना**) श्रोत्रात् (**श्रु - सुनना**), तथा (सर्वनाम)। लोकान् (**लोक् - देखना, बोलना**) अकल्पयन् (**कल्प् - कल्पना करना**)॥ 13॥

(12) सूक्त 5

36. यत् पुरुषेण हविषा,
देवा यज्ञम् अतन्वत।
वसन्तो अस्य आसीत् आज्यम्,
ग्रीष्म इध्मः शरत् हविः॥ 14॥

मन्त्रार्थ- यत् **जिस** हविषा **हविष् अर्थात् दान तथा ग्रहण करने योग्य** पुरुषेण **पुरुष (परमात्मा) के साथ** देवा **देव (विद्वान् लोग)** यज्ञम् **यज्ञ को** अतन्वत **विस्तृत करते हैं,** वसन्तो **वसन्त** अस्य **इसका** आज्यम् **आज्य (प्रक्षेपण, स्थापन, गमन में समर्थ (पदार्थ या ऊर्जा)**, ग्रीष्म **ग्रीष्मकाल** इध्मः **प्रकाशक,** शरत् **शरत्** हविः **हवि (देय, दानयोग्य)** आसीत् **था**॥ 14॥

भावार्थ - इस मन्त्र में यज्ञ का सत्य स्वरूप बताया गया है। यजन हविष् पुरुष अर्थात् हविगुणयुक्त परमात्मा के साथ किया जाता है। हवि शब्द हु धातु से बना है जिसका अर्थ होता है आदान-प्रदान करना तथा दान करना। परमात्मा के साथ हमारा निकट सम्बन्ध है। हम स्वयम् को परमात्मा के प्रति समर्पित कर देते हैं तो हमें दिव्य संरक्षण तथा अनुदान प्राप्त होते हैं। अन्य लोगों को भी हम अपना यह अनुभव प्रदान करते रहें, यह है दान करना। परमात्मा को हविष् विशेषण के साथ स्मरण करने का यही भाव है। यज्ञ तथा यजन शब्द यज् धातु से बनते हैं जिसका अर्थ होता है देवपूजा, संगतिकरण, दान करना। अतः यज्ञ या यजन करने के लिए परमात्मा के हविष् गुण या स्वरूप का स्मरण करना स्वाभाविक तथा उचित है। अब यजन में सहायक सामग्री के रूप में

वसन्त को उस यज्ञ का आज्य अर्थात् प्रक्षेपण, स्थापन, गमन में समर्थ पदार्थ या ऊर्जा के रूप में माना गाय है। वसन्त ऋतु ही ऐसे कार्यों के लिए उपयुक्त होती है। ग्रीष्म ऋतु में प्रकाश सर्वाधिक होता है, यही उससे प्रेरणा ले सकते हैं। शरद् ऋतु हवि है अर्थात् दान तथा आदान-प्रदान की प्रेरणास्वरूप है। सकारात्मक चिन्तन-विचार हों तो सभी ऋतुओं - अवसरों से सकारात्मक प्रेरणा ले सकते हैं तथा यजन जैसे श्रेष्ठ कार्य कर सकते हैं, अन्य प्रत्येक स्थिति में कठिनाइयाँ हमें कार्य करने से रोक सकती हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यत् (सर्वनाम) हविषा (**हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना**) पुरुषेण (**पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना**), देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) यज्ञम् (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) अतन्वत (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, **तन् - विस्तार करना**), वसन्तो (**वस् - निवास करना**) अस्य (सर्वनाम)। आज्यम् (**अज् - स्थापन, गमन, प्रक्षेपण करना**), ग्रीष्म (**ग्रीष् - तपना, ऊष्म होना**) इध्मः (**इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना**), शरत् (**शृ - सुनना, जाना**) हविः (**हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना**) आसीत् (**अस् - होना**)।। 14।।

37. सप्त अस्य आसन् परिधयः,
त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यत् यज्ञम् तन्वाना,
अबध्नन् पुरुषम् पशुम्।। 15।।

मन्त्रार्थ - सप्त **सात** अस्य **इसकी** परिधयः **परिधियाँ** आसन् **थीं,** त्रिः सप्त **तीन और सात (सभी सात परिधियों में प्रत्येक में तीन, इस प्रकार तीन गुणित सात अर्थात् इक्कीस)** समिधः **समिधा अर्थात् प्रकाश रूप** कृताः **किये।** देवा **देव (विद्वान लोग)** यत् **जो** यज्ञम् **यज्ञ को** तन्वाना **विस्तृत करते हुए,** पुरुषम् **पुरुष को** पशुम् **पशु को (जानने योग्य)** अबध्नन् **बांधते हैं**।। 15।।

भावार्थ - इस मन्त्र में यजन का रूपक के माध्यम से सुन्दर काव्यमय वर्णन किया गया है। उसकी सात परिधियाँ हैं, प्रत्येक परिधि में तीन-तीन ज्योतियाँ हैं। इस यज्ञ को करते हुए देवों अर्थात् दिव्यगुण सम्पन्न विद्वान् लोगों ने पुरुष अर्थात् परमात्मा को बांध लिया, ऐसा कहा गया है। बाँधे गये उस परमात्मा का विशेषण पशु कहा गया है। मन्त्र में काव्यसौन्दर्य दर्शनीय है। पशु शब्द का अर्थ देखने वाला तथा जिसमें दृष्टि हो, ऐसा होता है। परमात्मा सबकुछ देखने वाला है तथा उपासकों की दृष्टि तो सदा उसमें रहती ही है। श्लेष अलंकार से देखें तो बाँधना क्रिया के साथ पशु शब्द का प्रयोग कर संकेत देने का प्रयास किया गया है कि ऊपर मन्त्रों में यज्ञ का जो सत्य स्वरूप बताया गया है, उस प्रकार यज्ञ करने वाले उपासक तो परमात्मा को मानो पशुओं की तरह बाँध लेते हैं, अर्थात् अपने वश में कर लेते हैं। इस प्रकरण में विद्वानों ने विशेष रूप से यज्ञ का भावार्थ मानसज्ञान यज्ञ ही किया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सप्त (संख्या) अस्य (**सर्वनाम**) परिधयः (**परि - सब ओर, धि - धारण करना**) आसन् (**अस् - होना**), त्रिः सप्त (**त्रि - तीन, सप्त - सात**) समिधः (**सम् - सम्यक्, इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना**), कृताः (**कृ - करना**)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) यत् (सर्वनाम) यज्ञम् (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) तन्वाना (**तन् - विस्तार करना**), पुरुषम् (**पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना**) पशुम् (**पश् - देखना, जानना**) अबध्नन् (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, बध् - बाँधना, निश्चय करना)।। 15।।

38. यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त देवाः,
तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्।
ते ह नाकम् महिमानः सचन्त,
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।। 16।।

मन्त्रार्थ- देवाः **देवगण** यज्ञेन **यज्ञ द्वारा** यज्ञम् **यज्ञ का** अयजन्त **यजन**

करते हैं, तानि **वे** प्रथमानि **प्रथम अर्थात् पहले या मुख्य** धर्माणि **धर्म** आसन् **थे।** ते **वे** ह **ही** नाकम् **नाक अर्थात् अक रहित (अकुटिल, अविचल)** महिमानः **महत्व से युक्त** सचन्त **प्राप्त होते हैं,** यत्र **जहाँ** पूर्वे **पूर्व में** साध्याः **साध्य** देवाः **देवगण (प्रकाशमान विद्वान्)** सन्ति **हैं**।। 16 ।।

भावार्थ - देवगण यज्ञ द्वारा यज्ञ का यजन कर रहे हैं। यज्ञ ही साधन है, यज्ञ ही साध्य है, यज्ञ ही कर्म है। सब कुछ ़यज्ञ ही है। जीवन, विचार, चिन्तन पूर्णतः यज्ञमय है। यही यजन है। यज्ञ कोईकर्मकाण्ड नहीं है कि कुछ विशेष क्रियायें कर लीं और यजन हो गया। यजन की मूल भावना देवपूजा, संगतिकरण तथा दान को जीवन में पूर्णतः आत्मसात् कर लेना यज्ञ है। ऐसे लोग ही अपनी महिमा से नाक अर्थात् अविचल तथा अकुटिल होकर अपने जीवन तथा समाज का अभिसिंचन इन भावों से करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) यज्ञेन (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) यज्ञम् (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) अयजन्त (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना), तानि (सर्वनाम) प्रथमानि (प्रथ् - प्रसिद्ध होना, फैलना, फैलाना) धर्माणि (धृ = धारण करना, नष्ट करना, टुकड़े करना, गिर पड़ना, स्थिर रहना) आसन् **(अस्)।** ते (सर्वनाम) ह **(अव्यय)** नाकम् (न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क - नाश होना, नक्ष-नक्क-नख् - जाना, नज् - लज्जा होना) महिमानः (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना, महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना) सचन्त (सच् - सेवा करना, सन्तुष्ट करना, सींचना, पूर्णतया समझना, सम्बन्धी होना), यत्र (सर्वनाम) पूर्वे (पूर्व - पूर्व, पहले, सर्वनाम, पूर्व - पूर्ण करना, भरना, निवास करना, आश्चर्य करना, आमन्त्रण करना) साध्याः (साध् - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जीतना, साधना करना, यशस्वी होना) सन्ति **(अस् - होना)**।। 16 ।।

39. अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसात् च,
विश्वकर्मणः सम् अवर्तत अग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधत् रूपम् एति,
तत् मर्त्यस्य देवत्वम् आजानम् अग्रे।। 17 ।।

मन्त्रार्थ- अद्भ्यः **खाद्य पदार्थो** च **और** रसात् **रस से** पृथिव्यै **पृथिवी के लिए** सम्भृतः **सम्यक् भरण-पोषण किये हुए** विश्वकर्मणः **सभी कर्म** अग्रे **पहले** सम् अवर्तत **सम्यक् वर्तमान हुए।** तस्य **उसका** त्वष्टा **सूक्ष्म करने वाला (ईश्वर)** विदधत् **विधान करता हुआ** रूपम् **रूप को** एति **प्राप्त होता है,** तत् **वह (परमात्मा)** मर्त्यस्य **मरणशील (मनुष्य) के** देवत्वम् **देवत्व को** अग्रे **पहले** आजानम् **अच्छे प्रकार जानता है**।। 17 ।।

भावार्थ - मनुष्य तथा वेदों के उदय के बाद यजन जैसे सत्कर्म होने लगे। अब पृथ्वी के लिए, कहना चाहिए कि पृथ्वी पर निवास करने वाले जीव-जगत् के लिए खाद्य पदार्थों तथा रसों से परिपूर्ण कर्म पहले होने चाहिए। प्रकृति ने हमारे लिए आवश्यक संसाधन भोजन आदि की व्यवस्था की है, उनका संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है। इसी बात को प्रतीकात्मक रूप से पृथ्वी के लिए ऐसे कर्म करने की भावना व्यक्त की गयी है जिससे खाद्य तथा रस पोषित हों। त्वष्टा परमात्मा तो है ही, शिल्पी भी उसी अर्थ में त्वष्टा कहे जाते हैं। परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि को त्वष्टा के रूप में रूप देता है तथा शिल्पी हमारे लिए आवश्यक वस्तुओं को। यही मरणशील मनुष्य का देवत्व है कि वह भी परमात्मा की उपासना करते हुए तथा प्रेरणा लेते हुए रचनात्मक बना रहे।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अद्भ्यः (अद् - खाना) **च** (अव्यय) **रसात्** (रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना) **पृथिव्यै** (पृथ् - प्रक्षेपण करना, व्याप्त होना, प्रेरणा करना, प्रकट होना) **सम्भृतः** (सम् - सम्यक्, भृ - भरण-पोषण करना) **विश्वकर्मणः** (विश्व - सभी, कृ - करना) **अग्रे** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना) **सम्** (उपसर्ग), **अवर्तत** (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वृत् वर्तना, वर्तमान होना)। **तस्य** (सर्वनाम) **त्वष्टा** (त्वष्-त्विष् - प्रकाशित होना, चमकना)

विदधत् (वि - विशेष, दध् - धारण करना) **रूपम्** (रूप् - आकार बनाना, रचना करना) **एति** (ए - जाना, फैलना, व्यापना, गर्भवती होना, इच्छा करना, चाहना, खाना, उड़ाना, फेंकना, भेजना, प्रेरणा करना, इ - जाना), **तत्** (सर्वनाम) **मर्त्यस्य** (मृ - मरना) **देवत्वम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) **अग्रे** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना) **आजानम्** (आ - समन्तात्, सम्यक्, ज्ञा-जा - जानना) **॥ 17 ॥**

(13) सूक्त 6

40. वेद अहम् एतम् पुरुषम् महान्तम्,
आदित्यवर्णम् तमसः परस्तात्।
तम् एव विदित्वा अति मृत्युम् एति,
न अन्यः पन्था विद्यते अयनाय॥ 18 ॥

मन्त्रार्थ - अहम् मैं **एतम्** इस **महान्तम्** महान् **आदित्यवर्णम्** आदित्य वर्ण वाले **तमसः** अन्धकार से **परस्तात्** परे या पृथक् **पुरुषम्** पुरुष को (परमात्मा को) **वेद** जानता हूँ। **तम्-एव** उसी को **विदित्वा** जान कर **मृत्युम्** मृत्यु को **अति-एति** अतिक्रमण कर जाता है। **अयनाय** अयन अर्थात् गमन के लिये **अन्यः** अन्य **पन्था** मार्ग **न** नहीं **विद्यते** विद्यमान है **॥ 18 ॥**

भावार्थ - परमात्मा का वर्ण आदित्य अर्थात् अक्षय, अविनाशी है। आदित्य का अर्थ है अदिति से उत्पन्न। अदिति का अर्थ है जो दिति नहीं है अर्थात् जिसका क्षय नहीं होता है। दी धातु का अर्थ है क्षय होना, अतः अदिति का अर्थ है अक्षय, अविनाशी। उस अदिति-अक्षय से से उत्पन्न उसके उपासक देवगण ही उसका वर्णन करते हैं, अतः वह आदित्य-वर्ण कहा गया है। वही महान् पुरुष अन्धकार से परे हैं। उसको जानना ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। उसको जानकर ही मृत्यु के भय का अतिक्रमण कर पाना सम्भव है, इसके लिए अन्य कोई मार्ग है ही नहीं जिस पर चला जाये और इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अहम् (सर्वनाम) **एतम्** (सर्वनाम) **महान्तम्** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना), **आदित्य-वर्णम्** (अदिति, अ - नहीं, दी - क्षय होना, वर्ण - वर्णन करना, विस्तृत करना, प्रसंसा करना, प्रकाशित होना) **तमसः** (तम् - इच्छा करना, दुःखी होना, अन्धकार होना) **परस्तात्** (सर्वनाम) **पुरुषम्** (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना), **वेद** जानता हूँ (विद् - जानना)। **तम्** उसको (सर्वनाम) **एव** (अव्यय) **विदित्वा** (विद् - जानना) **मृत्युम्** (मृ - मरना) **अति-एति** (अति - बहुत, अत्यधिक (उपसर्ग, अव्यय), ए - जाना, फैलना, व्यापना, गर्भवती होना, इच्छा करना, चाहना, खाना, उड़ाना, फेंकना, भेजना, प्रेरणा करना, इ - जाना)। **अयनाय** (अय् = जाना, जानना, पाना, इ - जाना)। **अन्यः** (सर्वनाम) **पन्था** (पन्थ - जाना) **न** (अव्यय) **विद्यते** (विद्-विद्य - विद्यमान होना, होना) **॥ 18 ॥**

41. प्रजापतिः चरति गर्भे अन्तः,
अजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिम् परि पश्यन्ति धीराः,
तस्मिन् ह तस्थुः भुवनानि विश्वा॥ 19 ॥

मन्त्रार्थ- प्रजापतिः **प्रजा का रक्षक (परमात्मा)** गर्भे **गर्भ में** अन्तः **भीतर** चरति **विचरता है।** अजायमानो **जन्म नहीं लेने वाला** बहुधा **बहुत प्रकारों से** वि जायते **विशेषकर जन्म लेता है।** तस्य **उसके** योनिम् **योनि को** धीराः **धीर लोग** परि पश्यन्ति **सब ओर से देखते हैं।** तस्मिन् **उसमें** ह **ही** विश्वा **सभी** भुवनानि **भुवन अर्थात् लोक-लोकान्तर** तस्थुः **स्थित हैं।** ॥ 19 ॥

भावार्थ - परमात्मा अजन्मा है, उसका कभी जन्म नहीं हुआ, वह कभी जन्म नहीं लेता है, यह परम सत्य है। परन्तु यह भी कहा जा रहा है कि वह प्रजापति परमात्मा गर्भ में विचरण करता है, वह जन्म न लेवे वाला होते हुए भी बहुधा जन्म लेता है। यही विरोधाभास अलंकार है, काव्यगुण चमत्कार है। यही काव्य की सरसता रोचकता है। वास्तव में यह सत्य है कि गर्भ में जो भी आता है, उस जीव की चेतनाशक्ति है तो परमात्मा की चेतना ही। अतः वही गर्भ में

विचरण करता है। इस प्रकार जन्म नहीं लेने वाला होकर भी बहुधा जन्म लेता रहता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)। **गर्भे** (गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना) **अन्तः** (उपसर्ग, सर्वनाम)। चरति (चर् -चलना, विचरण करना)। अजायमानो (अ - नहीं, जन् - उत्पन्न होना) बहुधा बहुत प्रकार से (सर्वनाम)। वि जायते (वि - विशेष, जन् - जन्म लेना, उत्पन्न होना)। तस्य (सर्वनाम) योनिम् (यु - संयोग-वियोग करना) धीराः (धृ - धारण करना, सहना, स्थिर रहना) परि (उपसर्ग) पश्यन्ति (पश् - देखना)। तस्मिन् (सर्वनाम) ह (अव्यय) विश्वा (सर्वनाम) भुवनानि (भू - होना) तस्थुः (स्था-तिष्ठ - स्थित होना, ठहरना)॥ 19॥

42. यो देवेभ्यः आतपति, यो देवानाम् पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो, नमो रुचाय ब्राह्मये॥ 20।

मन्त्रार्थ- यो **जो** देवेभ्यः **देवों के लिये** आतपति **समन्तात् अर्थात् सम्यक् रूप से, भलीभाँति तपता है,** यो **जो** देवानाम् **देवों का** पुरोहितः **पुरोहित है (पहले हित करने वाला है)।** यो **जो** देवेभ्यो **देवों के लिये** पूर्वो **पूर्व (पहले)** जातो **उत्पन्न हुआ,** रुचाय **रुचि कराने वाले** ब्राह्मये **ब्राह्म अर्थात् ब्रह्म सम्बन्धी के लिए (प्रकृति तथा उपासक के लिए)** नमो **नमन (है)**॥ 20॥

भावार्थ - ब्रह्म की इसी शक्ति को ब्राह्म कहा गया है। यही चेतना देव शक्तियों के लिए तप करती है, यही देवों की पुरोहित है, यही शक्ति देवों के लिए पहले उत्पन्न हुई, उसी सुरुचिपूर्ण ब्राह्मी शक्ति के लिए नमन है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यो (सर्वनाम) **देवेभ्यः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) **आ** (उपसर्ग) **तपति** (तप्), **देवानाम्** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) **पुरोहितः** (पुरः-हित, पुरो = पहले (अव्यय), हि - जाना)। **पूर्वो** (पूर्व - पूर्व, पहले, सर्वनाम) **जातो** (जन् - उत्पन्न होना), **रुचाय** (रुच् - रुचना,

प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना) **ब्राह्मये** (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना) **नमो** (नम् - नमन करना)॥ 20॥

43. रुचम् ब्राह्मम् जनयन्तो,
देवा अग्रे तत् अब्रुवन्।
यः त्वा एवम् ब्राह्मणो विद्यात्,
तस्य देवा असन् वशे॥ 21॥

मन्त्रार्थ - रुचम् **रुच (रुचिकारक)** ब्राह्मम् **ब्रह्म उपासक को** जनयन्तो **उत्पन्न करते हुए** देवा **देवगण, विद्वान्** अग्रे **पहिले** तत् **वह** अब्रुवन् **बोले (कि)** यः **जो** त्वा **तुमको** एवम् **इस प्रकार** ब्राह्मणो **ब्राह्मण** विद्यात् **जाने,** तस्य **उसके** देवा **देवगण, दिव्यजन, विद्वान्** वशे **वश में** असन् **हुए**॥ 21॥

भावार्थ - ऐसे सुरुचि पूर्ण ब्राह्म चेतना को उत्पन्न करते हुए देवों ने कहा कि जो तुमको ब्रह्म का उपासक समझता है, इस प्रकार ब्रह्म चेतना सम्पन्न उपासक का आदर-सम्मान करता है, उससे शिक्षा, प्रेरणा प्राप्त करता है, उसके वश में तो देवगण रहते ही हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - रुचम् (रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना) **ब्राह्मम्** (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना) **जनयन्तो** (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना, उत्पन्न करना) **देवा** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) **अग्रे** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, लेना, ग्रहण करना) **तत्** (सर्वनाम) **अब्रुवन्** (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, ब्रू - कहना, बोलना) **यः** (सर्वनाम) **त्वा** (सर्वनाम) **एवम्** (अव्यय) **ब्राह्मणो** (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना) **विद्यात्** (विद् - जानना), **तस्य** (सर्वनाम) **वशे** (वश् - इच्छा करना, चाहना, चमकना) **असन्** (अस् - होना)॥ 21॥

44. श्रीः च ते लक्ष्मीः च, पत्न्यौ अहोरात्रे पार्श्वे,
नक्षत्राणि रूपम् अश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन् इषाण अमुम् मे इषाण,
सर्वलोकम् मे इषाण॥ 22॥

मन्त्रार्थ- श्रीः **श्री** च **और** लक्ष्मीः **लक्ष्मी** च **और** पत्न्यौ **दो पत्नियाँ** अहोरात्रे **दिन रात** ते **तुम्हारे** पार्श्वे **पार्श्व में, निकट, बगल में,** नक्षत्राणि **नक्षत्र** रूपम् **रूप को** अश्विनौ **अश्विन युगल** व्यात्तम् **फैले मुख के समान।** इष्णन् **चाहते हुए** इषाणः **चाहने वाले** अमुम् **परोक्ष सुख को** मे **मेरे लिये** इषाण **प्राप्त कीजिये** मे **मेरे लिये सब सुखों को,** सर्वलोकम् **सब के दर्शन को** मे **मेरे लिये** इषाण **पहुंचाइये॥** 22॥

भावार्थ - श्री, लक्ष्मी जैसी विभूतियाँ उसके पास दिन-रात पत्नियों की तरह रहती हैं।अश्वनी युगल नक्षत्रों के समान उसके ऊपर झिलमिलाते रहते हैं। उसकी सभी कामनाएं पूर्ण होती हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - श्रीः (श्री - सेवा करना, समृद्धि होना, शोभा होना) च (अव्यय) लक्ष्मीः (लक्ष् - देखना, विचार करना) पत्न्यौ (पत् - ऐश्वर्य होना, गिरना) अहोरात्रे (अह् - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना, रा - देना, लेना, मिलना) ते (सर्वनाम) पार्श्वे (सर्वनाम) नक्षत्राणि (नक्ष् - जाना, आना, पहुँचना) रूपम् (रूप् - आकार बनाना, रचना करना) अश्विनौ (अश् - व्याप्त होना, पहुँचना, पाना, संग्रह करना) व्यात्तम् (वि - विशेष, आ - समन्तात, सम्यक्, अत् - सतत चलना, खाना, नष्ट करना)। इष्णन् (इष् - इच्छा करना, चाहना, जाना, पाना, निरन्तर देखना) इषाणः (इष् - इच्छा करना, चाहना, जाना, पाना, निरन्तर देखना) अमुम् (सर्वनाम) मे (सर्वनाम) सर्व (सर्वनाम) लोकम् (लोक् - देखना)॥ **22॥**

इति द्वितीयः अध्यायः

ॐ

तृतीयः अध्यायः

ब्रह्मोपनिषद्

(14) सूक्त 1

45. तत् एव अग्निः तत् आदित्यः,
तत् वायुः तत् उ चन्द्रमाः।
तत् एव शुक्रम् तत् ब्रह्म,
ता आपः स प्रजापतिः॥ 1॥

मन्त्रार्थ- तत् **वह** एव **ही** अग्निः **अग्नि (अग्रणी),** तत् **वह** आदित्यः **आदित्य (अविनाशी),** तत् **वह** वायुः **वायु,,** तत् **वह** उ **ही** चन्द्रमाः **चन्द्रमा (आनन्दस्वरूप और आनन्दकारक)।** तत् एव **वही** शुक्रम् **शुक्र (शीघ्रकारी वा शुद्ध)** तत् **वह** ब्रह्म **ब्रह्म (बड़ा, महत्, महान्),** ता **वह** आपः **आप, व्यापक,** स **वह** प्रजापतिः **प्रजापति अर्थात् प्रजा का रक्षक, स्वामी (है)॥** 1॥

भावार्थ - सम्पूर्ण प्रकृति, सभी देवशक्तियाँ, अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः, प्रजापति आदि के रूप में एक परमात्मा ही व्यक्त हुआ है। हम जो कुछ भी देखते, जानते तथा अनुभव करते हैं, वह सब कुछ परमात्मा ही है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तत् (सर्वनाम) एव (अव्यय) अग्निः (अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, अग्रणी होना), आदित्यः (अदिति, अ - नहीं, दी - क्षय होना), वायुः (वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना), उ (अव्यय) चन्द्रमाः (चन्द् - चमकना, आनन्द होना, आनन्द करना)। शुक्रम् (शुक् - जाना, शुच् - शुद्ध होना) ब्रह्म (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना), ता (सर्वनाम) आपः (आप् - व्याप्त होना, जाना, पाना, अवलम्ब होना), स (सर्वनाम) प्रजापतिः (प्र - प्रकृष्ट,

जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)॥1॥

46. सर्वे निमेषा जज्ञिरे, विद्युतः पुरुषात् अधि।
न एनम् ऊर्ध्वम् न तिर्यञ्चम्, न मध्ये परि जग्रभत्॥2॥

मन्त्रार्थ- सर्वे **सब** निमेषा **निमेष (कला, काष्ठा आदि काल के अवयव)** विद्युतः **विशेष प्रकाशमान** अधि **अधिक** पुरुषात् **पुरुष (परमात्मा) से** जज्ञिरे **उत्पन्न हुए हैं।** न **नहीं** एनम् **इस (परमात्मा) को** ऊर्ध्वम् **ऊपर,** न **नहीं** तिर्यञ्चम् **तिरछा,** न **नहीं** मध्ये **बीच में** परि जग्रभत् **ग्रहण कर सकता है॥** 2॥

भावार्थ - कालचक्र तथा समय-विभाग भ उसी परमात्मा से ही उत्पन्न हुआ है। उसको किसी दिशा से पकड़ पना सम्भव नहीं है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सर्वे (सर्वनाम) **निमेषा** (नि - निश्चित, निरन्तर, मिष् - स्पर्धा करना, सींचना, प्रोक्षण करना, पलक झपकाना) **विद्युतः** (वि - विशेष, विद् - जानना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना) **अधि** (उपसर्ग) **पुरुषात्** (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना), **जज्ञिरे** (जन् - उत्पन्न होना)। **न** (अव्यय) **एनम्** (सर्वनाम) **ऊर्ध्वम्** (सर्वनाम) **न** (अव्यय) **तिर्यञ्चम्** (अव्यय), **मध्ये** (सर्वनाम) **परि-जग्रभत्** (परि = परे, सभी ओर, साथ (उपसर्ग), ग्रह् - ग्रहण करना)॥2॥

47. न तस्य प्रतिमा अस्ति, यस्य नाम महत् यशः।
हिरण्यगर्भ इति एषः, मा मा हिंसीत् इति एषा,
यस्मात् न जात इति एषः॥3॥

मन्त्रार्थ - न नहीं **तस्य** उसकी **प्रतिमा** प्रतिमा (प्रतिमान, उस के तुल्य) **अस्ति** है, **यस्य** जिसका **नाम** नाम **महत्** महान् **यशः** कीर्ति (है)। **हिरण्यगर्भ** हिरण्यगर्भ **इति** ऐसा **एषः** यह, **मा** नहीं **मा** नहीं **हिंसीत्** हिसा करे **इति** ऐसा **एषा** यह, **यस्मात्** जिससे **न** नहीं **जात** उत्पन्न हुआ **इति** इसी प्रकार **एषः** यह (है)॥3॥

भावार्थ - परमात्मा की कोई प्रतिमा अर्थात् प्रतिरूप या तुलना नहीं हो सकती है। ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके रूपक से बताया जा सके कि परमात्मा इसकी तरह है। परमात्मा का अंश तो सबमें है, परन्तु ऐसा कोई भी या कुछ भी नहीं है जिसे कहा जा सके कि यह परमात्मा के समान है। उसका नाम ही महान् यश है अर्थात् उसका यश या कीर्ति उसके नाम से है, उसको तो नाम से ही जाना जा सकता है। गुणों के अनुसार उसे समझने के लिए हिरण्यगर्भ, हिंसा न करने वाला तथा न जात अर्थात् अजन्मा आदि कहा जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - न (अव्यय) **तस्य** (सर्वनाम) **प्रतिमा** (प्रति-मान, मा - मापना, तुलना करना) **अस्ति** (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना) **यस्य** (सर्वनाम) **नाम** (अव्यय)। **महत्** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना) **यशः** (यश् - प्रख्यात होना, कीर्ति होना, व्याप्त होना, फैलना)। **हिरण्यगर्भ** (हिरण - प्रकाश करना, शब्द करना, गृभ्-गर्भ - अन्दर होना, अन्तःवास करना) **इति** (अव्यय) **एषः** (सर्वनाम) **मा** (अव्यय) **हिंसीत्** (हिंस् - हिंसा करना, मारना) **एषा** (सर्वनाम), **यस्मात्** (सर्वनाम) **न** (अव्यय) **जात** (जन् - उत्पन्न होना)॥3॥

(15) सूक्त 2

48. एषो ह देवः प्रदिशो अनु सर्वाः,
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः,
प्रत्यङ् जनाः तिष्ठति सर्वतोमुखः॥4॥

मन्त्रार्थ - एषो यह **ह** ही **देवः** देव (परमात्मा) **प्रदिशो** प्रकृष्ट रूपों वाला **अनु-सर्वाः** सभी के अनुकूल (है)। **पूर्वो** पूर्व, पहले **ह** ही **जातः** उत्पन्न हुआ **स** वह **उ** ही **गर्भे** गर्भ में **अन्तः** भीतर (है)। **स** वह **एव** वही **जातः** जन्मा हुआ (है), **स** वह **जनिष्यमाणः** (भविष्य में) जन्म लेने वाला (है), **प्रत्यङ्** प्रत्येक **जनाः** जन, लोग **सर्वतोमुखः** सब ओर मुख वाला **तिष्ठति** स्थित है॥4॥

भावार्थ - सृष्टि के सभी रूपों में परमात्मा ही व्यक्त हो रहा है। प्रदिशो

का अर्थ प्रकृष्ट रूप वाला किया गया है। दिक्-दिग्-दिह् धातु का अर्थ रूप बनाना, रूप देना होता है। दिक् तथा दिशा शब्द भी इसी से बनते हैं। जो पहले ही उत्पन्न हो चुका है, जो अभी गर्भ में है, जो भविष्य में जन्म लेने वाला है, वह सभी परमात्मा का ही विविध रूप है, उसके अतिरिक्त कुछ भी अस्तित्व में नहीं हैं। सभी जन अर्थात् जन्म लेने वाले लोग भी उसी का विभिन्न रूप हैं तथा वही सबकी ओर मुख किये हुए सर्वत्र व्याप्त है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - एषो (सर्वनाम) **ह** (अव्यय) **देवः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) **प्रदिशो** (प्र - प्रकृष्ट, दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना, अतिरचना करना) **अनु** (उपसर्ग), **सर्वाः** (सर्वनाम)। **पूर्वो** (सर्वनाम) **जातः** (जन् - उत्पन्न होना) **स** (सर्वनाम) **उ** (अव्यय) **गर्भे** (गृभ्-गर्भ् - अन्दर होना, अन्तःवास करना) **अन्तः** (उपसर्ग, सर्वनाम) (है)। **एव** (सर्वनाम) **जनिष्यमाणः** (जन् - उत्पन्न होना), **प्रत्यङ्** (अव्यय) **जनाः** (जन् - उत्पन्न होना) **सर्वतोमुखः** (सर्वतो - सब ओर, मुख् - मुख्य होना, जाना, खाना) **तिष्ठति** (तिष्ठ् = ठहरना, खड़ा होना)॥4॥

49. यस्मात् जातम् न पुरा किम् चन एव,
यः आबभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सम् रराणः,
त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी॥5॥

मन्त्रार्थ- यस्मात् जिससे **पुरा** पहले **किम् चन** कुछ भी **एव** ही **न** नहीं **जातम्** उत्पन्न हुआ, **यः** जो **विश्वा** सभी **भुवनानि** भुवन (सृष्टि या लोक) **आबभूव** हो गया है। **स** वह **षोडशी** सोलह से युक्त **प्रजापतिः** प्रजा का रक्षक **प्रजया** प्रजा के साथ **सम् रराणः** सम्यक् रमण करता हुआ, **त्रीणि** तीन **ज्योतींषि** ज्योतियों को **सचते** सींचता है॥5॥

भावार्थ - परमात्मा से पहले कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि वही तो विश्व भुवन के रूप में साकार हुआ है। अतः सम्पूर्ण सृष्टि उसकी प्रजा अर्थात् उससे उत्पन्न है तथा वह उसका प्रजापति अर्थात् प्रजा का पालक, रक्षक है।

स्वाभाविक है कि वह अपनी प्रजा का दायित्व भी वहन करता है। वह उस प्रजाके साथ रमण करता है, उसके साथ रहता है तथा वह षोडशी तीन ज्योतियों का अभिसिञ्चन करता है। षोडशी शब्द से किन सोलह गुणों का संकेत किया गया है तथा तीन ज्योतियों से क्या तात्पर्य है, यह गम्भीर चिन्तन का विषय है। ऐसे स्थलों पर सभी अध्येताओं को स्वतन्त्रतापूर्वक चिन्तन करना चाहिए, किसी एक विद्वान् भाष्यकार की लीक पर चलना उचित नहीं होगा। अतः हम यहाँ अपना भी कोई मत नहीं दे रहे हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यस्मात् (सर्वनाम) **पुरा** (अव्यय)। **किम् चन** (सर्वनाम)। **एव** (अव्यय) **न** (अव्यय) **जातम्** (जा-जन् - उत्पन्न होना), **य** (सर्वनाम) **विश्वा** (सर्वनाम) **भुवनानि** (भू - होना) **आबभूव** (भू - होना)। **स** (सर्वनाम) **षोडशी (संख्या) प्रजापतिः** (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना) **प्रजया** (प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना) **सम्** (उपसर्ग) **रराणः** (रण - शब्द करना, जाना, रन् - अलग करना, मिलाना), **त्रीणि** (संख्या) **ज्योतींषि** (ज्युत् - प्रकाशित होना, चमकना) **सचते** (सच् - सींचना, सेवा करना, सन्तुष्ट करना, पूर्णतः समझना, सम्बन्धी होना)॥5॥

50. येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा,
येन स्वः स्तभितम् येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥6॥

मन्त्रार्थ - येन जिससे, जिसके द्वारा **द्यौः** प्रकाशयुक्त (सूर्यादि) **उग्रा** उग्र (तीव्र तेज वाले) **च** और **पृथिवी** पृथ्वी **दृढा** दृढ़ हैं, **येन** जिससे **स्वः** ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न करने वाले, **येन** जिसने **नाकः** नाक अर्थात् अक रहित (अकुटिल, अविचल), **स्तभितम्** स्थित हैं। **यो** जो **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्ष में **रजसो** रजस् का (लोक समूह का) **विमानः** विशेष मान करने वाला है, **कस्मै** किस **देवाय** देव के लिये **हविषा** हविष से **विधेम** विधान करें, विशेष रूप से धारण करें॥6॥

भावार्थ - परमात्मा ने ही द्यौ, पृथ्वी, स्वः, नाक आदि की रचना तथा संचालन करने वाला है। सभी लोक-लोकान्तर उसके द्वारा ही व्यवस्थित हैं।

अन्तरिक्ष में फैले हुए रजकणों को वह सूर्य तथा ग्रह, चन्द्रमा आदि के रूप में रचनाकर विशेष मानयुक्त करता है। मान का अर्थ आदर-सम्मान के साथ ही विशेष रूप से मापनयोग्य अर्थात् विशाल आकार प्रदान करना भी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - येन (सर्वनाम) **द्यौः** (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - चमकना, प्रकाशित होना) **उग्रा** (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना) **च** (अव्यय) **पृथिवी** (प्रथ् - विस्तार करना, पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना) **दृढा** (दृढ-दृद - धारण करना, सहन करना, दृढ होना), **स्वः** (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न होना), **नाकः** (न - नहीं, अक् - जाना, कुटिल गति करना, नश्-नक्क -नाश होना, नक्ष-नक्क-नख् -जाना, नज् - लज्जा होना), **स्तभितम्** (स्तभ्-स्तभि-स्तम्भ - स्थापित करना, स्थित करना)। **यो** (सर्वनाम) **अन्तरिक्षे** (अन्तः - बीच में, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना) **रजसो** (रज - रज होना, धूल होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना, लीन होना) **विमानः** (वि - विशेष, मा - मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना), **कस्मै** (सर्वनाम) **देवाय** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना), **हविषा** (हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना) **विधेम** (वि - विशेष, धा - धारण करना)॥ 6॥

51. यम् क्रन्दसी अवसा तस्तभाने,
अभि ऐक्षेताम् मनसा रेजमाने।
यत्र अधि सूर उदितो विभाति,
कस्मै देवाय हविषा विधेम।
आपो ह यत् बृहतीः यः चित् अपः॥ 7॥

मन्त्रार्थ- यम् जिस **क्रन्दसी** क्रन्दनयुक्त **अवसा** रक्षण से **तस्तभाने** स्तभित अथवा प्रकाशित करने वाले, **अभि ऐक्षेताम्** अभिमुख देखने वाले का **मनसा** मन से (मनन या ज्ञान से) **रेजमाने** प्रकाशमान, गतिमान। **यत्र** जहाँ **अधि सूर** महासूर्य **उदितो** उदय हुआ **विभाति** विशेष प्रकाशित होता है, **कस्मै** किस **देवाय** देव के लिये **हविषा** हविष से **विधेम** विधान करें, विशेष रूप से धारण

करें। **आपो** व्याप्त, व्यापक **ह** ही **यत्** जो **बृहतीः** वृहत्, महत्, **यः** जो **चित्** चेतन, भी **आपः** व्यापक (है)॥ 7॥

भावार्थ - रेजमाने पद का भावार्थ विद्वानों ने विविध प्रकार से किया है। रेज धातु का अर्थ प्रकाश करना तथा रि धातु का अर्थ गति करना होता है। अतः इसके दो अर्थ प्रकाशमान तथा गतिमान लेना उचित है। अधिसूर का भाव है सूर्य का भी कारण रूप महासूर्य, जो सूर्यों का भी जन्मदाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यम् (सर्वनाम) **क्रन्दसी** (क्रन्द् - रोना, पुकारना, दुःख होना) **अवसा** (अव् - रक्षा करना) **तस्तभाने** (तस् - रक्षा करना, स्थापना करना, स्तभ्-स्तभि-स्तम्भ - स्थापित करना, स्थित करना)। **अभि** (उपसर्ग) **ऐक्षेताम्** (ईक्ष् - देखना) **मनसा** (मन् - मनन करना, जानना) **रेजमाने** (रेज् - चमकना, प्रकाशित होना)। **यत्र** (सर्वनाम) **अधि** (उपसर्ग) **सूर** (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न होना।) **उदितो** (उत्-अय, उत् - ऊपर, उत्कृष्ट, इ - जाना, जानना, पाना) विभाति (वि - विशेष, भा - चमकना, प्रकाशित होना), **कस्मै** (सर्वनाम) **देवाय** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) **हविषा** (हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना) **विधेम** (वि - विशेष, धा - धारण करना)। **आपो** (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना) **ह** (अव्यय) **यत्** (सर्वनाम) **बृहतीः** (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना), **यः** (सर्वनाम) **चित्** (चित् - चेतन होना, चित् - अव्यय), **आपः** (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना)॥ 7॥

(16) सूक्त 3

52. वेनः तत् पश्यत् निहितम् गुहा सत्,
यत्र विश्वम् भवति एकनीडम्॥
तस्मिन् इदम् सम् च वि च एति सर्वम्,
स ओतः प्रोतः च विभूः प्रजासु॥ 8॥

मन्त्रार्थ- वेनः **विद्वान् जन** तत् **उस** निहितम् **निहित, स्थित** गुहा **गुह्य**

सत् **सत्य, नित्य को,** पश्यत् **देखता है।** यत्र **जिस में** विश्वम् **विश्व** भवति **होता** एकनीडम् **एक आश्रय वाला।** तस्मिन् **उसमें** इदम् **यह** सम् **सम्यक् रूप से, भलीभाँति** च **और** वि **विशेष** च **और** एति **प्राप्त होता है** सर्वम् **सब,** स **वह** ओतः प्रोतः **ओत प्रोत (है)** च **और** विभूः **विशिष रूप से हुआ** प्रजासु **प्रजाओं में।।** 8।।

भावार्थ - उस निहित गुह्य सत्य स्वरूप परमात्मा को विद्वान् ही देख पाते हैं। वी धातु व्यापक अर्थों वाली है। जानना, व्यापना, पाना आदि इसके प्रमुख अर्थ हैं। वेन का अर्थ सामान्यतः विद्वान् ही लिया गया है। उस परम सत्य स्वरूप परमात्मा का अनुभव हो जाने पर विश्व एक नीड अर्थात् एक आश्रय जैसा प्रतीत होने लगता है। नीड का अर्थ आश्रय या घोसला भी होता है। नीड शब्द का प्रयोग विराट में लघुता का अनुभव कराने के लिए हुआ है। विश्व-परिवार या विश्व ग्राम से बहुत आगे बढ़कर सम्पूर्ण सृष्टि के एक नीड हो जाने का अनुभव है। परमात्मा का अनुभव हो जाने पर तो उसके अतिरिक्त सबकुछ अति सूक्ष्म ही प्रतीत होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वेनः (वेन - मिलाना, अलग करना, रक्षा करना, जाना, समझना, जानना, स्मरण करना, सारासार विचार करना, तारतम्य देखना, वाद्य यन्त्र बजाना, बाजा हाथ में लेना) **तत्** (सर्वनाम) **निहितम्** (नि - निरन्तर, निश्चित, हि - जाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना) **गुहा** (गुह् - आच्छादन करना, छिपाना, ढकना, गति करना, जाना, जानना, हिंसा करना) **सत्** (सत् - होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना) पश्यत् (पश्-दृश् - देखना)। **यत्र** (सर्वनाम) **विश्वम्** (सर्वनाम) **भवति** (भु - जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना) **एकनीडम्** (एक - एक, एक - विचार करना, निड् - निवास करना, गृह बनाना) **तस्मिन्** (सर्वनाम) **इदम्** (सर्वनाम) **सम्** (उपसर्ग) **च** (अव्यय) **वि** (उपसर्ग) **एति** (ए - जाना, फैलना, व्यापना, गर्भवती होना, इच्छा करना, चाहना, खाना, उड़ाना, फेंकना, भेजना, प्रेरणा करना, आ - समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, ई

- जाना, जानना, पाना, व्यापना, इच्छा करना, प्रेरणा करना) **सर्वम्** (सर्वनाम), **स** (सर्वनाम) **ओतः** (ओ - आह्वान करना, बुलाना) (है) **विभूः** (वि + भू - होना, पाना, चिन्तन करना) **प्रजासु** (प्र - बहुत, प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जन्म होना)।। 8।।

53. प्र तत् वोचेत् अमृतम् नु विद्वान्,
गन्धर्वो धाम विभृतम् गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहा अस्य,
यः तानि वेद स पितुः पिता असत्।। 9।।

मन्त्रार्थ- तत् **उस** अमृतम् **अमृत को** नु **शीघ्र** गन्धर्वो **गन्धर्व** विद्वान् **विद्वान्,** धाम **धारण करने योग्य** विभृतम् **विशेष भरण करने वाला** गुहा **गुह्य** सत् **सत्य, नित्य को** प्र वोचेत् **कहे, प्रवचन करे।** अस्य **इसके** त्रीणि **तीन** पदानि **पद** गुहा **गुह्य में** निहिता **स्थित (हैं),** यः **जो** तानि **उन को** वेद **जानता है**, स **वह** पितुः **पिता का** पिता **पिता** असत् **हो गया है।।** 9।।

भावार्थ - परमात्मा के सत्य स्वरूप को विद्वान् ही बता सकते हैं। पहले भी कहा जा चुका है कि उस परमात्मा के तीन पद तो मूल परम चेतन रूप में सर्वदा स्थित रहते हैं, मात्र एक पद ही सृष्टि के रूप में व्यक्त होता है। उस अव्यक्त मूल स्वरूप को जो जान लेता है, वह तो पिता का भी पिता हो जाता है अर्थात् स्वयम् ब्रह्म-रूप हो जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तत् (सर्वनाम) **अमृतम्** (अ - नहीं, मृ - मरना) **नु** (निपात, अव्यय) **गन्धर्वो** (गम् + धृ, गम् = जाना, जानना, पाना, धृ = धारण करना) **विद्वान्** (विद् - जानना), **धाम** (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना) **विभृतम्** (वि - विशेष, भृ - भरण करने वाला) **गुहा** (गुह् - आच्छादन करना, जाना) **सत्** (सत् - होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना), **प्र वोचेत्** (प्र - प्रकृष्ठ, वच्-वद् - कहना)। **अस्य** (सर्वनाम) **त्रीणि** (संख्या) **पदानि** (पद् - चलना) **गुहा** (गुह् - आच्छादन करना, जाना) **निहिता** (नि - निरन्तर, निश्चित, हि - जाना), **यः** (सर्वनाम)

तानि (सर्वनाम) **वेद** (विद् - जानना), **स** (सर्वनाम) **पितुः** (पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना) **पिता** (पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना) **असत्** (अस् - होना)**॥ 9 ॥**

54. स नो बन्धुः जनिता स विधाता,
धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतम् आनशानाः,
तृतीये धामन् अधि ऐरयन्त॥ 10 ॥

मन्त्रार्थ - स **वह** नो **हमारा** बन्धुः **भाई,** जनिता **उत्पन्न करने वाला,** स **वह** विधाता **विधान करने वाला,** धामानि **धामों को** विश्वा **सब** भुवनानि **भुवनों को, लोक लोकान्तरों को** वेद **जानता है।** यत्र **जहाँ** देवा **देवगण** अमृतम् **अमृत को** आनशानाः **अशन करते हुए,** तृतीये **तीसरे** धामन् **धाम में** अधि ऐरयन्त **प्राप्त होते हैं**॥ 10 ॥

भावार्थ - परमात्मा ही हमारा अपना है। वही हमारा भाई है तथा उत्पन्न करने वाला माता-पिता भी है। वही सम्पूर्ण सृष्टि संचालन का विधान बनाने वाला है। वही है जो सभी भुवनों को जानता है, अन्य किसी की सामर्थ्य इतनी नहीं है कि सब कुछ जान सके। जीव का ज्ञान सीमित ही होता है। जहाँ हम रहते है तथा जितना हम जानते हैं, वह तो हमारे लिए पहला धाम है ही, उसके अतिरिक्त जो सृष्टि है, वह दूसरा धाम कहा जा सकता है। इन दोनों धामों के अतिरिक्त जो कुछ है, वह परमात्मा का शुद्ध चेतन मूल स्वरूप है, वही तीसरा धाम है। उसको जानकर, उसका अनुभव कर ही अमृत तत्व का पान कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - स (सर्वनाम) **नो** (सर्वनाम) **बन्धुः** (बध्-बन्ध् = बाँधना, बद्ध करना, हिंसा करना, मारना, वध करना, घृणा करना), **जनिता** (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जन्म होना), विधाता (वि - विशेष, धा - धारण करना), **धामानि** (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना) **विश्वा** (सर्वनाम) **भुवनानि** (भू - होना), **वेद** (विद् - जानना)। **यत्र**

(सर्वनाम) **देवा** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, प्रीति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) **अमृतम्** (अ - नहीं, मृ - मरना) **आनशानाः** (आ - समन्तात, सम्यक्, अन्- चेतन होना, प्राण होना, जीवन होना, समर्थ होना, जाना, शान - तीक्ष्म करना, पैना करना, धार रखना, शण - दान करना, जाना, जानना, शब्द करना), **तृतीये** (संख्या) **धामन्** (धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना) **अधि** (उपसर्ग) **ऐरयन्त** (इर् - ईर्ष्या करना, ऋ-इर्य - जाना, चलना, फैलाना, ईर - जाना, प्रेरणा करना)॥ 10 ॥

55. परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्,
परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशः च।
उपस्थाय प्रथमजाम् ऋतस्य आत्मना,
आत्मानम् अभि सम् विवेश॥ 11 ॥

मन्त्रार्थ- भूतानि **प्राणियों को** परीत्य **सब ओर से व्याप्त होकर,** लोकान् **लोकों को** परीत्य **सब ओर से व्याप्त होकर** सर्वाः **सब** प्रदिशो **प्रदिशाओं** च **और** दिशः **दिशाओं को** परीत्य **सब ओर से व्याप्त होकर।** उपस्थाय **उपस्थित होकर** प्रथमजाम् **प्रथम उत्पन्न को** ऋतस्य **ऋत के** आत्मना **आत्मा से** आत्मानम् **आत्मा को** अभि सम् विवेश **सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करो॥** 11 ॥

भावार्थ - भूत का अर्थ है जो हो चुका है, अस्तित्व में आ गया है। सामान्यतः अर्थ प्राणी माना जाता है। जो भी सृष्टि हो चुकी है, विशेष रूप से सभी प्राणियों को परीत्य अर्थात् परिव्याप्त होकर अथवा परे जाकर। इसी प्रकार से सभी भुवनों को भी परिव्याप्त होकर अथवा परे जाकर। इसी प्रकार सभी दिशा - प्रदिशाओं को भी परिव्याप्त कर अथवा परे जाकर। भाव यह है कि जो कुछ भी हमारे चिन्तन में आ सकता है, उस सबसे परे जाकर। परे जाना भी तभी सम्भव है जब हम परिव्याप्त हो जायें। व्याप्त हुए विना परे जाने की बात तो पलायन है, इस तरह से परे जाना तो सम्भव हो नहीं सकेगा। जब उपासक इतनी साधना कर लेता है, वह इन सबसे परे जा चुका होता है, तब वह प्रथमजा अर्थात् पहले उत्पन्न के उपस्थाय अर्थात् समीप स्थित होकर ऋत की आत्मा

द्वारा आत्मा में अभि सम् विवेश अर्थात् पूर्णतः लीन हो जाता है। परमात्मा से एकाकार होने की यही अवस्था है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - भूतानि (**भू - होना**) परीत्य (**परि - सब ओर, ई - जाना, व्याप्त होना, प्रेरणा करना**), लोकान् (**लोक् - देखना, बोलना**) परीत्य (**परि - सब ओर, ई - जाना, व्याप्त होना, प्रेरणा करना**), सर्वाः (सर्वनाम) प्रदिशो (**प्र - प्रकृष्ट, दिश् - दिखाना, दिखाना, समझाना, कहना, देना**) च (**अव्यय**) दिशः (**दिश् - दिखाना, समझाना, कहना, देना**) परीत्य (**परि - सब ओर, ई - जाना, व्याप्त होना, प्रेरणा करना**), उपस्थाय (**उप - समीप, स्था - स्थित होना, ठहरना**) प्रथमजाम् (**प्रथम - पहला, जन् - उत्पन्न होना**) ऋतस्य (**ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना**) आत्मना (**अत् - सतत चलना, जानना, पाना, आत् - चेतन होना**) आत्मानम् (**अत् - सतत चलना, जानना, पाना, आत् - चेतन होना**) अभि सम् विवेश (**अभि - अभिमुख, सम् - सम्यक्, वि - विशेष, विश् - प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना, सूचना करना, प्रेरणा करना**)॥ 11॥

56. परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा,
परि लोकान् परि दिशः परि स्वः।
ऋतस्य तन्तुम् विततम् विचृत्य,
तत् अपश्यत् तत् अभवत् तत् आसीत्॥ 12॥

मन्त्रार्थ- परि **सब ओर** द्यावापृथिवी **द्यावा तथा पृथ्वी** सद्य **शीघ्र** इत्वा **प्राप्त होकर**, परि **सब ओर** लोकान् **लोकों को** परि **सब ओर** दिशः **दिशाओं को** परि **सब ओर** स्वः **ऐश्वर्य को**। ऋतस्य **ऋत का** तन्तुम् **तन्तु को** विततम् **विस्तृत** विचृत्य **विशेष रूप से प्रकाशित कर** तत् **उसने** अपश्यत् **देखा,** तत् **वह** अभवत् **हुआ,** तत् **वह** आसीत् **था**॥ 12॥

भावार्थ - सब से परे जाकर जब ऋत के तन्तु को प्रकाशित कर विस्तृत किया तो उसने देखा, वह हो गया, वह था। इतने सुन्दर ढंग से ब्रह्म को पाने का वर्णन है, वास्तव में अभिभूत करने वाला मनोहारी वर्णन है। परमात्मा को पाने के लिए सबसे परे जाना होगा, ऋत अर्थात् सृष्टि मूल संचालन विधान तथा

नियमों के तन्तुओं को प्रकाशित करना होगा, अर्थात् जानना-समझना होगा, उन तन्तुओं का विस्तार करना होगा, अपनाना होगा, लोगों को भी उस प्रकाश का लाभ देना होगा। इसके पश्चात् उस परम सत्य परमात्मा को देखा जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है। उसको देखने के पश्चात् तो वह स्वयम् भी वही हो गया जो मूल स्वरूप में वह था, अर्थात् परमात्मा के साथ एकाकार हो गया।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - परि (उपसर्ग) **द्यावापृथिवी** (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना, पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना) **सद्य** (सद्यो - शीघ्र, तत्काल, तत्क्षण, अभी का (सर्वनाम), सद् - जाना, चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, सूखना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना) इत्वा प्राप्त होकर (इ - जाना, जानना, पाना), **लोकान्** (लोक् - देखना, बोलना) **दिशः** (दिश् - दिखाना, समझाना, कहना, देना) **स्वः** (सु - उत्पन्न होना, ऐश्वर्य होना)। **ऋतस्य** (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना), **तन्तुम्** (तन् - विस्तार करना, वर्णन करना, शब्द करना, आश्रय देना) **विततम्** (वि - विशेष, तन् - विस्तार करना, वर्णन करना, शब्द करना, आश्रय देना) **विचृत्य** (वि - विशेष, चृत् - प्रकाशित करना, चमकना, एकत्र करना, गूँथना) **तत्** (सर्वनाम) **अपश्यत्** (पश्य - देखना), **अभवत्** (भू - होना), **आसीत्** (अस् - होना)॥**12**॥

(381) सूक्त 4

57. सदसः पतिम् अद्भुतम्,
प्रियम् इन्द्रस्य काम्यम्।
सनिम् मेधाम् अयाषिम्॥ 13॥

मन्त्रार्थ - सदसः **सभा के** पतिम् **रक्षक, पालक** अद्भुतम् **आश्चर्य जनक,** प्रियम् **प्रिय** इन्द्रस्य **इन्द्र के** काम्यम् **कमनीय**। सनिम् **दानी** मेधाम् **मेधा, बुद्धि को** अयाषिम् **प्राप्त होऊं,** स्वाहा **व्यापकता से**॥ 13॥

भावार्थ - इन्द्र के काम्य, प्रिय, अद्भुत सभापति, दानी मेधा को

व्यापकता से प्राप्त होऊं, यह भावना है। स्वाहा शब्द यजन आदि सामूहिक कार्यक्रमों में मन्त्र के अन्त में सामान्यतः बोला जाता रहा है, जैसे मन्त्र के आरम्भ में अनिवार्य रूप से ओम् का उच्चारण किया जाता है। वहाँ भी भावना यही होती है कि जो मन्त्र हम उच्चारित कर रहे हैं, जो पवित्र कार्य हम कर रहे हैं, वह व्यापक हो, उसका लाभ सभी को प्राप्त हो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सदसः **(सद् - बैठना)** पतिम् **(पत् - ऐश्वर्य होना, गति करना, उतरना, गिरना, शक्तिमान् होना, श्रीमान् होना, पराक्रम करना)** अद्भुतम् (अद्भुत, आश्चर्यजनक (अव्यय), अद् = खाना, आत्मसात् करना, अ – नहीं, दा – देना)। प्रियम् **(प्री - प्रीति करना)** इन्द्रस्य **(इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)** काम्यम् **(कम् - चाहना, इच्छा करना)**। सनिम् **(सन् - दान करना, सेवा करना, पूजा करना, सत्कार करना)** मेधाम् **(मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)** अयाषिम् **(अय् - जाना, चलना, जानना, पाना)**, स्वाहा **(सु - अच्छा, स्व - अपना, अह् - व्याप्त होना)।। 13 ।।**

58. याम् मेधाम् देवगणाः, पितरः च उपासते। तया माम् अद्य मेधया, अग्ने मेधाविनम् कुरु।। 14 ।।

मन्त्रार्थ- अग्ने **हे अग्नि, (परमात्मन्)**, याम् **जिस** मेधाम् **बुद्धि को** देवगणाः **देवगण** च **और** पितरः **पितर** उपासते **उपासना करते हैं,** तया **उससे** मेधया **मेधा से,** माम् **मुझको** अद्य **आज** (अव्यय) मेधाविनम् **मेधावी** कुरु **करो**।। 14 ।।

भावार्थ - देवगण तथा पितर मेधा की उपासना करते रहे हैं। मेधा की उपासना से ही सुख, शान्ति, प्रगति सम्भव है। अतः प्रार्थना की जा रही है कि हे परमात्मन्, मुझे भी उसी मेधा से मेधावी बना दो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने **(अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)**, याम् (सर्वनाम) मेधाम् **(मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)** देवगणाः **(दिव् - तेजस्वी होना)** च (अव्यय) पितरः **(पि - जाना, जानना, पाना, पा - पालन**

करना, रक्षा करना) उपासते **(उप - समीप, निकट, आस् - बैठना)**, तया **(सर्वनाम)** मेधया **(मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)**, माम् (सर्वनाम) अद्य (अव्यय)। मेधाविनम् **(मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)** कुरु **(कृ - करना)**।। 14 ।।

59. मेधाम् मे वरुणो ददातु, मेधाम् अग्निः प्रजापतिः। मेधाम् इन्द्रः च वायुः च, मेधाम् धाता ददातु मे।। 15 ।।

मन्त्रार्थ - मेधाम् **मेधा को** मे **मेरे लिये** वरुणो **वरुण,** मेधाम् **मेधा को** अग्निः **अग्नि,** प्रजापतिः **प्रजा का रक्षक** ददातु **प्रदान करे**। मेधाम् **मेधा को** इन्द्रः **इन्द्र, परम ऐश्वर्यवान्** च **और** वायुः **वायु** च **और** मेधाम् **मेधा को** मे **मेरे लिये** धाता **धारण करने वाला** ददातु **प्रधान करे**।। 15 ।।

भावार्थ - देव शक्तियों से मेधा प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है। सभी विद्वानों, गुणवानों से तथा परमात्मा से भी हम मेधा की ही याचना करें तो उत्तम है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मेधाम् **(मेधा - शीघ्र समझना, मेध् - समझना, जानना, सङ्गति करना, मेल करना, हिंसा करना)** मे (सर्वनाम) वरुणो **(वृ - वरण करना, आच्छादन करना)**, अग्निः **(अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)**, प्रजापतिः **(प्र - प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न करना, पत - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना)** ददातु **(दा - देना)**। इन्द्रः **(इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)** च **(सर्वनाम)** वायुः **(वा - गति करना, बहना)** धाता **(धा - धारण करना)** ददातु **(दा - देना)**।। 15 ।।

60. इदम् मे ब्रह्म च क्षत्रम्, च उभे श्रियम् अश्नुताम्। मयि देवा दधतु श्रियम्, उत्तमाम् तस्यै ते स्वाहा।। 16 ।।

मन्त्रार्थ- इदम् **यह** मे **मेरे** ब्रह्म **ब्रह्म** च **और** क्षत्रम् **क्षत्र** च **और** उभे **दोनों** श्रियम् **श्री को** अश्नुताम् **प्राप्त हों**। मयि **मुझमें** देवा **देवगण** उत्तमाम् **उत्तम** श्रियम् **श्री को** दधतु **धारण करें**। तस्यै **उसके लिए** ते **तेरे लिये** स्वाहा **व्यापकता हो** ।। 16 ।।

भावार्थ - श्री को प्राप्त करने की कामना है। श्री धातु का अर्थ सेवा करना तथा भोजन पकाना, राधना होता है। इस प्रकार श्री शब्द का अर्थ हुआ सेवा तथा भोजन तैयार करना। सामान्यतः श्री शब्द का अर्थ धन-समृद्धि से लिया जाता है। स्पष्ट है कि वैदिक संस्कृति धन की कामना सेवा के लिए तथा जीवन यापन की भोजन जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही है, भोग-विलास के लिए नहीं। इसमें जियो और जीने दो, सुखी रहो और सुखी बनाओ की भी भावना प्रमुख है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इदम् (सर्वनाम) मे (सर्वनाम) ब्रह्म (**बृह् - बढ़ना**) च (**अव्यय**) क्षत्रम् (**क्षत्-क्षद् - ढकना, मारना, रक्षा करना**), उभे (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना) श्रियम् (श्री - सेवा करना, व्याप्त होना, श्रेय होना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना) अश्नुताम् (अश् = भोजन करना, व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना)। मयि (सर्वनाम) देवा (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, खेलना) उत्तमाम् (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना) दधतु (**धा - धारण करना**)। तस्यै (**सर्वनाम**) ते (सर्वनाम) स्वाहा (**सु - अच्छा, स्व - अपना, अह् - व्याप्त होना**) **॥ 16 ॥**

इति तृतीयः अध्यायः

ॐ

चतुर्थः अध्यायः

देवोपनिषद्

(17) सूक्त 1

61. अस्य अजरासो दमाम् अरित्रा,
अर्चत् धूमासो अग्नयः पावकाः।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो,
वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥ 1 ॥

मन्त्रार्थ- अस्य **इसका** अजरासो **जरा रहित, जीर्ण न होने वाले** दमाम् **दयालुओं को** अरित्रा **शत्रुओं से बचाने वाले,** अर्चद्धूमासो **अर्चित कम्पन (धूम) अथवा कम्पितों की अर्चना करने वाले** अग्नयः **अग्निगण अर्थात् अग्रणी लोग** पावकाः **पवित्रकारक।** श्वितीचयः **श्वेत या शुभ्रता का सञ्चय करने वाले** श्वात्रासो **द्रुतगामी** भुरण्यवो **धारण -पोषण करने वाले,** वनर्षदो **वनवासी** वायवो **वायु के** न **समान, अथवा नहीं** सोमाः **ऐश्वर्यमय (स्वरूप है, अथवा उपासक हैं)** ॥ 1॥

भावार्थ - अस्य अर्थात् इसका का भावार्थ परमात्मा है। परमात्मा का गुण-कर्म-स्वभाव कैसा है, इसका वर्णन किया गया है। गुणवाची शब्दों अथवा विशेषणों को बहुवचन में रखा गया है, इसका अर्थ है कि परमात्मा के गुण तो अनन्त हैं ही, साथ बहुवचन होने से इन विशेषणों को उसके उपासकों के मानना भी उचित है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अस्य (सर्वनाम) **अजरासो** (अ - नहीं, जृ - वृद्ध होना, जीर्ण होना), **दमाम्** (दम् - दमन करना, दया करना, शमन करना, जीतना) **अरित्रा** (ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना), **अर्चद्धूमासो** (अर्च - पूजा करना, मान करना, धू - कम्पाना,

कम्पित होना, हिलाना, क्षोभित करना)। **अग्नयः** (अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, अग्रणी होना), **पावकाः** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **श्वितीचयः** (श्वित- सफेद होना, शुभ्र होना)। **श्वात्रासो** (शव-श्वा - जाना, भागना, दौड़ना, श्वित - श्वेत होना, शुभ्र होना, शो - तीक्ष्ण करना, पैना करना, शान धरना, छील के पैना करना), **भुरण्यवो** (भुरण-पालन करना, धारण करना)। **वनर्षदो** (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना, सद्-षद् - बैठना)। **वायवो** (वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना), **न** (अव्यय) **सोमाः** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना)॥ 1 ॥

62. हरयो धूमकेतवो, वातजूता उप द्यवि।
यतन्ते वृथक् अग्नयः ॥ 2 ॥

मन्त्रार्थ- हरयो **हरणशील** धूमकेतवो **धूमकेतु समूह,** वातजूता **वायु के समान तीव्र गति वाले** उप द्यवि **प्रकाश के समीप** अग्नयः **अग्निगण या अग्रणी जन** वृथक् **नाना प्रकार से** यतन्ते **यत्न करते हैं**॥ 2 ॥

भावार्थ - लोगों के कष्ट हरण करने वाले सज्जनों को हरि कहा गया है। बहुवचन में हरयः होने से इसका अर्थ सज्जन उपासक लिया गया है। एकवचन में हरि परमात्मा को कहते हैं क्योंकि वह एक ही सबके कष्टों का हरण करता है। कित धातु का अर्थ निवास तथा पीड़ा दूर करना होता है, केत धातु का अर्थ बुलाना, सम्मुख होकर वातार करना होता है। धू धातु का अर्थ कम्पन करना है। अतः धूमकेतु का अर्थ कम्पित निवास वाले जन होगा। इसका अर्थ कम्पित अर्थात् गतिशील अथवा लचीला रुख रखते हुए लोगों को बुलाकर वार्ता करना भी हो सकता है। भाव यह है निवास या रुख में जड़ता नहीं होनी चाहिए, लचीला रुख तथा समायोजन की भावना रहना व्यावहारिकता की दृष्टि से उचित है। आकाश में विचरण करने वाले धूमकेतु भी इस अर्थ में उचित ही है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - हरयो (हृ - हरण करना, ले जाना, नाश करना, पाप), **धूमकेतवो** (धू -कम्पन करना, नोचना, कम्पित करना, काँपना, कम्पाना, कम्पित होना, हिलाना, क्षोभित करना (केत -बुलाना, आमन्त्रित करना, सलाह देना), **वातजूता** (वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना, जु - जाना, जल्दी जाना, भागना, जुत - बोलना, शब्द करना, प्रकाशित होना, चमकना।), **उप** (उप - समीप, द्यु-द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - चमकना, प्रकाशित होना।), **अग्नयः** (अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, अग्रणी होना), **वृथक्** (अव्यय), **यतन्ते** (यत -यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना, ठहराना)॥ 2 ॥

63. यजा नो मित्रावरुणा, यजा देवान् ऋतम् बृहत्।
अग्ने यक्षि स्वम् दमम्॥ 3 ॥

मन्त्रार्थ- अग्ने **हे अग्नि (अग्रणी परमात्मन्),** नो **हमारे** मित्रावरुणा **मित्र और वरुण (श्रेष्ठ जन),**यजा **यजन (सत्कार) करें,** बृहत् **बड़े** ऋतम् **ऋत का,** देवान् **देवों (विद्वानों) का** यजा **यजन (सत्कार) करें।** स्वम् **अपने** दमम् **दयालु को** यक्षि **पूजिये**॥ 3 ॥

भावार्थ - अग्नि स्वरूप, अग्रणी परमात्मा से यजन की प्रार्थना की गयी है। यजन का अर्थ देवपूजा, संगतिकरण, दान होता है। यज् धातु का मुख्य अर्थ देवपूजा ही माना जाता है। पूजा का अर्थ सत्कार करना, सेवा-सहायता करना ही है। इसी मन्त्र में समानार्थी के रूप में पूजा के अर्थ में यक्षि पद भी आया है। यक्ष् धातु का अर्थ पूजा करना होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, अग्रणी होना), **नो** (सर्वनाम)। **मित्रावरुणा** (मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना, वृ - वरण करना, आच्छादन करना), **यजा** (यज् - देव-पूजन, संगतिकरण, दान करना), **बृहत्** (बृह् - बढ़ना), **ऋतम्** (ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना), **देवान्** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना), **यजा** (यज् - देव-पूजन, संगतिकरण, दान करना)। **स्वम्** (स्व - निज, अपना), **दमम्**

(दम् - दमन करना, दया करना, शमन करना, जीतना), **यक्षि** (यक्ष - आराधना करना, पूजा करना, सत्कार करना)॥ 3॥

64. युक्ष्वा हि देवहूतमान्, अश्वान् अग्ने रथीः इव। नि होता पूर्व्यः सदः॥ 4॥

मन्त्रार्थ- नि **निश्चित रूप से** होता **आह्वान्, ग्रहण, दान करने वाले** पूर्व्यः **पूर्व** सदः **प्रतिष्ठित** अग्ने **हे अग्नि,** देवहूतमान् **देवों का आह्वान् करते हुए,** रथीः **रथी (रथस्वामी)** अश्वान् **शीघ्रगामी (घोड़ों)** इव **के समान** हि **ही** युक्ष्वा **युक्त कीजिये।** ॥ 4॥

भावार्थ - जैसे रथी शीघ्रगामी अश्वों को रथ में युक्त करता है, जोतता है, लगा देता है, उसी तरह आप भी शीघ्रगामी अर्थात् शीघ्रता से कार्य करने वाले कुशल जनों को आप भी कार्यों में नियुक्त कीजिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नि (उपसर्ग) होता (**हु -ह्वे - आह्वान करना, दान करना, आदान-प्रदान करना**), पूर्व्यः (**पूर्व -पूर्ण करना, भरना, रहना, आश्चर्य करना, बुलाना**), सदः **प्रतिष्ठित (सद्-षद् - बैठना)**, अग्ने (**अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, अग्रणी होना**), देवहूतमान् (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना, हु -ह्वे - आह्वान करना, दान करना, आदान-प्रदान करना**), रथीः (**रथ - जाना, ले जाना**), अश्वान् (**अश्-अशु - व्याप्त होना, फैलना, तीव्रता से पहुँचना**), इव (अव्यय) हि (अव्यय) युक्ष्वा (**यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, युङ्क्-युनक्-युज - जुड़ना, मिलाप करना, एकत्र करना**)॥ 4॥

(18) सूक्त 2

65. द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे,
अन्यान्या वत्सम् उप धापयेते।
हरिः अन्यस्याम् भवति स्वधावान्,
शुक्रो अन्यस्याम् ददृशे सुवर्चाः॥ 5॥

मन्त्रार्थ- द्वे **दो** विरूपे **भिन्न भिन्न रूप वाली** स्वर्थे **सुन्दर अर्थ या**

प्रयोजन में, चरतः **विचरण करती हैं,** अन्यान्या **अन्य अन्य** वत्सम् **बोलने वाले को** उप धापयेते **निकट पोषण करती हैं।** अन्यस्याम् **अन्य में** हरिः **हरि (हरने वाला)** स्वधावान् **स्वधायुक्त** भवति **होता है।** अन्यस्याम् **अन्य में** शुक्रो **पवित्रकर्ता, शीघ्रकारी** सुवर्चाः **सुन्दर तेजस्वी** ददृशे **दीख पड़ता है** ॥ 5॥

भावार्थ - प्रकृति की शक्तियाँ हों, या परिवारमें माताएं अथवा समाज में हितकारी संस्थाएं, सभी के रूप तो अलग-अलग होते हैं, परन्तु सभी अच्छे उद्देश्य से ही कार्य करने का प्रयास करती हैं। उनके प्रयासों के अनुरूप सुन्दर परिणाम भी मिलते हैं। किसी के वत्स अर्थात् साथ बोलने वाले स्वधावान् हरि बनते हैं अर्थात् आत्म तत्व को धारण करने वाले, मनोहारी स्वभाव वाले, कष्ट हरण करने वाले होते हैं तथा अन्य के प्रयासों से शुक्र सुवर्चा अर्थात् पवित्रकर्ता, सुन्दर तेजोमय लोग तैयार होते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - द्वे (संख्या) विरूपे (**वि - विशेष, रूप् - आकार बनाना, रचना करना, रूप बनाना**), स्वर्थे (**सु** = उत्तम, सुष्ठु, अच्छा, सुन्दर (उपसर्ग), **अर्थ -मांगना, याचना करना, चाहना**), चरतः (**चर् - चलना, विचरण करना**), अन्यान्या (**सर्वनाम**) वत्सम् (**वद् -वच्- बोलना**), उप धापयेते (उप- **सपीप, धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना**)। अन्यस्याम् (सर्वनाम) हरिः (**हृ - हरण करना, ले जाना, नाश करना, पाप काटना**), स्वधावान् (**स्व - अपना, धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना,** यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, बांधना, बन्धन करना, गूंथना, युज - जुड़ना, मिलाप करना, मन एकाग्र करना, एकत्र करना), भवति (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। शुक्रो (**शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना**), सुवर्चाः (**सु** = उत्तम, सुष्ठु, अच्छा, सुन्दर (उपसर्ग), **वर्च - प्रकाशित होना, चमकना**), ददृशे (**दृश् - देखना**)॥ 5॥

66. अयम् इह प्रथमो धायि धातृभिः,
होता यजिष्ठो अध्वरेषु ईड्यः।

यम् अप्नवानो भृगवो विरुरुचुः,
वनेषु चित्रम् विभ्वम् विशेविशे ॥ 6 ॥

मन्त्रार्थ- अयम् **यह** इह **यहाँ (इस संसार में)** धातृभिः **धारण करने वालों द्वारा** प्रथमो **प्रथम** धायि **धारण किया गया है,** होता **आह्वान, दान करने वाला** यजिष्ठो **यजिष्ठ, अतिशय यजन (सङ्गत) करने वाला** अध्वरेषु **अहिंसकों में** ईड्यः **स्तुत्य (है)।** यम् **जिसे** अप्नवानो **अप्नवान (सुसन्तानों के सहित)** भृगवो **भृगुगण (दृढ़ ज्ञान वाले)** वनेषु **वनों में** चित्रम् **आश्चर्यरूप** विभ्वम् **विभु को** विशेविशे **प्रजाओं में** विरुरुचुः **प्रदीप्त करें।।** 6 ।।

भावार्थ - परमात्मा ही सर्वप्रथम धारण करने योग्य है। उसी को ज्ञानवान् अपनी चेतना में तथा जन-जन में भी धारण करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम) इह **(सर्वनाम)** धातृभिः **(धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना)** प्रथमो **(संख्या,** प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना) धायि **(धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना),** होता **(हु -ह्वे - आह्वान करना, दान करना, आदान-प्रदान करना),** यजिष्ठो **(यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना),** अध्वरेषु **(धूर - मार डालना या दुःख देना, समीप जाना या आना)।** ईड्यः **(ईड - प्रशंसा करना, स्तुति करना),** यम् **(सर्वनाम)** अप्नवानो **(अप - पालने, पालन करना, वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना),** भृगवो **(भृ - भरण-पोषण, धारण करना, गण - शब्द करना, गिनना, नापना, मानना, समझना, समूह बनाना, गु - अस्पष्ट बोलना, शब्द करना, मनन करना)।** वनेषु **(वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना),** चित्रम् **(चित्र - चित्र बनाना, आश्चर्य करना),** विभ्वम् **(वि =** विशेष, विविध, विना, विलोम

(उपसर्ग), **भू - होना, उत्पन्न होना, होना, प्राप्त होना, एकत्र करना, कल्पना करना),** विशेविशे **(विश् - प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना, सूचना करना, प्रेरणा करना),** विरुरुचुः **(वि =** विशेष, विविध, विना, विलोम (उपसर्ग), **रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना)**।। 6 ।।

67. त्रीणि शता त्री सहस्राणि अग्निम्,
त्रिंशत् च देवा नव च असपर्यन्।
औक्षन् घृतैः अस्तृणन् बर्हिः अस्मै,
आत् इत् होतारम् नि असादयन्त ॥ 7 ॥

मन्त्रार्थ- अग्निम् **अग्नि को** त्री **त्रीन** सहस्राणि **हजार** त्रीणि **तीन** शता **सौ** त्रिंशत् **तीस** च **और** नव **नव** च **और** देवा **देवगणों ने** असपर्यन् **पूजन किया।** घृतैः **घृत (घी वा जलों से)** औक्षन् **सींचते हुए** अस्तृणन् **आच्छादित किया** बर्हिः **अन्तरिक्ष को** अस्मा **इस,** आत् इत् **सब ओर से ही** होतारम् **हवन करने वाले को** नि असादयन्त **निरन्तर स्थापित करें।।** 7 ।।

भावार्थ - अग्नि स्वरूप परमात्मा की सपर्या, परिचर्या, पूजन 3339 देवगम करते हैं। इस संख्या का रहस्य तो निश्चित ही गहन शोध का विषय है। इस विषय किसी ग्रन्थ या विद्वान् के विचार को स्वीकार कर उसे ही सत्य मान लेना उचित नहीं होगा। ऐसे स्थलों पर उदार तथा व्यापक दृष्टि से अध्ययन तथा चिन्तन-मनन करना आवश्यक है। घृ धातु का अर्थ सिंचन करना, प्रकाश करना होता है। अतः इसके लिए अर्थात् परमात्मा के लिए बर्हिः अर्थात् बड़े क्षेत्र को प्रकाशित, अभिसिंचित करने का भाव है। इसके अनन्तर होता अर्थात् इस कार्य का प्रमुख आयोजक आह्वान करने वाला भी निश्चित होता है, बैठता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्निम् **(अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना),** त्री **(त्रि - तीन),** सहस्राणि **(संख्या),** त्रीणि **(त्रि - तीन),** शता **(संख्या),** त्रिंशत् **(संख्या),** च **(अव्यय),** नव **(संख्या),** देवा **(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना),** असपर्यन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, सपर - पूजा करना, सेवा करना)। घृतैः **(घृ**

- **गीला करना, तरडा देना, सींचना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, चमकना, प्रकाशित होना**), औक्षन् (**उक्ष् - सिंचन करना, स्वच्छ करना**), अस्तृणन् (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, **तृण-तर्ण - घास खाना, चरना, शब्द करना, अंकुरित होना**)। बर्हिः (**बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना**), अस्मा (**सर्वनाम**) आत् इत् (आत् - भी, अथ, अब, इसके अनन्तर, अव्यय, इत् - ही, अव्यय) होतारम् (**हु -ह्वे - आह्वान करना, दान करना, आदान-प्रदान करना**), नि असादयन्त (**नि - निश्चित, निरन्तर,** अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, **सद्-षद् - बैठना**)॥ 7॥

68. मूर्द्धानम् दिवो अरतिम् पृथिव्या,
वैश्वानरम् ऋते आ जातम् अग्निम्।
कविम् सम्राजम् अतिथिम् जनानाम्,
आसन् आ पात्रम् जनयन्त देवाः॥8॥

मन्त्रार्थ- दिवो **दिव के** मूर्द्धानम् **मूर्द्धा** अरतिम् **रतिहीन, प्राप्त होने वाले** पृथिव्या **पृथिवी के** वैश्वानरम् **विश्वजन** अग्निम् **अग्नि को** ऋते **ऋत में** आ जातम् **समुत्पन्न किया।** देवाः **देवों (विद्वान् लोगों) ने** आसन् **बैठे हुए** आ पात्रम् **रक्षा हेतु** कविम् **कवि** सम्राजम् **सम्यक् प्रकाशमान** जनानाम् **जनों के** अतिथिम् **अतिथि को** जनयन्त **उत्पन्न किया**॥ 8॥

भावार्थ - अग्नि का भावार्थ परमात्मा तो मुख्य रूप से होता ही है, उसके उपासक भी तेजस्वी, अग्रणी होने से अग्निरूप हो जाते हैं। वे ही देव कहे जाते हैं। प्राकृतिक शक्तियों को भी देव कहते हैं। ऋत अर्थात् सार्वभौम प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही देवगण परमात्मा को अपने अन्तःकरण में उत्पन्न करते हैं। परमात्मा तो सर्वव्यापी है ही, उसे अन्तःकरण में उत्पन्न करने का भाव उसको अनुभव करना ही है। अग्नि को उत्पन्न करने का भाव अग्नि-स्वरूप उपासकों को उत्पन्न करना भी माना जाना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - दिवो (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), मूर्द्धानम् (**मूर्द्ध** - उच्च होना), अरतिम् (**ऋ -

जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना**), पृथिव्या (**पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना**), वैश्वानरम् (**विश्व-सभी, नृ - चलना, ले जाना**), अग्निम् (**अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना**), ऋते (**ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना**), आ जातम् (**आ =** समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग), **जन् - उत्पन्न होना**)। देवाः (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), आसन् (**आस् - बैठना**), आ पात्रम् (**आ =** समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग), **पा - पालन करना, रक्षा करना**), कविम् (कु, कव् = शब्द करना, कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना), सम्राजम् (**सम् =** सम्यक् रूप से, भली भाँति (उपसर्ग), **राज - चमकना, शोभित होना**), जनानाम् (**जन् - उत्पन्न होना**), अतिथिम् (**अत - जाना, सदैव जाते रहना**), जनयन्त (**जन् - उत्पन्न होना**)॥ 8॥

(19) सूक्त 3

69. अग्निः वृत्राणि जङ्घनत्,
द्रविणस्युः विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः॥9॥

मन्त्रार्थ- समिद्धः सम्यक प्रकाशवान् **शुक्र** पवित्र **आहुतः** आह्वान किये, बुलाये हुए **द्रविणस्युः** प्रवाहकामी **अग्निः** अग्नि ने **वृत्राणि** वृत्रों को **विपन्यया** विशेष अर्चना से **जङ्घनत्** हनन किया॥ 9॥

भावार्थ - अग्नि अर्थात् अग्रणी (परमात्मा अथवा उपासक) ने आह्वान करने पर वृत्रों का हनन किया, मार दिया। ऐसा विशेष अर्चना से सम्भव हो सका। वृत्र क्या हैं, जिनको मारना पड़ा। वृत् धातु का एक अर्थ हिंसा करना भी है। वृत्र हिंसक स्वभाव तथा हिंसक जन हैं जिनका हनन करना आवश्यक हो जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - समिद्धः (इध्-इधि-इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। **शुक्र** (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना,पवित्र होना,जाना)। **आहुतः** (हु -ह्वे - आह्वान करना, दान करना, आदान-प्रदान

करना)। **द्रविणस्युः** (द्रु - जाना, अनुसरण करना)। **अग्निः** (अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)। **वृत्राणि** (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् -वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना)। **विपन्यया** (वि - विशेष, विविध, विना, विलोम (उपसर्ग), पन - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **जङ्घनत्** (हन्-वध् - वध करना, मारना, चलना, गति करना, हिंसा करना)॥ 9॥

70. विश्वेभिः सोम्यम् मधु,
अग्ने इन्द्रेण वायुना।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ 10 ॥

मन्त्रार्थ- अग्ने **हे अग्नि,** विश्वेभिः **सबके द्वारा** सोम्यम् **सौम्य** मधु **मधु को,** इन्द्रेण **इन्द्र के साथ,** वायुना **वायु के साथ** मित्रस्य **मित्र के** धामभिः **धामों से** पिबा **पीजिये**॥ 10॥

भावार्थ - मधुपर्क अतिथि सत्कार प्रमुख साधन माना जाता है।अभ्यागत अतिथि को दधि तथा मधु मिलाकर खिलाने की परम्परा रही है। अतः कामना की गयी है कि अग्नि स्वरूप परमात्मा तथा उपासक सबके द्वारा सौम्य मधु का पान करें। सबके द्वारा मधुपान से भेदभाव रहित समान व्यवाहार की भावना व्यक्त हुई है। इतना अवश्य है कि मित्रों के धाम अर्थात् घरों का विशेष उल्लेख किया गया है। सुख-दुःख में साथ रहने वाले मित्रों को विशेष महत्व देना स्वाभाविक है। सोम का अर्थ सोममय भी किया गया है। सोम वनस्पति के साथ मधु ग्रहण करना भी उचित ग्राह्य भावार्थ है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने **(अग् - जाना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना),** विश्वेभिः **(सर्वनाम)** सोम्यम् **(सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना),** मधु **(मध - मधुर होना, मीठा होना),** इन्द्रेण **(इन्द् - परम ऐश्वर्य होना),** वायुना **(वा - गति करना, बहना, पवन-सा चलना)।** मित्रस्य **(मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना),** धामभिः **(धा - धारण करना, पोषण करना, रक्षा करना, दान करना),** पिबा **(पी - पीना)**॥ 10॥

71. आ यत् इषे नृपतिम् तेज आनट्,
शुचि रेतो निषिक्तम् द्यौः अभीके।
अग्निः शर्द्धम् अनवद्यम् युवानम्,
स्वाध्यम् जनयत् सूदयत् च॥ 11 ॥

मन्त्रार्थ- यत् जो आ तेज **- तेज** इषे इष के लिये नृपतिम् नृपति को आनट् चेतन-प्राणवान् करे, (वह) शुचि पवित्र रेतो ज्ञान निषिक्तम् अभिषिक्त द्यौः प्रकाश के अभीके निकट (है)। अग्निः अग्नि (अग्रणी) ने शर्द्धम् विजय को अनवद्यम् अनवद्यम् अगर्ह्य, अनिन्दित, निर्दोष युवानम् युवा को, स्वाध्यम् स्वाध्य (अच्छा अध्ययन, अपना अध्ययन अथवा ध्यान) को जनयत् उत्पन्न करता च और सूदयत् वर्षा करता है॥ 11॥

भावार्थ - इष् धातु का अर्थ इच्छा करना, बीनना, छानना, जाना, निरन्तर देखना है। जाना अर्थ वाली धातुओं को ज्ञान, प्राप्ति के अर्थ में भी माना जाता है। अतः इषे पद का अर्थ ज्ञान के लिए, इच्छा के लिए, छानने-बीनने, निरन्तर देखने के लिए आदि हो सकता है। नृपतिम् अर्थात् नरों के रक्षक, पालक को तेज चेतना प्राण हो। आनट् पद को अन् - चेतन होना, प्राण होना धातु से निष्पन्न माना गया है। आ यत् इषे नृपतिम् तेज आनट् का अर्थ हुआ, जो तेज नृपति को इष के लिए चेतन करे, प्राणवान् करे। आ आनट् का भावार्थ व्याप्त करे भी किया गया है जो उचित है। रि धातु का अर्थ गति करना है, अतः रेतः पद का अर्थ ज्ञान, गमन, प्राप्ति है। जो तेज नृपति को इष के लिए चेतन करे, प्राणवान् करे, वह शुचि, रेतः, निषिक्त होने के साथ ही द्यौ अभीके अर्थात् द्यौ के निकट है। अग्नि ने शर्ध, अनवद्य, युवा, स्वाध्य को उत्पन्न किया तथा सूदन अर्थात् क्षरित किया। शृध धातु का अर्थ आद्र होना, मुस्कराना, सहन करना, उत्साह होना, जीतना है। शर्द्ध का भावार्थ इसी अर्थ में बल भी किया गया है। अनवद्य अर्थात् अन् अवद्य, न बोलने योग्य नहीं, अर्थात् बोलने-कहने योग्य, प्रशंसनीय। षूद्-सूद धातु का अर्थ क्षरना, टपकना, झरना, झड़ी लगना है। बहुधा यहाँ सूदयत् का भावार्थ वर्षा होना किया गया है जो संगत है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यत् (सर्वनाम) **आ** तेज - (आ = समन्तात्,

सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग), तेज् - पालन करना, रक्षा करना, तेज होना, चमकना, तिज्-तेज् - प्रभाव होना, चमकाना, तीक्ष्ण करना)। **इषे** (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, जाना, पाना, निरन्तर देखना)। **नृपतिम्** (नृ - ले जाना, पत् - ऐश्वर्य होना, पा - पालन करना) **आनट्** (अन् - चेतन होना, चेतन करना, प्राण होना) **शुचि** (शुच् - शुद्ध होना, पवित्र होना) **रेतो** (रि - जाना, जानना, पाना) **निषिक्तम्** (षिञ्च्-सिञ्च् - सेचन करना, सिक्-सिङ्क् - ध्वनि करना) **द्यौः** (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना) **अभीके** (अव्यय)। **अग्निः** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना) **शर्द्धम्** (शृध् - सहन करना, जीतना) **अनवद्यम्** (अन् - नहीं, अवद्यम् - गर्ह्यम्) **युवानम्** (युव् - बल होना, तरुण होना, युवा होना, यु - मिलाना, अलग करना, बन्धन करना), **स्वाध्यम्** (अच्छा अध्ययन, अपना अध्ययन अथवा ध्यान) **जनयत्** (जन् - उत्पन्न करना) **च** (अव्यय)। **सूदयत्** (सूद् - टपकना, झरना, आश्रय करना, शुद्ध करना, पवित्र करना)।। 11।।

72. अग्ने शर्द्ध महते सौभगाय,
तव द्युम्नानि उत्तमानि सन्तु।
सम् जास्पत्यम् सुयमम् आ कृणुष्व,
शत्रूयताम् अभि तिष्ठा महांसि।। 12।।

मन्त्रार्थ- अग्ने हे अग्नि, शर्द्ध उत्साह करो, विजयी हो। तव तुम्हारे महते बड़े सौभगाय सौभाग्य के लिए, उत्तमानि श्रेष्ठ द्युम्नानि प्रकाश सन्तु हों। सम् सम्यक् जास्पत्यम् उत्पन्न (सृष्टि) का पालन-रक्षण को सुयमम् सुन्दर नियमयुक्त आ कृणुष्व अच्छे प्रकार कीजिये, शत्रूयताम् शत्रुता को महांसि तेजों को अभि तिष्ठा सभी ओर से रोको।। 12।।

भावार्थ - शृध क्रियापद है, इसका अर्थ हुआ शृध करो। शृध धातु का अर्थ आद्र होना, मुस्कराना, सहन करना, उत्साह होना, जीतना है। शर्द्ध का भावार्थ इसी अर्थ में बल भी किया गया है। अतः **अग्ने शर्ध** का अर्थ होगा उत्साह करो, विजयी हो। उत्साह, विजय प्रदान करो, यह भावार्थ भी उचित है।

जास्पत्यम् का अर्थ उत्पन्न हुए अथवा उत्पन्न करने वाले के योग्य है। इसको जायापति का वैदिक रूप मानकर इसका भावार्थ दम्पति भाव भी लिया गया है। शत्रुता की भावना को ही रोका जाना चाहिए, शत्रु-भावना रखने वालों को भी रोका जाना चाहिए। भग शब्द को भज् धातु से निष्पन्न माना जाता है। भज का अर्थ सेवा करना, दान करना आदि हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना) **शर्द्ध** (शृध् - सहन करना, जीतना)। **तव** (सर्वनाम) **महते** (मह् - पूजा करना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना) **सौभगाय** (सु-भग, सु - सुन्दर, अच्छा, भज्-भग् - सेवा करना, सेवन करना, दान करना, अलग करना), **उत्तमानि** (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना) **द्युम्नानि** (द्यु - अभिगमन करना, द्युत् - प्रकाश करना), **सन्तु** (अस् - होना)। **सम्** (उपसर्ग), **जास्पत्यम्** (जन् - उत्पन्न करना, पत् - ऐश्वर्य होना, पा - पालन करना) **सुयमम्** (सु - सुन्दर, यम् - आवरण करना, पोषण करना, खिलाना, अधीन रखना, नियमन करना) **आ** (उपसर्ग)। **कृणुष्व** (कृ - करना), **शत्रूयताम्** (शी-शद्-शत् - जीर्ण होना, गिरना, गिराना) **महांसि** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना) **अभि** (उपसर्ग) **तिष्ठा** (तिष्ठ - ठहरना, बैठना, रोकना)।। 12।।

73. त्वाम् हि मन्द्रतमम् अर्कशोकैः,
ववृमहे महि नः श्रोषि अग्ने।
इन्द्रम् न त्वा शवसा देवता,
वायुम् पृणन्ति राधसा नृतमाः।। 13।।

मन्त्रार्थ- अग्ने हे अग्नि, त्वाम् तुम को हि ही मन्द्रतमम् सर्वाधिक स्तुत्य, अर्कशोकैः प्रकाश, स्तुति, पवित्रत्रता द्वारा, ववृमहे वरण करते हैं। नः हमारे महि महत् को श्रोषि सुनते हो। नृतमाः नरों में उत्तम, श्रेष्ठजन त्वा तुमको इन्द्रम् इन्द्र के न समान देवता दिव्यता का गुण, शवसा शवस् द्वारा (गति, ज्ञान द्वारा) वायुम् वायु को, राधसा शुद्ध, निर्दोष निर्णय, वृद्धि द्वारा पृणन्ति पालन, पूर्ण

करते हैं॥ 13॥

भावार्थ - मन्द् धातु का अर्थ स्तुति, आनन्द, प्रकाश, गति करना आदि होते हैं। अतः मन्द्रतम का अर्थ सर्वाधिक स्तुति योग्य आदि है। अग्नि अर्थात् परमात्मा ही सर्वाधिक स्तुति योग्य है। अर्क धातु का अर्थ स्तुति करना, प्रकाश करना है। शुक धातु का अर्थ जाना, गति करना है तथा शुच धातु का अर्थ पवित्र करना है। अतः अर्कशोकैः पद का अर्थ हुआ अर्क अर्थात् स्तुति, प्रकाश के समान गति, पवित्रता द्वारा। रध धातु का अर्थ शुद्ध होना, निदोष होना तथा राध धातु का अर्थ बढ़ना, निर्णय करना, सिद्ध होना है। अतः राधसा पद का अर्थ हुआ शुद्ध, निर्दोष निर्णय, वृद्धि द्वारा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना), **त्वाम्** (सर्वनाम) **हि** (अव्यय) **मन्द्रतमम्** (मन्द् - स्तुति करना), **अर्कशोकैः** (अर्क - स्तुति करना, प्रकाश करना, शुच् - पवित्र करना) **ववृमहे** (वृ - वरण करना)। **नः** (सर्वनाम) **महि** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना) **श्रोषि** (श्रु - सुनना)। **नृतमाः** (नृ - ले जाना), **त्वा** (सर्वनाम) **इन्द्रम्** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना), **न** (अव्यय), **देवता** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना), **शवसा** (शव् - जाना, जानना, पाना), **वायुम्** (वा - गति करना, बहना), **राधसा** (रध - शुद्ध होना, निदोष होना, राध - बढ़ना, निर्णय करना, सिद्ध होना) **पृणन्ति** (पृ - पूर्ण करना, पालन करना)॥ **13**॥

(20) सूक्त 4

74. त्वे अग्ने स्वाहुत,
प्रियासः सन्तु सूरयः।
यन्तारो ये मघवानो जनानाम्,
ऊर्वान् दयन्त गोनाम्॥ 14॥

मन्त्रार्थ - त्वे तुम्हारे अग्ने हे अग्नि, स्वाहुत अच्छे प्रकार से आह्वान किये गये, प्रियासः प्रिय सन्तु हों सूरयः उत्पन्न करने, गति करने वाले, ऐश्वर्यवान्

लोग। ये जो मघवानो ऐश्वर्यवान् जनानाम् जनों के गोनाम् गो के यन्तारो नियमन-नियन्त्रण करने वाले ऊर्वान् ऊर्वों को दयन्त देते हैं॥ 14॥

भावार्थ - जो मघवान् अर्थात् ऐश्वर्यवान् हैं, वे ही लोगों का नियमन-नियन्त्रण करते हैं। उर धातुका अर्थ जाना, उर्व धातु का अर्थ हिंसा करना, सहना होता है। उन ऊर्वो अर्थात् गतिशील, ज्ञानी, सहनशील को देते हैं। नियन्ता लोगों का कर्तव्य है कि जो लोग विद्वान् हैं, कर्मशील हैं, जिन्हें अनेक कारणों बहुत कुछ अनुचित भी सहना पड़ता है, उनको सहयोग देते रहें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्वे (सर्वनाम) **अग्ने** (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना), **स्वाहुत** (सु - अच्छा, सुन्दर, आ - समन्तात्, भलीभाँति, हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना), **प्रियासः** (प्री - प्रीति करना, तृप्त करना, प्रसन्न करना), **सन्तु** (अस् - होना), **सूरयः** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना)। **ये** (सर्वनाम) **मघवानो** (मघ् - ऐश्वर्य होनाा) **जनानाम्** (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना) **गोनाम्** (गु - शब्द करना, बोलना, मनन करना) **यन्तारो** (यम - आवरण करना, पोषण करना, नियमन करना) **ऊर्वान्** (ऊ - शब्द करना, ध्वनि करना, विश्वास करना) **दयन्त** (दय - दान करना, पालन करना)॥ **14**॥

75. श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिः,
देवैः अग्ने सयावभिः।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो,
अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम्॥ 15॥

मन्त्रार्थ- श्रुत्कर्ण सुनने वाले कर्ण, अग्ने अग्नि, वह्निभिः वहन करने वाले, सयावभिः साथ चलने वाले देवैः विद्वानों के साथ श्रुधि सुनिये। बर्हिषि आच्छादन (आच्छादित स्थान, गृह अथवा सभामण्डप) में मित्रो मित्र, अर्यमा अर्यमा प्रातर्यावाणो प्रातःकाल प्राप्त करने वाले अध्वरम् अहिंसक आ सीदन्तु अच्छे प्रकार बैठें॥ 15॥

भावार्थ - सयावभिः पद का अर्थ सहगामी तथा सन्धि-विग्रह करने वाले

हो सकता है। इसमें या धातु मानकर इसका अर्थ साथ चलने वाले किया गया है। यु धातु मानने पर इसका अर्थ मिलाना तथा अलग करना भी हो सकता है। बृह धातु का अर्थ बढ़ना, शब्द करना, बृ धातु का अर्थ आवरण करना, ढकना, वरण करना होता है। बर्हिषि पद का अर्थ सामान्यतः आच्छादन लेकर उसका भावार्थ गृह या सभामण्डप किया गया है। इस अर्थों को समाहित करते हुए बर्हिषि पद का अर्थ वृद्धि की चर्चा करने वाला सभागृह मानना उचित है। अर्यमा पद का अर्थ ऋ धातु के अनुसार अर्थ गति, ज्ञान, प्राप्ति करने वाले होगा। प्रातर्यावाणः का अर्थ भी या धातु मानकर प्रातः ज्ञान, गति, प्राप्ति करने वाले तथा यु धातु मानकर सन्धि-विग्रह करने वाले हो सकता है। अध्वरम् अर्थात् अहिंसक भावना को ध्यान में रखते हुए सभी तर्कसंगत अर्थ ग्राह्य हैं।

विशेष - श्रुत्कर्ण सुनने वाले कर्ण अथवा सुने हुए को कर्णगत करने वाले। श्रु धातु का अर्थ सुनना है तथा कर्ण धातु का अर्थ सुनना, दूर ले जाना, बेधना, छेदना, परित्याग करना है। इस प्रकार जो लोग श्रुत् या श्रुति को कर्ण करते हैं, अर्थात् सुनते हैं, उसे बेधते हैं, अर्थात् उसे गहनता से समझते हैं, चिन्तन - मनन कर आत्मसात् करते हैं तथा उस ज्ञान को दूर तक ले जाते हैं, साथ ही उसे समाज के लिए त्याग भावना से सबको वितरित करते हैं, वे विद्वान् श्रुत्कर्ण हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - श्रुत्कर्ण (श्रु - सुनना, कर्ण - सुनना, दूर ले जाना, बेधना, छेदना) अग्ने (**अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना**), वह्निभिः (वह् - वहन करना, ले जाना), सयावभिः (स - सहित, साथ, या - जाना) देवैः (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), श्रुधि (श्रु - सुनना)। बर्हिषि(**बर्ह् - श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना, बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना**) मित्रो (**मिद् - स्निग्ध होना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना**), अर्यमा (**ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना**) प्रातः (अव्यय)। यावाणो (या - जाना, जानना, पाना) अध्वरम् (अ - नहीं, ध्वृ

- हिंसा करना) आ सीदन्तु (सीद् - बैठना)॥ 15॥

76. विश्वेषाम् अदितिः यज्ञियानाम्,
विश्वेषाम् अतिथिः मानुषाणाम्।
अग्निः देवानाम् अव आवृणानः,
सुमृडीको भवतु जातवेदाः॥ 16॥

मन्त्रार्थ - विश्वेषाम् सभी यज्ञियानाम् यज्ञियों (पूज्यों) में अदितिः अविनाशी, विश्वेषाम् सभी मानुषाणाम् मनुष्यों के अतिथिः अतिथि, देवानाम् देवों का आवृणानः वरण करने वाले अग्निः अग्नि अव रक्षा करे, जातवेद वेद को जानने वाले, विद्वान् सुमृडीक सुखी भवतु बने।

भावार्थ - दी धातु का अर्थ है क्षय होना। अतः दिति का अर्थ हुआ क्षय तथा अदिति का अर्थ हुआ अक्षय, अविनाशी। अदिति का मुख्य अर्थ परमात्मा है। परमात्मा के सभी दिव्य गुण, दिव्य शक्तियाँ भी अदिति अर्थात् अक्षय, अविनाशी हैं। यज धातु से यज्ञ शब्द तथा उससे यज्ञिय तथा यज्ञियानाम् पद बने हैं। इसका अर्थ पूजा सत्कार, संगतिकरण, दान के योग्य है। अत् धातु का अर्थ है सतत गति करना, अतः अतिथिः का अर्थ है सतत गतिशील। निरन्तर विचरण करने वाले विद्वान् संन्यासी मनुष्यों के अतिथि होते हैं॥ 16॥

विशेष - जातवेद शब्द का अर्थ जन्म से जानने वाले, वेद को उत्पन्न करने वाले अथवा जानने वाले, विद्वान् माना जाता है। जात शब्द को जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना धातु से निष्पन्न मानने पर इसका अर्थ जन्मतः अथवा जन्म देने वाला या उत्पन्न करने वाला होता है। जात शब्द को जा-ज्ञा - जानना अर्थ वाली धातु से उत्पन्न माने पर इसका अर्थ जानकार या विद्वान् होगा। वेद शब्द को विद् - जानना अर्थ वाली धातु से निष्पन्न माना जाता है। स्पष्टतः इसका अर्थ ज्ञान होता है। विशेष ज्ञान के रूप में वेद ग्रन्थ को भी माना जा सकता है। इस प्रकार जातवेद का अर्थ वेद को जानने वाले अथवा उत्पन्न करने वाले होगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विश्वेषाम् (विश्व - सब, सभी) यज्ञियानाम्

(यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) अदितिः (अ - नहीं, दी - क्षय होना), मानुषाणाम् (मन् - मनन् करना, समझना, जानना) अतिथिः (अत् - सतत गमन करना), देवानाम् (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना), आवृणानः (आ - पूर्णता से, भलीभाँति, वृ - वरण करना) अग्निः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना), अव (अव - रक्षा करना), जातवेद (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना) सुमृडीक (सु - अच्छा, सुन्दर, मृड् - सुख होना) भवतु (भू - होना)।। 16।।

77. महो अग्नेः समिधानस्य शर्मणि,
अनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि,
तत् देवानाम् अवो अद्या वृणीमहे।। 17।।

मन्त्रार्थ- महो पूज्य, बड़े समिधानस्य प्रकाशमान अग्नेः अग्नि के शर्मणि आश्रय में, अनागा अपराध रहित मित्रे मित्र वरुणे वरुण के स्वस्तये सुख के लिये। श्रेष्ठे श्रेष्ठ स्याम हों सवितुः सब जगत् के उत्पादक सवीमनि उत्पन्न, ऐश्वर्य में, तत् उस देवानाम् विद्वानों के अवो रक्षा को अद्या आज वृणीमहे स्वीकार करते हैं।। 17।।

भावार्थ - नग धातु का अर्थ स्थिर होना, जड़ होना, पाप करना आदि हैं। अतः नाग का अर्थ पापी तथा अनाग का अर्थ निष्पाप, निरपराध होगा। अग धातु का अर्थ कुटिल गति करना तथा लेना गृहण करना भी होता है। इस प्रकार अनाग शब्द का अर्थ निष्पाप, निरपराध किया जाता रहा है। जो कुटिल है, जो दूसरों से ले लेता है, वह आग तथा जो ऐसा नहीं है अर्थात् अकुटिल है, दूसरों से अनुचित रूप से कुछ नहीं लेता है, वह अनाग अर्थात् अपराध रहित। शृ धातु का अर्थ शरण भी होता है, इसी से शरीर, शरण, आश्रय आदि बनते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - महो (मह् - पूज्य होना) समिधानस्य (सम् - सम्यक्, इन्ध् - प्रकाशित होना) अग्नेः (अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना) शर्मणि (शर्म - सुख होना), अनागा

अपराध रहित, निष्पाप, निर्दोष (अन्- नही, आग- दोष होना, अनुचित आचरण करना)। मित्रे (मिद् - स्निग्ध होना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना), वरुणे (वृ - वरण करना) स्वस्तये (सु - अच्छा, अस् - होना)। श्रेष्ठे (श्री - सेवा करना, समृद्धि होना, शोभा होना) स्याम (अस् - होना) सवितुः (सु - उत्पन्न करना) सवीमनि (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना), तत् (सर्वनाम) देवानाम् (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना), अवो (अव - रक्षा करना), अद्या (अव्यय) वृणीमहे (वृ - वरण करना)।। 17।।

78. आपः चित् पिप्यु स्तर्यो न गावो,
नक्षन् ऋतम् जरितारः ते इन्द्र।
याहि वायुः न नियुतो नो अच्छा,
त्वम् हि धीभिः दयसे वि वाजान्।। 18।।

मन्त्रार्थ- इन्द्र हे इन्द्र (परम ऐश्वर्ययुक्त, परमात्मन्) ते तुम्हारे जरितारः जीर्ण, वृद्ध, गावो शब्दों के न समान स्तर्यो विस्तार योग्य ऋतम् ऋत को नक्षन् प्राप्त करते हुए आपः व्यापकता का चित् ही पिप्यु पान करते हैं। नो हम लोगों को वायुः पवन के न समान नियुतो नियुक्त अच्छा अच्छे प्रकार याहि प्राप्त कीजिये। त्वम् तुम हि ही धीभिः बुद्धियों से वि विशेष वाजान् विज्ञान दयसे देते हो।। 18।।

भावार्थ - परमात्मा की स्तुति करने वाले उपासक व्यापकता का ही पान करते हैं, संकीर्ण स्वार्थ से परे होते हैं। हमारे लिए जो कुछ भी अच्छा है, परमात्मा उसे वायु की भाँति नियुक्त करता है। जिस प्रकार वायु सर्वत्र सुलभ है, परमात्मा की कृपा से हमारे लिए जो कुछ आवश्यक तथा अच्छा है, सर्वत्र सुलभ होता है। हमको सबकुछ बुद्धि-विवेक से ही प्राप्त हो सकता है, यही परमात्मा की ऋत अर्थात् सर्वव्यापी सार्वभौम सृष्टि संचालन की व्यवस्था है।

विशेष - आप् धातु के अर्थ व्याप्त होना, अवलम्ब-आलम्ब होना हैं। पी धातु के अर्थ पीना, प्राशन करना, सूखना हैं। स्तृ धातु के अर्थ पूर्ण करना, आच्छादित करना, फैलाना हैं। गु धातु का अर्थ शब्द करना, मनन करना है। जृ धातु का अर्थ जीर्ण होना, वृद्ध होना, पुराना होना है। इसके साथ ही वेद में

स्तुति के अर्थ में भी जृ धातु का प्रयोग होता है, अतः जरितारः पद का अर्थ स्तुति करने वाले भी किया गया है। वज धातु का अर्थ गति करना, सिद्ध करना, तैयार करना हैं। गति अर्थ वाली धातुओं में ज्ञान, गमन, प्राप्ति के अर्थ स्वाभाविक रूप से माने जाते हैं, अतः वाजान् का अर्थ विद्वानों ने विज्ञान भी किया है। वाज का अर्थ अन्न भी किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्र (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) ते (सर्वनाम) जरितारः (जृ - वृद्ध होना, जीर्ण होना)। गावो (गु - शब्द करना) न (अव्यय) स्तर्यो (स्तृ - आच्छादन करना, फैलाना, पूर्ण करना) ऋतम् **(ऋ - जाना, जानना, पाना, ऋत - चलना, सञ्चालित करना)** नक्षन् **(नक्ष - जाना, आना, पहुंचना, जानना, पाना)** आपः - **आप, (आप् - व्याप्त होना, जाना, पाना, अवलम्ब होना),** चित् (अव्यय) पिप्यु (पी - पीना, पान करना)। नो (सर्वनाम) वायुः (वा - गति करना, बहना) नियुतो (नि - निश्चित रूप से, निरन्तर, यु - मिलाना, अलग करना) अच्छा (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना) याहि (या - जाना, जानना, पाना)। त्वम् (सर्वनाम) हि (अव्यय) धीभिः (धी - धारण करना, बुद्धि होना)। वि (सर्वनाम) वाजान् (वज् - जाना, जानना, पाना, सिद्ध करना, तैयार करना) दयसे (दय् - देना)॥ 18॥

(21) सूक्त 5

79. गाव उप अवत अवतम्,
मही यज्ञस्य रप्सुदा।
उभा कर्णा हिरण्यया॥ 19॥

मन्त्रार्थ- मही महान् (पूज्य) यज्ञस्य यज्ञ की रप्सुदा स्पष्ट वाणी देने वाले अवतम् रक्षित गाव शब्दों या वचनों की उप समीप हिरण्यया हिरण्यमय उभा दोनों कर्णा कानों से अवत रक्षा करो ॥ 19॥

भावार्थ - यजन की स्पष्ट वाणी देने वाले, रक्षा की गयी वाणी की हिरण्यमय दोनो कानों से निकट रक्षा करो। स्पष्ट वाणी बोलने की क्षमता मनुष्य को परमात्मा का विशेष उपहार है। परमात्मा से प्रार्थना है कि हमारे निकट, हमारे दोनो कानों से उसकी रक्षा करे। स्पष्ट वाणी की रक्षा कानों से ही हो

सकती है, हम सुनकर ही स्पष्ट बोलना सीख सकते हैं, स्पष्ट उच्चारण की रक्षा कर सकते हैं। इसके लिए कानों को हिरण्यमय होना चाहिए। हिरण धातु का अर्थ है दीप्त होना, शब्द करना। हिरण्य का अर्थ हुआ दीप्त शब्द। कानों को ऐसा होना चाहिए कि वे दीप्त वचन सुनें, अनुचित निन्दनीय वाणी न सुनें।

विशेष - रप धातु का अर्थ है स्पष्ट बोलना। रप्सुदा का अर्थ हुआ स्पष्टवाणी देने वाले। अव धातु अथवा अवति, अवते, आवयति क्रिया-रूपों के अर्थ बहुत व्यापक हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मही (मह् - पूज्य होना) यज्ञस्य (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) रप्सुदा (रप - स्पष्ट बोलना) अवतम् (अव - रक्षा करना) गाव (गु - शब्द करना) उप (उपसर्ग), हिरण्यया (हिरण्य - प्रकाश, शब्द होना) उभा (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना) कर्णा (श्रु - सुनना, कर्ण - सुनना, दूर ले जाना, बेधना, छेदना) अवत (अव - रक्षा करना)॥ 19॥

80. यत् अद्य सूर उदिते,
अनागा मित्रो अर्यमा।
सुवाति सविता भगः॥ 20॥

मन्त्रार्थ - यत् जो **अनागा** निष्पाप **मित्रो** मित्र **अर्यमा** ज्ञानी **सविता** उत्पन्न करने वाला **भगः** सेवित, सेवनीय (है), **अद्य** आज **सूर** सूर्य के **उदिते** उदय होने पर **सुवाति** सुन्दर प्रवाह करता है, ऐश्वर्य प्रवाहित करता है॥ 20॥

भावार्थ - परमात्मा के गुणों का स्मरण तथा स्तुति करते हुए कहा गया है कि वह सूर्योदय के साथ ही ऐश्वर्य का प्रवाह करता है। हम उपासना से पात्रता विकसित कर उसे प्राप्त कर सकते हैं।

विशेष - अनागा का अर्थ पाप रहित, अपराध रहित माना जाता है। (नग - स्थिर होना, जड़ होना, पाप करना)। अर्यमा पद का अर्थ ऋ धातु के अनुसार गति, ज्ञान, प्राप्ति करने वाले होगा। भग शब्द को भज् धातु से निष्पन्न माना जाता है। भज का अर्थ सेवा करना, दान करना आदि हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यत् (सर्वनाम)। **अनागा** (अन्- नही, आग-

दोष होना, अनुचित आचरण करना)। **मित्रो** (मिद् - स्निग्ध होना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना)। **अर्यमा** (ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)। **सविता** (सु - उत्पन्न करना)। **भगः** (भग् -भज् - सेवा करना, सेवन करना, दान करना, अलग करना)। **अद्य** (अव्यय)। **सूर** (सू - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **उदिते** (सु - सुन्दर, सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, वा - बहना, प्रवाहित होना, प्रवाहित करना)॥ 20॥

81. आ सुते सिञ्चत श्रियम्, रोदस्योः अभिश्रियम्। रसा दधीत वृषभम्। तम् प्रत्नथा अयम् वेनः॥ 21।

मन्त्रार्थ- आ सुते आसुत में (उत्पन्न हुए, ऐश्वर्य में) **श्रियम्** श्री **रोदस्योः** रोदसी के **अभिश्रियम्** अभिश्री का **सिञ्चत** सिञ्चन करो। **अयम्** यह **रसा** रसयुक्त **वेनः** विद्वान्, कान्तिमान् **प्रत्नथा** प्रकृष्टता से, पूर्व की भांति, **तम्** उस **वृषभम्** वृषभ को (पराक्रमी, वर्षा करने वाले को) **दधीत** धारण करे॥ 21॥

भावार्थ - श्री धातु का मुख्य अर्थ सेवा करना है। सेवा भावना वैदिक संस्कृति में अति महत्वपूर्ण है, सेवा से ही किसी व्यक्ति की शोभा होती है। अतः श्री का अर्थ शोभा, सम्पदा, सम्मान भी माना जाता है। हम सभी श्री चाहते हैं, यहाँ कहा गया है कि सर्वत्र श्री का सिंचन करो, तभी तो सभी को श्री की उपलब्धि हो सकेगी।

विशेष - रु धातु का अर्थ शब्द करना, गति करना, तथा रुद् धातु का अर्थ रोना होता है। वृष धातु का अर्थ बरसना, सींचना, पराक्रम करना है। विन धातु का अर्थ कान्ति होना, तथा वेन धातु का अर्थ ज्ञान होना, रक्षा करना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ सुते (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना)। **श्रियम्** (श्री - सेवा करना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना)। **रोदस्योः** (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना)। **अभिश्रियम्** (अभि - सब ओर, श्री - सेवा करना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना)। **सिञ्चत** (सिञ्च् - सिञ्चन करना)। **अयम्** (सर्वनाम)। **रसा** (रस् - स्वाद लेना, शब्द करना, स्नेह होना)। **वेनः** (वेन - मिलाना, अलग करना, रक्षा करना, जाना, समझना, जानना, स्मरण करना,

याद करना, सारासार विचार करना, तारतम्य देखना, वाद्य यन्त्र बजाना, बाजा हाथ में लेना)। **प्रत्नथा** (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। **तम्** (सर्वनाम)। **वृषभम्** (वृष् - बरसना, सींचना, पराक्रमी होना)। **दधीत** (दध्-धा - धारण करना)॥ 21॥

82. आतिष्ठन्तम् परि विश्वे अभूषन्,
श्रियो वसानः चरति स्वरोचिः।
महत् तत् वृष्णो असुरस्य नाम,
आ विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ॥ 22॥

मन्त्रार्थ- परि सब ओर से आतिष्ठन्तम् सुप्रतिष्ठित विश्वे विश्व में अभूषन् भूषित किया। स्वरोचिः स्वयम् प्रकाशित श्रियो श्री (शोभाओं) को वसानः धारण करता हुआ चरति विचरता है। महत् महान् तत् वह वृष्णो वर्षा करने वाला असुरस्य असुर का नाम नाम, आ विश्वरूपो सब रूपो में अमृतानि अमृत को तस्थौ स्थित किया है॥ 22॥

भावार्थ - सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठित, परिव्याप्त परमात्मा ने ही सम्पूर्ण विश्व को भूषित, अलंकृत किया है। वह महान् स्वप्रकाशित होता हुआ श्री को वसाता हुआ संचार करता है। उस महान् पराक्रमी वर्षा करने वाले असुर (परमात्मा) का नाम ही अमृत को स्थापित करता है। वेद में असुर शब्द परमात्मा का ही वाचक है, देव शब्द के समान एक विशेषण है।

विशेष - अस् (अस्ति) धातु का अर्थ होना, अस्तित्व होना, विद्यमान होना है। इसी प्रकार अस् (अस्यति) धातु का अर्थ फेकना, उड़ाना, विखेरना है। अस् (असति, असते) धातु का अर्थ प्रकाश करना, गति करना, लेना होता है। इस प्रकार असुर शब्द का अर्थ सृष्टि का मूल अस्तित्व, मूलभूत सत्ता, दिव्य प्रकाश, गति, तथा स्वयम् का विस्तार कर सृष्टि सृजन करने वाला हो सकता है। इन अर्थों में ही असुर शब्द परमात्मा का विशेषण माना गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - परि (उपसर्ग) आतिष्ठन्तम् (आ - भलीभाँति, तिष्ठ - ठहरना, स्थित होना) विश्वे (सर्वनाम) अभूषन् (अ - भूतकालिक

उपसर्ग, अ - नहीं, भूष् - भूषित करना, भूषित होना, शोभित होना, शोभित करना)। स्वरोचिः (स्व - स्वयम्, अपना, रुच् - प्रकाश होना) श्रियो (श्री - सेवा करना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना) वसानः (वस् - वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना) चरति (चर् - चलना, विचरण करना)। महत् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना) तत् (सर्वनाम) वृष्णो (वृष् - बरसना, वर्षा करना, वर्षा होना) असुरस्य (**अस् - होना, रहना, फेकना, बिखेरना, उड़ाना, प्रकाश करना, चमकाना, जाना, जानना, पाना**) नाम (अव्यय), आ समन्तात्, (उपसर्ग), विश्व-रूपो, (विश्व -सब, रूप - रूप बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना), अमृतानि (अ - नहीं, मृ - मरना) तस्थौ (स्था - स्थित होना, स्थित करना)।। 22।।

83. प्र वो महे मन्दमानाय अन्धसो,
अर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे।
इन्द्रस्य यस्य सुमखम् सहो महि,
श्रवो नृम्णम् च रोदसी सपर्यतः।। 23।।

मन्त्रार्थ - वो तुम्हारे मन्दमानाय आनन्दस्वरूप के लिए अन्धसो अन्धकार का प्र महे पूजते हैं। विश्वानराय सभी नरों के लिए, विश्वाभुवे सब भुवों के लिए अर्चा पूजते हैं। यस्य जिस इन्द्रस्य इन्द्र के सुमखम् सुन्दर मख (गति,ज्ञान), सहो सहनशीलता, सहनशक्ति, तृप्ति, सामर्थ्य को महि पूजते हैं। श्रवो श्रुति नृम्णम् नर, ले जाने वाले च और रोदसी प्रकाश देने वाले, वाणी, गति की सामर्थ्य से युक्त युगल सपर्यतः पूजते हैं।। 23।।

भावार्थ - परमात्मा के विभिन्न गुणों, स्वरूपों का वर्णन करते हुए पूजन-सम्मान की भावना व्यक्त की गयी है।

विशेष - रु धातु का अर्थ शब्द करना, गति करना, तथा रुद् धातु का अर्थ रोना होता है। रोदसी शब्द द्विवचन है, अतः इसको युगल शब्द से व्यक्त किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वो (सर्वनाम), मन्दमानाय (मन्द् - आनन्द करना, स्तुति करना, तुष्ट करना, प्रकाशित होना) अन्धसो (अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना)) प्र (उपसर्ग) महे (मह् - पूजा करना, पूज्य होना)। विश्वानराय (विश्ब - सब, नृ - ले जाना), विश्वाभुवे (विश्व - सब, भू - होना) अर्चा (अर्च् - अर्चन करना, पूजन करना)। यस्य (सर्वनाम) इन्द्रस्य (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) सुमखम् (सु - उत्तम, सुष्ठु, अच्छा, सुन्दर (उपसर्ग), मख् - गति करना, जाना, जानना, पाना), सहो (सह् - सहना, सहन करना, सहन करने में समर्थ होना, तृप्त होना, प्रसन्न होना), महि पूजते हैं। श्रवो (श्रु - सुनना) नृम्णम् (नृ - ले जाना) च (अव्यय) रोदसी (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना) सपर्यतः (सपर् - पूजा करना)।। 23।।

(22) सूक्त 6

84. बृहन् इत् इध्म एषाम्,
भूरि शस्तम् पृथुः स्वरुः।
येषाम् इन्द्रो युवा सखा।। 24।।

मन्त्रार्थ - येषाम् जिनका **इन्द्रो** ऐश्वर्यवान् (परमात्मा) **युवा** युवा **सखा** मित्र (है), **एषाम्** इनका **बृहन्** महान् **इत्** ही **इध्म** प्रकाश, **भूरि** बहुत **शस्तम्** शस्त्र, **पृथुः** विस्तृत **स्वरुः** वाणी (है)।। 24।।

भावार्थ - इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा चिर युवा है। वह जिनका सखा है, मित्र है, उनको कोई अभाव हो नहीं सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - येषाम् (सर्वनाम)। **इन्द्रो** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **युवा** (यु - संयोग-वियोग करना, मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना)। **सखा** (सख - मित्र होना)। **एषाम्** (सर्वनाम)। **बृहन्** (बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)। **इत्** (अव्यय)। **इध्म** (इ - जाना, जानना, पाना, इन्ध् - प्रदीप्त होना, प्रकाशित होना)। **भूरि** (अव्यय)। **शस्तम्** (शस् - काटना, हिंसा करना)। **पृथुः** (पृथ् - विस्तार होना)। **स्वरुः** (स्वर - शब्द करना)।। 24।।

85. इन्द्र आ इहि मत्सि अन्धसो,
विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
महान् अभिष्टिः ओजसा॥ 25॥

मन्त्रार्थ- इन्द्र ऐश्वर्यवान् (परमात्मन्) आ इहि आइये। अन्धसा **- अन्धस्, अन्न, प्राण-धारण द्वारा** विश्वेभिः सब, सोम-पर्वभिः सोमपर्वों से महान् बड़े अभिष्टिः अभीष्ट ओजसा पराक्रम से मत्सि तृप्त होते हो॥ 25॥

भावार्थ - परमात्मा को उत्तम गुणों से ही तृप्त किया जा सकता है। महान् अभीष्ट ओज तथा सौम्य गुण महत्वपूर्ण हैं।

विशेष - अन्धसो अथवा अन्धसः शब्द का सामान्य अर्थ तो अन्धकार ही प्रतीत होता है, परन्तु यहाँ पर विद्वानों से सामान्यतः इसका अर्थ अन्न किया है। अन् धातु का अर्थ प्राण होना, चेतन होना होता है, अतः प्राण रक्षा का मुख्य साधन मानते हुए प्राण धारण करने में मुख्य साधन अन्न को अन्ध शब्द से व्यक्त किया गया माना गया है। अनम् प्राणम् धारयति इति अन्धः, ऐसा निर्वचन कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्र (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) अ–इहि (आ-इ - आना, इ - जाना)। **अन्धसा** (अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना), विश्वेभिः (सर्वनाम) सोमपर्वभिः **(सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, पर्व् - पूर्ण करना, विभाग करना)** महान् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना) अभिष्टिः (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा, इष् = इच्छा करना, चाहना) ओजसा (**ओज - शक्तिमान होना, बढ़ना, जीना**) मत्सि (मद् - तृप्त होना)॥ 25॥

86. इन्द्रो वृत्रम् अवृणोत् शर्द्धनीतिः,
प्र मायिनाम् अमिनात् वर्पणीतिः।
अहन् वि अंसम् उशधक् वनेषु,
आविः धेना अकृणोत् राम्याणाम्॥ 26॥

मन्त्रार्थ- शर्द्धनीतिः शर्द्धनीतिवाले इन्द्रो ऐश्वर्यवान् (परमात्मा) ने वृत्रम्

वृत्र को अवृणोत् वरण किया। वर्पणीतिः विविध रूपधारी (परमात्मा) ने प्र मायिनाम् प्रकृष्ट माया वालों का अमिनात् हनन किया। वि अंसम् विभाजन को अहन् हनन किया। उशधक् कामना धारण करने वाली धेना धारणा (बुद्धि) से राम्याणाम् रमणीयों का वनेषु वनों में, आविः अकृणोत् आविष्कार किया॥ 26॥

भावार्थ - वृत्र क्या हैं। वृ धातु के अर्थ वरण करना, सेवा करना, नियोजित करना, आच्छादित करना आदि हैं। वृत्रों अर्थात् ऐसे गुणों तथा ऐसे गुण वाले लोगों का वरण किया जाता है। अन्य मन्त्रों में कुछ ऐसे वृत्रों को उल्लेख भी है जिनका हनन करना पड़ता है। वे वृत्र कैसे हैं जिनको मारना पड़ा। वृत् धातु का एक अर्थ हिंसा करना भी है। जो इस प्रकार के वृत्र हिंसक स्वभाव अथवा हिंसक जन हैं, उनका हनन करना आवश्यक हो जाता है। माया क्या है, मायी अथवा मायावी कौन हैं। मय धातु का अर्थ गति के साथ ही क्लिष्ट कार्य करना भी होता है। इसी अर्थ में माया तथा मायाकार शब्द संस्कृत साहित्य में प्रयोग होते हैं। ऐसे कार्य जो सामान्य जन नहीं कर सकते हैं, परन्तु विशेष अभ्यास से कुछ लोग ऐसे कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। माया तथा मायाकार शब्द इसी अर्थ में संस्कृत में जादू तथा जादूगर के अर्थ में भी प्रयोग होते हैं।

विशेष - मी - हिंसा करना, मारना, हनन करना। वर्प (वर्पति, वर्पते)- रूप बनाना, विभिन्न रूप धारण करना।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - शर्द्धनीतिः (शृध् - सहन करना, जीतना, शक्ति होना, सामर्थ्य होना) **इन्द्रो** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) **वृत्रम्** (वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना) **अवृणोत्** (वृ - वरण करना)। **वर्पणीतिः** (वर्प - विविध रूप धारण करना, नी - ले जाना) **प्र प्रकृष्ट** (उपसर्ग) **मायिनाम्** (मय - जाना, कठिन कार्य करना) **अमिनात्** (मि - फेकना, स्थापना करना, रक्षा करना, मी - हिंसा करना, मारना)। **वि** (उपसर्ग) **अंसम्** (अंस् - विभाग करना, बाँटना, साथ होना) **अहन्** (हन् - हनन करना, मारना)। **उशधक्** (उश्-वश् - चाहना, कामना करना, धा - धारण करना) **धेना** (धी - धारण करना, बुद्धि होना) **राम्याणाम्** (रम् - रमना, रमण

करना, रमणीय होना) **वनेषु** (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, अलग करना, मिलाना, स्मरण करना, बीज से उत्पन्न होना, बीज का उगना, उत्पन्न होना, प्रकट होना, याचना करना, मांगना, दुःख देना, उद्योग-धन्धा करना), **आविः-अकृणोत्** (कृ - करना, आविः-कृ - आविष्कार करना)।। 26।।

87. कुतः त्वम् इन्द्र माहिनः सन्,
एको यासि सत्पते किम् ते इत्था।
सम् पृच्छसे समराणः शुभानैः,
वोचेः तत् नो हरिवो यत् ते अस्मे।
महान् इन्द्रो य ओजसा,
कदा चन स्तरीरसि,
कदा चन प्रयुच्छसि।। 27।।

मन्त्रार्थ- सत्पते सत्य के पति (सत्य के पालक, रक्षक) माहिनः पूज्य, महान् इन्द्र परम ऐश्वर्यवान् कुतः कहाँ त्वम् तुम एको एक, सन् ही यासि प्राप्त होते हो, ते तुम्हारा इत्था इस प्रकार किम् क्या (है)। समराणः सम्यक् जाने वाले अथवा साथ चलने वाले शुभानैः शुभ (शुभ वाणी अथवा शुभ भावना) से सम् सम्यक् पृच्छसे पूछते हो, तत् वह नो हम को हरिवो हरिव ने यत् जो ते तुम्हारे लिये अस्मे हमसे वोचेः वोलो, कहो। यो जो इन्द्रो इन्द्र ओजसा ओज से महान् महान् (है)। कदा चन कभी स्तरीरसि आच्छादित होते हो। कदा चन कभी प्रयुच्छसि असावधान हो।। 27।।

भावार्थ - पूज्य, महान् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा सत्पति है, सत्य का पालक है, रक्षक है। वह एकाकी है, अर्थात् वह एक ही है। वह साथ चलने वालों का शुभ पूछता है। साथ चलने का एक भाव तो परमात्मा के साथ चलना तो है ही, समाज में भी सत्पति के सहगामी उपासकों अर्थात् सत्यपथ पर चलने वाले लोगों के साथ चलना भी है। कदाचन स्तरीरसि, कदाचन प्रयुच्छसि का शाब्दिक अर्थ हुआ कि कभी आच्छादित हो, कभी असावधान हो, भावार्थ यही

है कि कभी भी वह आच्छादित या असावधान नहीं हो सकता है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) - सत्पते (सत् - होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना), **माहिनः** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना) **इन्द्र** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) **कुतः** (अव्यय) **त्वम्** (सर्वनाम) **एको** (संख्या), **सन्** (अव्यय)। **यासि** (या - जाना, जानना, पाना), **ते** (सर्वनाम) **इत्था** (अव्यय) **किम्** (सर्वनाम)। **समराणः** (सम् - सम्यक्, ऋ-अर् - जाना, जानना, पाना, शब्द करना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, रण् - शब्द करना, चलना, युद्ध करना) **शुभानैः** (शुभ् - दीप्ति-प्रकाश होना, शोभा पाना, मङ्गल होना, बोलना) **सम्** (उपसर्ग) **पृच्छसे** (पृश्-पृच्छ् - पूछना, प्रश्न करना), **तत्** (सर्वनाम) **नो** (सर्वनाम) **हरिवो** (हृ - हरण करना, ले जाना, नाश करना, पाप काटना), **यत्** (सर्वनाम) **ते** (सर्वनाम) **अस्मे** (सर्वनाम) **वोचेः** (वच् - बोलना, कहना)। **यो** (सर्वनाम) **इन्द्रो** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) **ओजसा** (ओज - शक्तिमान होना, बढ़ना, जीना) **महान्** (मह् - पूजा करना, पूज्य होना)। **कदा चन** (सर्वनाम) **स्तरीरसि** (स्तृ - फैलाना, ठकना, पूर्ण करना)। **प्रयुच्छसि** (युच्छ - प्रमाद करना, असावधान होना)।। 27।।

(23) सूक्त 7

88. आ तत् ते इन्द्र आयवः पनन्ते,
अभि य ऊर्वम् गोमन्तम् तितृत्सान्।
सुकृत् स्वम् ये पुरुपुत्राम् महीम्,
सहस्रधाराम् बृहतीम् दुदुक्षन्।। 28।।

मन्त्रार्थ- इन्द्र हे इन्द्र (ऐश्वर्यवान्) आयवः आयु वाले (जीवनयुक्त, मनुष्य) ते तुम्हारी तत् वह आ पनन्ते स्तुति करते हैं, यः जो ऊर्वम्, ऊर्व (सहनशीलता, हिंसा) गोमन्तम् गोमन्त (गोयुक्त अर्थात् अस्पष्ट बोलने वाले तथा शब्द करने वाले) को अभि तितृत्सान् अनादृत किये हैं। ये स्वम् सुकृत् पुरुपुत्राम् सहस्रधाराम् बृहतीम् महीम्, दुदुक्षन्।। 28।।

भावार्थ - सभी आयुधारी प्राणी परमात्मा की स्तुति करते हैं। मनुष्य उनमें विशेष है। वह ऊर्व तथा गोमन्त को अनादृत करने वाला कहा गया है। परमात्मा की स्तुति करने वाले उनको अनादृत कर सकते हैं, अर्थात् उपासकों का स्थान उनसे उच्च होता है।

विशेष - उर्व धातु का अर्थ सहन करना तथा हिंसा करना है। गु धातु का अर्थ अस्पष्ट बोलना तथा शब्द करना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। **तत्** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **इन्द्र** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **आयवः** (यव - समाप्त करना, उपसंहार करना, यु - मिश्रित करना, मिलाप करना, पृथक् पृथक् करना, आय - शब्द करना, शासन करना)। पनन्त (पन - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **अभि** (उपसर्ग)। **य** (सर्वनाम)। **ऊर्वम्** (उर्व - मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। **गोमन्तम्** (गु - शब्द करना, मनन करना, अस्पष्ट बोलना, गोम - लीपना, पोतना)। **तितृत्सान्** (तृद् = मार डालना, दुःख देना, अवज्ञा करना, अनादर करना, देना, दान करना, खाना, भक्षण करना)। **सुकृत्स्वम्** (सु - उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **ये** (सर्वनाम)। **पुरुपुत्राम्** (पुर - अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, पु - रक्षा करना, श्वास लेना, पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **महीम्** (मही- पूजनीय होना)। **सहस्रधाराम्** (सहस्र = हजार, धाः- धारा होना, धार बाँधना)। **बृहतीम्** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **दुदुक्षन्** (दुह् - दोहना, रिक्त करना, लेना, खेंचना, हिंसा करना)॥ 28॥

89. इमाम् ते धियम् प्र भरे महो महीम्,
अस्य स्तोत्रे धिषणा यत् ते आनजे।
तम् उत्सवे च प्रसवे च सासहिम्,
इन्द्रम् देवासः शवसा अमदन् अनु॥ 29॥

मन्त्रार्थ- महो हे महान्, अस्य इसके स्तोत्रे स्तोत्र में धिषणा वाणी से ते तुम्हारे आनजे प्राणियों में ते तुम्हारी यत् जो इमाम् इस महीम् महान् धियम् बुद्धि

को प्र भरे धारण करते हैं। देवासः देवगण तम् उस सासहिम् सहनशील इन्द्रम् इन्द्र को उत्सवे उत्सव में च और प्रसवे प्रसव में अनु अमदन् प्रसन्न, तृप्त करते हैं।

भावार्थ - स्तुति - उपासना से परमात्मा से महान् बुद्धि तथा धारणा शक्ति प्राप्त होती है। उत्सव, ऐश्वर्य, उत्पन्न करने अर्थात् रचनात्मक कार्यों में परमात्मा को प्रसन्न तथा तृप्त करते हैं, इसका भाव यही है कि ऐसे कार्य करें जिससे परमात्मा प्रसन्न हो तथा ऐसे कार्य न करें जिससे उसे अप्रसन्नता हो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इमाम् (सर्वनाम) **ते** (सर्वनाम) **धियम्** (धि, धी = धारण करना, आधारभूत होना, बुद्धि)। **प्र भरे** (भृ = धारण, पोषण करना, पूर्ण करना)। **महो** (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **महीम्** (मही- पूजनीय होना)। **अस्य** (सर्वनाम) **स्तोत्रे** (स्तु- प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **धिषणा** (धिष् = शब्द करना, बोलना)। **यत्** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **आनजे** (आ - सम्यक्, समन्तात्, पूर्णतः, नज् - लज्जा करना, नञ्ज् - गति करना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, विस्मरण करना, नाश होना, अन = चेतन होना, जीवन होना, समर्थ होना, जाना)। **तम्** (सर्वनाम)। **उत्सवे** (सु = उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना)। **च** (अव्यय)। **प्रसवे** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **सासहिम्** (सह - सहना, सहन करना, शक्तिमान करना, सन्तुष्ट होना)। **इन्द्रम्** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **देवासः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, आनन्द करना) **शवसा** (शव - जाना, समीप जाना या आना, बलना, फिरना, बदले में देना)। **अमदन्** (अ = नहीं, अ = भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, मद् = आनन्द होना, हर्षित होना, तृप्त होना)। **अनु** (उपसर्ग)॥ 29॥

90. विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यम् मधु,
आयुः दधत् यज्ञपतौ अविह्रुतम्।
वातजूतो यो अभिरक्षति आत्मना,
प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति॥ 30॥

मन्त्रार्थ - बृहत् बड़े **विभ्राड्** विशेष प्रकाशमान (परमात्मा, उपासक)

यज्ञपतौ यज्ञ-पालन में **अविह्रुतम्** अविह्रुत (जो विह्रुत न हो) **सोम्यम्** सौम्य **मधु** मधु **पिबतु** पान करें। **आयुः** आयु (जीवन) **दधत्** धारण करे, **यो** जो **वातजूतो** वातजूत **आत्मना** आत्मा द्वारा **अभिरक्षति** रक्षा करता है, **पुरुधा** बहुत प्रकार से **प्रजाः** प्रजा का **पुपोष** पोषण किया, **वि राजति** विशेष रूप से प्रकाशित होता है।। 30।।

भावार्थ - बृहत् विभ्राड् अर्थात् बड़ा और विशेष रूप से प्रकाशित परमात्मा ही है। उसके उपासकों को भी इस स्वरूप को धारण करना होता है, अपने भावों-विचारों को बड़ा और प्रकाशमान बनाना होता है। जैसे परमात्मा आत्मा से प्रजा का पोषण विविध प्रकार से करता है, उसी प्रकार उपासक भी करते हैं, तो वे भी विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं।

विशेष - अविह्रुत का अर्थ है, जो विह्रुत न हो। विह्रुत शब्द में वि उपसर्ग है। ह्रुत में ह्व धातु सर्वाधित स्पष्ट है। इस प्रकार ह्रुत को ह्वत का वैदिक रूप माना जाना चाहिए। यदि यह ह्वत न होकर अन्य शब्द माना जाये तो भी इसका अर्थ ह्व (हरण करना) धातु के अनुसार ही होना चाहिए। वि उपसर्ग के साथ ह्व धातु का अर्थ क्रीडा करना, खेलना होता है। अतः अ उपसर्ग लगने से इसका अर्थ हुआ खेल न करना। यजन जैसे पवित्र कार्य के पालन रक्षण में मधु का पान करना तो स्वाभाविक है, माधुर्य तो यजन का स्वाभाविक परिणाम है। यह ध्यान रखना होगा कि वह मधु सौम्य हो, तथा यजन के पालन-रक्षण में खेल न हो, पूरी गम्भीरता तथा उत्तरदायित्वबोध के साथ यजन का पालन-संरक्षण करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - विभ्राड् (भ्राज - चमकना, प्रकाशित होना)। **बृहत्** (बृह = बड़ा होना)। **पिबतु** (पिब् - पीना, प्राशन करना)। **सोम्यम्** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना)। **मधु** (मध् = मधुर होना, मीठा होना)। **आयुः** (अय-आयुस् - जीवनम्)। **दधत्** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **यज्ञपतौ** (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना, पत् = जाना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **अविह्रुतम्** (ह्व -पाप काटना, ले जाना, पहुँचाना, लेना, ग्रहण करना, नष्ट

करना, नष्ट करना, चुराना)। **वातजूतो** (वात् = सुखी होना, सेवा करना, जाना, जुत- बोलना, शब्द करना, प्रकाशित होना, चमकना)। **यो** (सर्वनाम)। **अभिरक्षति** (रक्ष = रक्षण करना, पालन करना)। **आत्मना** (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। **प्रजाः** (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **पुपोष** (पुष - पालन करना, पोषण करना)। **पुरुधा** (पुर - अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, धा -धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना)। **वि-राजति** (राज् = प्रकाशित होना, शोभित होना, चमकना)।। 30।।

(24) सूक्त 8

91. उत् उ त्यम् जातवेदसम्,
देवम् वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्।। 31।।

मन्त्रार्थ - केतवः केतुगण (विद्वान्, ज्ञानीजन) उ ही त्यम् तुम जातवेदसम् जातवेद (जिससे वेद, ज्ञान उत्तम हुआ, वेद को उत्पन्न करने वाला अर्थात् परमात्मा), देवम् देव सूर्यम् सूर्य को विश्वाय विश्व दृशे देखने के लिए उत् उच्च, उत्तम वहन्ति वहन करते हैं।। 31।।

भावार्थ - परमात्मा जातवेद है अर्थात् वेद तथा ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है। उस देव को केतवः अर्थात् ज्ञानी ही वहन करते हैं। सूर्य का अर्थ है उत्पन्न करने वाला तथा ऐश्वर्यवान्। जातवेद, देव, सूर्य मूलतः परमात्मा के ही विशेषण हैं। इन गुणों को आत्मसात् करने वाले उपासक को भी इन विशेषणों से भूषित किया जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत् (अव्यय)। उ (निपात, अव्यय)। त्यम् (सर्वनाम)। जातवेदसम् (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जा-ज्ञा - जानना, विद् - जानना)। देवम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना)। वहन्ति (वह = वहन करना ले जाना)। केतवः (कित - जानना)। दृशे (दृश्-

पश्य -देखना)। विश्वाय (सर्वनाम)। सूर्यम् (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)॥ 31॥

92. येना पावक चक्षसा,
भुरण्यन्तम् जनान् अनु।
त्वम् वरुण पश्यसि॥ 32॥

मन्त्रार्थ- वरुण हे वरुण, त्वम् तुम येना जिस पावक पवित्रकारी चक्षसा दृष्टि से, भुरण्यन्तम् पालन-पोषण करते हुए जनान् लोगों को अनु पश्यसि देखते हो॥ 32॥

भावार्थ - जिस प्रकार वरुण अर्थात् वरणीय तथा हमारा वरण करने वाले, अपनाने वाले परमात्मा पवित्र दृष्टि से लोगों को देखता है, हमको भी उसी प्रकार पवित्र दृष्टि से देखना चाहिए। यह भी कहा गया है कि परमात्मा भुरण्यन्तम् अर्थात् पालन-पोषण करते हुए लोगों को इस प्रकार देखता है। इसका भाव यह है कि परमात्मा की पवित्र तथा पोषक-पालक दृष्टि में रहने के लिए हमको भी लोगों का पालन-पोषण करते रहना चाहिए।

विशेष - वृ धातु के मुख्य अर्थ वरण करना, सेवा करना, नियोजित करना, आच्छादित करना हैं। वरुण अर्थात् वरण करने वाले तथा वरणीय परमात्मा में ये सभी गुण स्मरण किये गये हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - येना (सर्वनाम)। पावक (पूञ् - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। चक्षसा (चक्ष् = स्पष्ट बोलना, देखना)। भुरण्यन्तम् (भुरण- पालन करना, पोषण करना, धारण करना)। जनान् (जन - उतन्न होना, प्रकट होना)। अनु (उपसर्ग)। त्वम् (सर्वनाम)। वरुण (वृ - पसन्द करना, नियोजित करना, वरण करना)। पश्यसि (पश् = देखना)॥ 32॥

93. दैव्यो अध्वर्यू आ गतम्, रथेन सूर्य त्वचा।
मध्वा यज्ञम् सम् अञ्जाथे।
तम् प्रत्नथा अयम् वेनः,
चित्रम् देवानाम्॥ 33॥

मन्त्रार्थ- दैव्यो दिव्य अध्वर्यू अध्वर्यु सूर्य उत्पन्नकर्ता, ऐश्वर्यवान् (परमात्मा) त्वचा त्वचा रथेन रथ द्वारा आ गतम् आ गये। मध्वा मधु से यज्ञम् यजन को सम् सम्यक् रूप से अञ्जाथे अञ्जन (स्वच्छ, प्रकाशित) करते हो। अयम् यह वेनः वेन विद्वान् देवानाम् देवों के तम् उस चित्रम् चित्र को प्रत्नथा प्रसिद्ध करते हैं।॥33॥

भावार्थ - दिव्य परमात्मा सबको उत्पन्न करने तथा ऐश्वर्य देने वाला है, वह त्वचा अर्थात् आच्छादन, ग्रहण रूपी रथ से आता है। वह सम्पूर्ण सृष्टि को आच्छादित किये हुए है, ग्रहण किये हुए है। यही स्वरूप उसका आगमन है। वह सर्वत्र व्याप्त है, उसे कहीं आना-जाना तो है ही नहीं। उसकी सर्वव्यापकता का अनुभव हो जाये यही उसका आना अर्थात् ईश्वर का प्राप्त होना है।

विशेष - प्रत्नथा पद का अर्थ विद्वानों ने पूर्व के समान भी किया है। प्रत्न का अर्थ पूर्व या पहले तथा था प्रत्यय उपमा या समानता के लिए प्रयोग होता है। त्वच् धातु का अर्थ आच्छादित करना, ग्रहण करना होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - दैव्यो (दिव्, देव् = तेजस्वी होना, विद्वान होना)। अध्वर्यू (ध्वृ = हिंसा करना)। आगतम् (गम् = जाना, आगम् = आना)। रथेन (रथ् = जाना, ले जाना)। सूर्य (सु = उत्पन्न करना)। त्वचा (त्वच - आच्छादित करना, लपेटना, ढांकना)। मध्वा (मधु = मीठा)। यज्ञम् (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना)। सम् अञ्जाथे (अंज - स्वच्छ करना, प्रकाशित होना)। तम् (सर्वनाम)। प्रत्नथा (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। अयम् (सर्वनाम)। वेनः (वेन -रक्षा करना। वेन - जाना, समझना, जानना, स्मरण करना, याद करना, सारासार विचार करना, चित्रम् (चित् - चेतन करना या होना, विचार करना, चित्र - चित्र बनाना, आश्चर्य करना)। देवानाम् (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)॥ 33॥

94. आ नः इडाभिः विदथे सुशस्ति,
विश्वानरः सविता देव एतु।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो,

विश्वम् जगत् अभिपित्वे मनीषा ॥ 34 ॥

मन्त्रार्थ- आ नः हमारे लिए इडाभिः इडाओं (धारण, घर्षण, छेदन) द्वारा विदथे विदथ में (ज्ञान में, घर में) सुशस्ति अच्छी तरह काटने वाला, उत्पन्न करने वाला विश्वानरः विश्वमानव सविता उत्पन्न कर्ता, ऐश्वर्यवान् देव दिव्य एतु आये, प्राप्त हो। अपि निश्चय ही, यथा जैसे नो हमारा युवानो युवा विश्वम् सभी जगत् गतिशील संसार अभिपित्वे अभिगमन में मनीषा मनन द्वारा मत्सथा हर्षित हो, तृप्त हो ॥ 34 ॥

भावार्थ - परमात्मा अथवा उपासक विश्वमानव बनकर सुशस्ति अर्थात् अच्छी तरह काटने वाला, उत्पन्न करने वाला होता है। वह सबके दुःख-कष्ट काटता है तथा सद्गुण और सुख उत्पन्न करता है। वह ऐसा धारण, घर्षण, छेदन द्वारा कर पाता है। वह प्रयास परिश्रम से धारणा शक्ति प्राप्त करता है, इसकी साधना में उसे घर्षण अर्थात् अनेक कष्टों को भी सहन करना पड़ता है। वह ज्ञान रूपी घर में यह साधना करता है। युवाओं को हर्षित तृप्त होने के लिए मनीषा अर्थात् मनन-विचार करने की आवश्यकता होती है।

विशेष - इडाभिः पद में इड धातु स्पष्ट है, इड धातु का अर्थ धारण करना, घर्षण करना, छेदन करना होता है। ईड धातु का अर्थ स्तुति करना है, उससे भी इडा शब्द को व्युत्पन्न माना जाता है। विद् धातु का प्रमुख अर्थ जानना है। समझाना, वास करना, स्थिर रहना भी विद धातु के अर्थ हैं। अतः विदथ का मुख्य अर्थ ज्ञान के साथ ही विद्वानों ने इसका अर्थ घर भी किया है। सुशस्ति पद में सु उपसर्ग के साथ शस् धातु मानकर इसका अर्थ अच्छी तरह काटना हो सकता है। सुष् धातु मानने पर इसका अर्थ उत्पन्न करना होगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। नः (सर्वनाम)। इडाभिः (इड - धारण करना, घर्षण करना, छेदन करना, ईड् = स्तुति करना)। विदथे (विद - सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना)। सुशस्ति (शंस = स्तुति, प्रशंसा करने वाला)। विश्वानरः (विश्व = सब, नृ = ले जाना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। देव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। एतु (इ = जाना)। अपि (अव्यय)। यथा

(अव्यय)। युवानो (यु -मिश्रित करना, मिलाप करना, पृथक् पृथक् करना)। मत्सथा (मद- हर्षित होना, तृप्त होना)। नो (सर्वनाम)। विश्वम् (सर्वनाम)। जगत् (जग् = गति करना, लेना, घर्षण करना)। अभिपित्वे (पा = रक्षा करना, पालन करना, पि = जाना, जानना, पाना)। मनीषा (मन - बन्द करना, स्थिर रहना, मन्द होना, जानना, समझना, स्वीकार करना) ॥ 34 ॥

(25) सूक्त 9

95. यत् अद्य कत् च वृत्रहन्,
उत् अगा अभि सूर्य।
सर्वम् तत् इन्द्र ते वशे ॥ 35 ॥

मन्त्रार्थ- वृत्रहन् हे हिंसा को नष्ट करने वाले, सूर्य सृष्टिकर्ता, इन्द्र ऐश्वर्यवान्, अद्य आज यत् जो कत् कुछ च और अभि उत् अगा (अभि-उत्-अगा) अभ्युदय (है), तत् वह सर्वम् सब कुछ ते तुम्हारे वशे वश में (है) ॥ 35 ॥

भावार्थ - परमात्मा ही सृष्टिकर्ता तथा परम ऐश्वर्यवान् है। वह वृत्रहन् अर्थात् हिंसा को नष्ट करने वाला है। आज जो कुछ भी अभ्युदय अर्थात् सृजन है, वह सब कुछ उसके ही वश में है। परमात्मा ही सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाला, विनाश करने वाला तथा वश में रखने वाला है।

विशेष - वृत्र क्या हैं। वृत धातु का बहुप्रचलित अर्थ वर्तमान होना है। वेदमन्त्रों में कुछ ऐसे वृत्रों को उल्लेख है जिनका हनन करना पड़ता है। वे वृत्र कैसे हैं जिनको मारना पड़ा। वृत् धातु का एक अर्थ हिंसा करना भी है। जो इस प्रकार के वृत्र अर्थात् हिंसक स्वभाव अथवा हिंसक जन हैं, जिनमें हिंसक प्रवृत्ति वर्तमान है, उनका हनन करना आवश्यक हो जाता है। वृ धातु के अर्थ वरण करना, सेवा करना, नियोजित करना, आच्छादित करना आदि हैं। वृत्रों अर्थात् ऐसे गुणों तथा ऐसे गुण वाले लोगों का वरण किया जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यत् (सर्वनाम)। अद्य (अव्यय)। कत् (सर्वनाम)। च (अव्यय)। वृत्रहन् (वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा

करना, हन् - हिंसा करना)। उत् (अव्यय)। अगा (अग् = गति करना, आगे जाना)। अभि (उपसर्ग)। सूर्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। सर्वम् (सर्वनाम)। तत् (सर्वनाम)। इन्द्र (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना) ते (सर्वनाम)। वशे (वश - इच्छा करना, चाहना)।। 35।।

96. तरणिः विश्व दर्शतो,
ज्योतिष्कृत् असि सूर्य।
विश्वम् आ भासि रोचनम्।। 36।।

मन्त्रार्थ- सूर्य हे ऐश्वर्यवान् उत्पन्नकर्ता, विश्व सब कुछ दर्शतो दिखाने वाले, ज्योतिष्कृत् प्रकाशकर्ता तरणिः तारने वाले, पार करने वाले असि हो। विश्वम् सबको रोचनम् रोचन आ भासि प्रकाश करते हो।। 36।।

भावार्थ - परमात्मा ही उत्पन्न करने वाला, आनन्द तथा प्रकाश देने वाला और तारने वाला है।

विशेष - रुच धातु का अर्थ आनन्द, प्रकाश, प्रसन्नता, उत्साह करना है। भास धातु का अर्थ प्रकाश करना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तरणिः (तृ - पार जाना, जाना, जल पर तैरना)। विश्व (सर्वनाम)। दर्शतो (दृश् - देखना)। ज्योतिष्कृत् (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। असि (अस् - होना)। सूर्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। विश्वम् (सर्वनाम)। आ भासि (भास-चमकना, प्रकाशित होना)। रोचनम् (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना)।। 36।।

97. तत् सूर्यस्य देवत्वम् तत् महित्वम्,
मध्या कर्तोः विततम् सम् जभार।
यदा इत् अयुक्त हरितः सधस्थात्,
आत् रात्री वासः तनुते सिमस्मै।। 37।।

मन्त्रार्थ - सूर्यस्य सूर्य का (ऐश्वर्यवान् उत्पन्नकर्ता का) तत् वह देवत्वम् देवत्व, तत् वह महित्वम् महत्व, कर्तोः कर्ता का विततम् वितान को मध्या मध्य

में सम् सम्यक् रूप से जभार प्रकाशित किया। यदा जब इत् ही सिमस्मै सभी के लिए हरितः हरित सधस्थात् साथ अयुक्त युक्त किया, आत् सम्पूर्ण रात्री रात्रि में वासः निवास तनुते विस्तृत करता है।। 37।।

भावार्थ - परमात्मा कर्ता के वितान अर्थात् विस्तार को मध्य में प्रकाशित करता है, यह उसका देवत्व, यह उसका महत्व है। कर्तव्य कर्म हमको करना है, मध्य में विघ्न-बाधाओं के निवारण तथा कार्य को पूर्णता विस्तार प्रदान करने में परमात्मा का प्रकाश सहयोग मिलता है। उसने ही सबके लिए रात्रि में विश्राम के लिए निवास की व्यवस्था की है। वह कष्टों का हरण करने वाला है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तत् (सर्वनाम)। सूर्यस्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। देवत्वम् ` (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। महित्वम् (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। मध्या (सर्वनाम)। कर्तोः (कृ - करना)। विततम् (वि - विशेष, तन् - विस्तार करना, वर्णन करना, शब्द करना, आश्रय देना, वित्त - देना, दान करना, धर्म में व्यय करना)। सम् जभार (सम् - सम्यक्, भा = प्रकाश होना)। यदा (सर्वनाम)। इत् (अव्यय)। अयुक्त (अ = नहीं, युज् - योग करना, युक्त करना, जोड़ना)। हरितः (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। सधस्थात् (सध - साथ (अव्यय), सद् - जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। रात्री (रा - देना, मिल जाना)। वासः (वस् = रहना, निवास करना)। तनुते (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना, वर्णन करना, फैलाना, बढ़ाना, भरोसा करना, आश्रय देना)। सिमस्मै (सर्वनाम)।। 37।।

98. तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे,
सूर्यो रूपम् कृणुते द्योः उपस्थे।
अनन्तम् अन्यत् रुशत् अस्य पाजः,
कृष्णम् अन्यत् हरितः सम् भरन्ति।। 38।।

मन्त्रार्थ- तत् वह सूर्यो सूर्य (उत्पन्न करने वाला ऐश्वर्यवान् परमात्मा) मित्रस्य मित्र के, वरुणस्य वरुण के अभिचक्षे अभिदर्शन के लिए द्योः द्यु के

उपस्थे समीप स्थित रूपम् रूप को कृणुते करता है। अस्य इसका अनन्तम् अनन्त पाजः पाज (परिपक्वता, अभिव्यक्ति, बल) अन्यत् अन्य को (किसी को) रुशत् मारता है, अन्यत् अन्य कृष्णम् कृष्ण को हरितः हरि से सम् भरन्ति सम्यक् भरण करता है।। 38 ।।

भावार्थ - परमात्मा मित्र वरुण को दिखाने के लिए द्यु अर्थात् प्रकाश, अभिगमन के निकट रूप धारण करता है, उपासको के लिए प्रत्यक्ष अनुभव में आता है। वह विविध रूपों में सहायक बनता है। इसके लिए वह किसी को मारता है तथा किसी का भरण-पोषण करता है। परमात्मा का पाज ही दुष्टों को मारता या दुःख देता है। उसके मारने तथा दुःख देने में भी परिपक्वता तथा प्रकाशन, व्यक्तीकरण का भाव प्रमुख है, अन्यथा परमात्मा तो सबको उत्पन्न करने वाला है, वह किसी को नष्ट नहीं करता है। सृष्टि की व्यवस्था में रूप परिवर्तन होता है, आवागमन है। इसी को साधारण दृष्टि से उदय - अस्त होना अथवा उत्पन्न अथवा नष्ट होना कह देते हैं। सूर्य का उदय-अस्त हमें अनुभव होता है, परन्तु वास्तव में सूर्य तो सदैव प्रकाशित है, उसका उदय या अस्त होना सम्भव नहीं है। उदय-अस्त तो केवल हमारी दृष्टि के सापेक्ष प्रतीत होता है।

विशेष - पाज का शब्दार्थ सामान्यतः बल माना गया है। पच् धातु का अर्थ परिपक्व करना, पकाना, व्यक्त करना होता है। परिपक्व करने तथा व्यक्त करने के सामर्थ्य को बल माना गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तत् (सर्वनाम)। मित्रस्य (मिद- स्नेह करना, प्रीति करना)। वरुणस्य (वृ - पसन्द करना, नियोजित करना, वरण करना)। अभिचक्षे (अभि - सभी ओर, सर्वथा, चक्ष् — अनुमोदन करना, कहना, देखना)। सूर्यो (सुर - अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। रूपम् (रूप - बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रुपाकृति लाना)। कृणुते (कृ - करना)। द्योः (द्यु, द्यौ = आगे जाना, प्रकाश होना)। उपस्थे (उप - समीप, स्थ - स्थित)। अनन्तम् (अन् = प्राण होना, चेतन होना, श्वास लेना, स्पन्दन करना, हलचल करना, अन् - नहीं, अन्त - अन्त होना, बाँधना, पाना, हिंसा करना)।

अन्यत् (अन्यः = कोई और, इतर।)। रुशत् (रुश् - हिंसा करना, रुंश - चमकना, प्रकाशित होना, बोलना)। अस्य (सर्वनाम)। पाजः (पा - रक्षा करना, पालन करना)। कृष्णम् (कृष् = विलेखन, कर्षण करना, रेखा करना)। हरितः (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। सम् भरन्ति (सम् = सम्यक्, भलीभांति, सम् - न घबराना, एक समान रहना, भृ = भरण करना)।। 38 ।।

(26) सूक्त 10

99. बट् महान् असि सूर्य,
बट् आदित्य महान् असि।
महः ते सतो महिमा पनस्यते,
अद्धा देव महान् असि।। 39 ।।

मन्त्रार्थ- सूर्य हे सूर्य (उत्पन्न कर्ता, प्रेरक, ऐश्वर्यवान्), बट् सत्य ही, निश्चय ही महान् महान् असि हो, बट् सत्य ही, निश्चय ही आदित्य है आदित्य, अखण्ड, अविनाशी महान् महान् असि हो। महः हे पूज्य,, ते तुम्हारी सतो सत्य महिमा महिमा पनस्यते पूज्य है, देव हे देव, अद्धा सत्य ही महान् महान् असि हो।। 39 ।।

भावार्थ - परमात्मा को उत्पन्न करने, प्रेरित करने तथा परम ऐश्वर्यवान् होने से सूर्य कहा गया है और अखण्ड, अविनाशी होने से उसे आदित्य कहा गया है।

विशेष - बट् तथा अद्धा निपात, अव्यय हैं, इनके अर्थ सत्य ही, निश्चय ही होते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - बट् (अव्यय, निपात्)। महान् (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। असि (अस् - होना)। सूर्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। बट् (अव्यय, निपात्)। आदित्य (अदिति से उत्पन्न, अदिति = अ + दी, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। महः (मह- सम्मान करना, पूजा करना)। ते (सर्वनाम)। सतो (सत् =

सत्य होना, अस्तित्व होना)। महिमा (महि = पूजा करना, सम्मान करना)। पनस्यते (पन - प्रशंसा करना, स्तुति करना)।अद्धा (अव्यय, निपात्)।देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)॥ 39॥

100. बट् सूर्य श्रवसा महान् असि,
सत्रा देव महान् असि।
मह्ना देवानाम् असुर्यः पुरोहितो,
विभु ज्योतिः अदाभ्यम्॥ 40॥

मन्त्रार्थ- बट् सत्य ही, निश्चय ही सूर्य हे सूर्य (उत्पन्न कर्ता, प्रेरक, ऐश्वर्यवान्), श्रवसा श्रवण से, ज्ञान से महान् महान् असि हो।देव हे देव, सत्रा सत्य ही महान् महान् असि हो। देवानाम् देवों के मह्ना महिमा से असुर्यः अजन्मा पुरोहितो पुरोहित, अग्रगामी, हितकारी विभु विशेष हुआ ज्योतिः प्रकाश अदाभ्यम् अनिन्द्य, निन्दारहित (हो)॥ 40॥

भावार्थ - परमात्मा सत्य ही सबसे महान् है, वह अजन्मा, अनिन्दनीय, विभु तथा ज्योति-स्वरूप है।

विशेष - विभु शब्द वि उपसर्ग सहित भू धातु से बनता है।परमात्मा का होना, उसका अस्तित्व ही विशेष है, शेष सब तो उसकी रचना ही है।असुर्य शब्द में अ उपसर्ग का अर्थ न है।सु धातु का अर्थ उत्पन्न करना या होना है। परमात्म असुर्य अर्थात् उत्पन्न करने योग्य नहीं है, उसको उत्पन्न नहीं किया जा सकता है।वह पुरोहित अग्रगामी है।पुर का अर्थ है पहले, आगे तथा हि धातु का अर्थ है जाना।वह पहले सबका हित करने वाला है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - बट् (अव्यय, निपात्)। सूर्य (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। श्रवसा (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)।महान् **(मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)** असि (अस् - होना)। सत्रा (सत्र - फैलाना, विस्तार करना, सम्बन्ध करना, संसर्गी होना)। देव (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)।मह्ना (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना,

सम्मान करना, सत्कार करना)।देवानाम् (दिव् = तेजस्वी होना, स्तुति करना आदि)।असुर्यः (अस् - होना, अस्तित्व होना, वर्तमान होना, फेंकना, बिखेरना, उड़ाना, असु = प्राण)।पुरोहितो (पुर - पूर्व होना, पहले होना, अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना, हि - चलना, जाना, जानना, पाना)। विभु (वि + भू = होना, पाना, चिन्तन करना)। ज्योतिः (ज्युत - चमकना, प्रकाशित होना)।अदाभ्यम् (अ - नहीं, दभ = निन्दा करना, आज्ञा देना)।40॥

101. श्रायन्त इव सूर्यम् विश्वा,
इत् इन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमाने ओजसा,
प्रति भागम् न दीधिम्॥ 41॥

मन्त्रार्थ- इन्द्रस्य इन्द्र के सूर्यम् सूर्य का श्रायन्त इव आश्रय लेने के समान विश्वा सब इत् ही भक्षत भक्षण करें।ओजसा ओज द्वारा वसूनि वसुओं के जाते उत्पन्न होने पर जनमाने उत्पन्न होने वाले प्रति भागम् प्रत्येक भाग के न समान दीधिम् धारण करते हैं॥ 41॥

भावार्थ - जैसे इन्द्र सूर्य का आश्रय लेता है, वैसे ही विश्व भक्षण करता है।इन्द्र का अर्थ है ऐश्वर्यवान् तथा सूर्य का अर्थ है उत्पन्न करने वाला तथा ऐश्वर्यवान्।उत्पन्नकर्ता होने का महत्व विशेष है, इसीलिए सूर्य का आश्रय इन्द्र लेता है।अनेक मन्त्रों में इन्द्र तथा सूर्य दोनो ही परमात्मा के विशेषण के रूप में आये हैं। परमात्मा में सभी गुण तथा शक्तियाँ समाहित हैं, अतः उसके विशेषण के रूप में इन्द्र, सूर्य, वरुण, यम, शिव, विष्णु, अग्नि, आदित्य आदि शब्द प्रयोग होते हैं।इस मन्त्र में विशेष सन्देश देते हुए कहा गया है कि ऐश्वर्य होने पर भी उत्पन्न करने वाले का आश्रय लेना होता है।ऐश्वर्य किसी को किसी से प्राप्त भी हो सकता है, परन्तु जो उसे उत्पन्न करता है तथा विविध प्रकार से सृजनशील है, रचनाशील है, उसका आश्रय लेना ही महत्वपूर्ण है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - श्रायन्त (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। इव (अव्यय)।सूर्यम् (सुर - ऐश्वर्य होना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम

होना, चमकना)। विश्वा (सर्वनाम)। इत् (अव्यय)। इन्द्रस्य (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। भक्षत (भक्ष - खाना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, उपभोग करना)। वसूनि (वस् = वसना, रहना, धारण करना, स्थित होना, सीधा होना, निवास करना, दया-स्नेह, प्रीति-हिंसा-अपहरण करना, आच्छादन करना, वस्त्र धारण करना, कतरना, लेना)। जाते (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। जनमाने (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना)। ओजसा (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। प्रति (उपसर्ग)। भागम् (भज - अंश या भाग होना)। न (अव्यय)। दीधिम् (दीध - चमकना, प्रकाशित होना, खेलना, क्रीडा करना, धि - पास रखना या होना, युक्त होना, धारण करना)।। 41।।

(27) सूक्त 11

102. अद्या देवा उदिता सूर्यस्य,
निः अंहसः पिपृता निः अवद्यात्।
तत् नो मित्रो वरुणो माम् अहन्ताम्,
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।। 42 ।।

मन्त्रार्थ- अद्या आज सूर्यस्य सूर्य के उदिता उदित देवा देवगणों ने निः अवद्यात् निर्वचनीयता से निः अंहसः निष्पाप से पिपृता पूर्ण किया। तत् वह नो हमारे मित्रो मित्र वरुणो वरुण अदितिः अदिति सिन्धुः सिन्धु पृथिवी पृथ्वी उत और द्यौः द्यौ माम् मुझको अहन्ताम् प्रदान करें, व्याप्त हों, विस्तार करें।। 42 ।।

भावार्थ - सूर्य अर्थात् उत्पन्न कर्ता ऐश्वर्यवान् परमात्मा के देवगण अर्थात् दिव्य शक्तियाँ हमको निष्पाप बनायें, अनिर्वचनीय करें। अवद्यात् का अर्थ है अवद्य से। अवद्य अर्थात् न बोलने योग्य। जिसके विषय में कुछ बोला नहीं जा सकता है। परमात्मा अवद्य-अनिर्वचनीय है तो उसका भाव है कि परमात्मा के विषय में पूर्णतः और ठीक-ठीक वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। हम वैसे तो नहीं हो सकते हैं, परन्तु इतना तो हो ही सकता है कि हम इस तरह जीवन हो कि लोगों को हमारे विषय में व्यर्थ चर्चा का अवसर न मिले। मित्र, वरुण आदि सभी देवशक्तियाँ हममें व्याप्त हों, हमारा, हमारे सद्गुणों का विस्तार करें

तथा हमें सद्गुण, विवेक, सुख-साधन प्रदान करें।

विशेष - अंह् धातु के अर्थ प्रकाश होना, चमकना के साथ ही कुटिल गति करना, कलुष होना भी है। अतः अंहस् शब्द का अर्थ पाप भी होता है। पृ (पिपर्ति) धातु का अर्थ पालन, पोषण, पूर्ण, तृप्त करना है। अह धातु के अर्थ व्याप्त होना, विस्तार करना, देना हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अद्या (अव्यय)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। उदिता (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, इ = जाना, उद् = उत्कृष्ट होना, उच्च होना, उदार होना, उदि - उन्द् = भिगोना, गीला करना, आद्र होना, कष्ट होना)। सूर्यस्य (सुर - अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, चमकना)। निः (उपसर्ग)। अंहसः (अंह् = प्रकाशित होना, चमकना, शब्द करना)। पिपृता (पृ-पूर्ण करना, भरना)। अवद्यात् (वद् = बोलना)। तत् (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। मित्रो (मिद - प्रीति करना, प्यार करना)। वरुणो (वृ - वरण करना, वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना)। मामहन्ताम् (मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)। अदितिः (अद् = खाना, दी = नष्ट होना)। सिन्धुः (सिञ् - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। पृथिवी (पृथ् = विस्तार होना, फेंकना, प्रेरणा करना)। उत (अव्यय, निपात)। द्यौः (द्यु, द्यौ = आगे जाना, प्रकाश होना)।। 42।।

103. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो,
निवेशयन् अमृतम् मर्त्यम् च।
हिरण्येन सविता रथेन आ,
देवो याति भुवनानि पश्यन्।। 43 ।।

मन्त्रार्थ - सविता सविता (उत्पन्न कर्ता, ऐश्वर्यवान्) देवो देव (परमात्मा) रजसा रजस् (सूक्ष्म) आ कृष्णेन आकर्षण से वर्तमानो वर्तमान, अमृतम् अमृत को च और मर्त्यम् मरणशील को निवेशयन् निवेश करते हुए भुवनानि भुवनों को पश्यन् देखते हुए हिरण्येन हिरण्य रथेन रथ द्वारा आ याति आता है।। 43।।

भावार्थ - सविता देव परमात्मा सूक्ष्म आकर्षण से सर्वत्र वर्तमान है। अमृत तत्व ऋत आदि तथा नाशवान् जड़-चेतन जगत् में वह निवास करता है। विश् धातु का अर्थ है भीतर जाना, प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना। अतः यहाँ निवेश का अर्थ स्पष्ट है कि परमात्मा के सर्वव्यापी होने का ही भाव है। वह सभी भुवनों को देखता है। भुवन अर्थात् जो कुछ भी होता है, सबको देखता है। भुवन का अर्थ लोक-लोकान्तर भी होता है, वह सभी लोक-लोकान्तरों को देखता है अर्थात् उसकी दृष्टि से कोई बच नहीं सकता है।

विशेष - लोक व्यवहार में सविता तथा सूर्य शब्द आकाश में प्रकाश तथा ऊर्जा के स्रोत नक्षत्र या तारे सूर्य के लिए भी प्रयोग होता है। इस मन्त्र का लौकिक दृष्टि से भावार्थ उस सूर्य के सूक्ष्म आकर्षण शक्ति से परिभ्रमण करते हुए वर्तमान होने से भी लिया जाता है। वेदार्थ की परम्परा तथा धातुज अर्थ के सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार सविता तथा सूर्य का मूल वैदिक अर्थ उत्पन्न करने वाला ऐश्वर्यवान् परमात्मा ही किया जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ कृष्णेन (आ - समन्तात्, सम्यक्, सम्पूर्ण, आगम (उपसर्ग), कृष् = आकर्षण करना, खींचना)। रजसा (रज - रज होना, सूक्ष्म होना)। वर्तमानो (वृतु - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना)। निवेशयन् (नि = बिना, बाहर, निश्चित, निरन्तर (उपसर्ग), विश - घुसना, भीतर जाना, धंसना)। अमृतम् (अ - नहीं, + मृ = मरना)। मर्त्यम् (मृ = मरना)। च (अव्यय)। हिरण्येन (हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। रथेन (रथ् = जाना, ले जाना)। आ (उपसर्ग)। देवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, आनन्द करना आदि)। याति (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। भुवनानि (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। पश्यन् (पश्-दृश् = देखना)।। 43।।

104. प्र वावृजे सुप्रया बर्हिः एषाम्,
आ विश्पती इव बीरिट इयाते।
विशाम् अक्तोः उषसः पूर्वहूतौ,

वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान्।। 44।।

मन्त्रार्थ- एषाम् इनके सुप्रया सुन्दर प्रयाण बर्हिः उद्यम, वाणी, वचन प्र वावृजे प्रवृज्या करते हैं। एषाम् इनके बीरिट वरण विश्पती प्रजापालक इव के समान आ इयाते आते अथवा प्राप्त होते हैं। विशाम् विशों में अक्तोः ज्ञानी के उषसः उषा से पूर्वहूतौ पहले आह्वान में वायुः वायु (और) पूषा पोषणकर्ता स्वस्तये कल्याण के लिए नियुत्वान् नियोजित किया।। 44।।

भावार्थ - बृह् धातु का अर्थ बढ़ना, शब्द करना तथा बर्ह धातु का अर्थ प्रधान होना, प्रयास करना, उद्योग करना होता है। ब्री धातु का अर्थ वरण करना होता है। अतः बीरिट का अर्थ वरण, चयन होगा। बीरिट शब्द को गणवाची भी माना गया है। इसका अर्थ है कि रिट प्रत्यय गणबोधक है। कुछ विद्वानों ने बीरिट शब्द में भी धातु मानकर भ के स्थान पर ब होना माना गया है। विद्वानों ने इसे भी को बी आदेश होना कहा है। धातु स्पष्ट न होने पर इस प्रकार के अनुमान किये जाते रहे हैं। विश् धातु का अर्थ सूचना, प्रेरणा, प्रवेश करना है। लोक में सामान्यतः प्रजा अथवा जनसमुदाय को विश कहा जाता है। अक् धातु गति अर्थ वाली है। सभी गति अर्थ वाली धातुओं में ज्ञान, गमन तथा प्राप्ति अर्थ होते हैं। अतः अक्तु का अर्थ ज्ञानी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्र वावृजे (प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग), वा - जाना, पवन सा चलना, वृज् - छोड़ना, वर्जित करना)। सुप्रया (सु - सुन्दर, अच्छा, प्राची, प्र - प्रकृष्ट, अधिक, या = जाना, प्राप्त होना, पहुँचना) बर्हिः (बृह् = बढ़ना)। एषाम् (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। विश्पती (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना, पत् = ऐश्वर्य होना, रक्षक-स्वामी होना)। इव (अव्यय)। बीरिट (बृ - ढकना, आच्छादित करना)। इयाते (इ = जाना, जानना पाना)। विशाम् (विश-प्रवेश करना, घुसना भीतर जाना, चारो ओर फैलाना)। अक्तोः (अक् - जाना, जानना पाना, टेढ़ा जाना, कुटिल गति करना, वक्रगति करना)। उषसः (उषस् = प्रभात होना)। पूर्वहूतौ (पूर्व = पूर्व, पहले (सर्वनाम), हु - देना, ग्रहण करना)। वायुः (वा = गति करना)। पूषा (पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना, पालन करना)। स्वस्तये (सु - अच्छा, अस् - होना, स्वस्ति

= कल्याण)। नियुत्वान् (यु- मिश्रित करना, मिलाप करना, पृथक् पृथक् करना)।। 44 ।।

(28) सूक्त 12

105. इन्द्रवायू बृहस्पतिम् मित्रा,
अग्निम् पूषणम् भगम्।
आदित्यान् मारुतम् गणम्।। 45 ।।

मन्त्रार्थ- इन्द्रवायू इन्द्र वायु, बृहस्पतिम् बृहस्पति, मित्रा, मित्र, अग्निम् अग्नि, पूषणम् पूषा, भगम् भग, आदित्यान् आदित्यों, मारुतम् मारुत गणम् गण को (नमन, स्मरण, आह्वान करते हैं।)।। 45 ।।

भावार्थ - विभिन्न देवशक्तियों का स्मरण किया गया है।

विशेष - इस मन्त्र में क्रिया नहीं है। सामान्यतः ऐसे मन्त्रों में स्मरण करने का भाव होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्रवायू (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, वा - गति करना, बहना, वे - बुनना, रचना करना), बृहस्पतिम् (**बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना**), मित्रा (**मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना**), अग्निम् (**अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना**), पूषणम् (**पुष् - पोषण करना, धारण करना**), भगम् (**भग् -भज्** - सेवा करना, सेवन करना, **दान करना, अलग करना**), आदित्यान् (**अदिति, अ - नहीं, दी - क्षय होना**), मारुतम् (**मृ-मरना**) गणम् (गण् - गणना करना, गिनना)।। 45 ।।

106. वरुणः प्राविता भुवत्,
मित्रो विश्वाभिः ऊतिभिः।
करताम् नः सु-राधसः।। 46 ।।

मन्त्रार्थ - वरुणः वरुण प्राविता प्रकृष्ट रक्षक भुवत् हैं। मित्रो मित्र

विश्वाभिः सभी ऊतिभिः रक्षाओं द्वारा नः हमारा सुराधसः सुन्दर राध (सिद्धि) करताम् करे।। 46 ।।

भावार्थ - वरणीय परमात्मा हमारा रक्षक है। भावना है कि रक्षा के लिए हमने परमत्मा का वरण किया है। वही हमारा सच्चा मित्र है। वह सभी रक्षा उपायों से हमारी रक्षा करता है।

विशेष - राध धातु का अर्थ निर्णय करना, पूर्ण करना, सिद्ध करना, बढ़ना हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वरुणः (वृ - वरण करना) प्राविता (प्र - प्रकृष्ट, अव् - रक्षा करना) भुवत् (भू - होना)। मित्रो (मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना), विश्वाभिः (सर्वनाम) ऊतिभिः (अव-ऊ - रक्षा करना) नः (सर्वनाम) सुराधसः (सु = उत्तम, सुष्ठु, अच्छा, सुन्दर (उपसर्ग), राध् - सिद्ध करना, पूरा करना, बढ़ना, निर्णय करना) करताम् (कृ - करना)।। 46 ।।

107. अधि न इन्द्र एषाम्, विष्णो सजात्यानाम्।
इता मारुतो अश्विना, तम् प्रत्नथा अयम् वेनो।
ये देवास आ न इडाभिः, विश्वेभिः सोम्यम् मधु,
ओमासः चर्षणीधृतः।। 47 ।।

मन्त्रार्थ- इन्द्र हे इन्द्र, विष्णो हे विष्णु, मारुतो हे मारुत, अश्विना हे अश्विन, नः हमारे एषाम् इन सजात्यानाम् जन्मे लोगों, सहजन्माओं के अधि इता अधिगत (प्राप्त) हो। अयम् यह वेनो विद्वान् तम् उसको प्रत्नथा प्रसिद्ध करते हैं। ये जो देवासः देवगण आ समन्तात्, सम्पूर्णता से नः हमारे लिए विश्वेभिः सभी इडाभिः इडाओं (धारण, घर्षण, छेदन) द्वारा सोम्यम् सौम्य मधु, मधुरता को चर्षणीधृतः आनन्द, चेतना, विचार को धारण करने वाला ओमासः (ओम् आसः) ओम् है।। 47 ।।

भावार्थ - दिव्य शक्तियों को प्राप्त करने की कामना सभी के लिए की गयी है। मात्र अपने लिए कामना करना हमारी संस्कृति नहीं है। इडाभिः इडाओं

(धारण, घर्षण, छेदन) द्वारा हितकामना का भाव है कि कठिनाइयों-प्रतिकूलताओं में भी कर्मशील रहें, आवश्यकता होने पर कष्ट उठाने के लिए भी तैयार रहें।

विशेष - प्रत्नथा पद का अर्थ विद्वानों ने पूर्व के समान भी किया है। प्रत्न का अर्थ पूर्व या पहले तथा था प्रत्यय उपमा या समानता के लिए प्रयोग होता है। विन धातु का अर्थ कान्ति होना, तथा वेन धातु का अर्थ ज्ञान होना, रक्षा करना है। अयम् यह वेनः वेन विद्वान् देवानाम् देवों के तम् उस चित्रम् चित्र को प्रत्नथा प्रसिद्ध करते हैं। वेनः विद्वान्, कान्तिमान् प्रत्नथा प्रकृष्टता से, पूर्व की भांति, इडाभिः पद में इड धातु स्पष्ट है, इड धातु का अर्थ धारण करना, घर्षण करना, छेदन करना होता है। ईड धातु का अर्थ स्तुति करना है, उससे भी इडा शब्द को व्युत्पन्न माना जाता है। ओमासः शब्द ओम् आसः के रूप में पाठ करने पर इसका अर्थ ओम् (परमात्मा) है, ऐसा माना गया है। ओमासः पद को अव धातु से व्युत्पन्न मानकर इसका अर्थ रक्षक भी किया गया है। चृष्-चर्ष धातु का अर्थ आनन्द होना, विचार करना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्र (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना**), विष्णो (**विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना**), मारुतो (मृ - मरना), अश्विना (**अश् -व्याप्त होना, फैलना, तीव्रता से पहुँचना, पाना, संग्रह करना**), नः (सर्वनाम) एषाम् (सर्वनाम) सजात्यानाम् (स - साथ, सहित, सज्, संज = सम्बन्धी होना, आलिंगन करना, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। अधि इता (अधि - अधिक, इ - जाना)। अयम् (सर्वनाम), वेनो (**वेन** - मिलाना, अलग करना, रक्षा करना, जाना, समझना, जानना, स्मरण करना, सारासार विचार करना, तारतम्य देखना, वाद्य यन्त्र बजाना, बाजा हाथ में लेना) तम् (सर्वनाम) प्रत्नथा (प्रथ् - प्रसिद्ध होना, फैलना, फैलाना)। ये (सर्वनाम) देवासः (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), आ समन्तात्, (सर्वनाम) नः (सर्वनाम) विश्वेभिः (सर्वनाम) इडाभिः (इड् - धारण, घर्षण, छेदन करना) सोम्यम् (**सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना**), मधु (**मध - मधुर होना, मीठा होना**), चर्षणीधृतः (चृष्-चर्ष - आनन्द होना, चेतन होना, विचार करना) ओमासः (ओम् -

परमात्मा, अस् - होना)।। 47।।

(29) सूक्त 13

108. अग्ने इन्द्र वरुण मित्र देवाः,
शर्द्धः प्र यन्त मारुत उत विष्णो।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः,
पूषा भगः सरस्वती जुषन्त।। 48।।

मन्त्रार्थ- अग्ने हे अग्नि, इन्द्र हे इन्द्र, वरुण हे वरुण, मित्र हे मित्र, मारुत हे मारुत, उत और विष्णो हे विष्णु, शर्द्धः हे शर्द्ध (बल) देवाः देवगण, प्र यन्त उद्धार करो। उभा दोनो नासत्या नासत्य युगल रुद्रो रुद्र, ग्नाः गति-ज्ञान-ग्रहण, पूषा पोषणकर्ता भगः सेवा, सेवनीय अध अब सरस्वती ज्ञानवती, विद्यावती, गति-ज्ञान युक्त जुषन्त विचार-विवेक-प्रीति-सेवा करो।। 48।।

भावार्थ - दिव्य शक्तियाँ हमारा उद्धार करें, हमें विवेक-विचार-सेवाभावना प्रदान करें, यही कामना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अग्ने (**अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना**), इन्द्र (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना**), वरुण (वृ - वरण करना), मित्र (**मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना**), मारुत (मृ - मरना), उत (अव्यय) विष्णो (**विष् - विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना**), शर्द्धः (**शृध् - सहन करना, जीतना, शक्ति होना, सामर्थ्य होना**) देवाः (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), प्र यन्त (**प्र =** प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग), **यन् - उद्धार करना, यम् - आवरण करना, पोषण करना, नियमन करना**)। उभा (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। नासत्या (**नास् - शब्द करना, ध्वनि करना**) रुद्रो (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना), ग्नाः गति-ज्ञान-ग्रहण (गम् - जाना, जानना, पाना), पूषा (**पुष् - पोषण करना, धारण करना**) भगः (**भग् -भज् -** सेवा करना, सेवन करना**, सेवित होना, दान करना, अलग करना**)।

अध (अव्यय), सरस्वती (**सृ - सरकना, बहना, चलना, स - रस् - स्वाद लेना, प्रीति करना, शब्द करना**) जुषन्त (जुष् - विचार-विवेक-प्रीति-सेवा करना)।। 48 ।।

109. इन्द्राग्नी मित्रावरुणा अदितिम् स्वः,
पृथिवीम् द्याम् मरुतः पर्वतान् अपः।
हुवे विष्णुम् पूषणम् ब्रह्मणः पतिम्,
भगम् नु शंसम् सवितारम् ऊतये।। 49 ।।

मन्त्रार्थ- इन्द्राग्नी इन्द्र और अग्नि, मित्रावरुणा मित्र और वरुण, अदितिम् अदिति, स्वः, पृथिवीम् पृथ्वी, द्याम् मरुतः मरुत, पर्वतान् पर्वत, अपः अपस्, विष्णुम् विष्णु, पूषणम् पूषन्, ब्रह्मणस्पतिम्, ब्रह्मणस्पति, भगम् भग, नु शीघ्र, शंसम् प्रशंसनीय, सवितारम् सविता को ऊतये रक्षा के लिए हुवे आह्वान करते हैं।। 49 ।।

भावार्थ - हम रक्षा के लिए परमात्मा की विविध दिव्य शक्तियों का आह्वान करते हैं। इसका भाव है कि हम इन शक्तियों अर्थात् गुणों को स्वयम् में धारण करें तो हमारी रक्षा होगी तथा हम दूसरों की भी रक्षा कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्राग्नी (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना**), मित्रावरुणा (**मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना,** वृ - वरण करना), अदितिम् (**अ - नहीं, दी - क्षय होना**), स्वः (**सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सू - जन्म देना, नियमन करना, प्रेरणा देना, भेजना, जाना, चलना, उत्पन्न करना**), पृथिवीम् (**पृथ् - व्याप्त होना, प्रकट होना, प्रेरणा करना, भेजना, उड़ाना, प्रक्षेपण करना**), द्याम् (**द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना**), मरुतः (मृ - मरना), पर्वतान् (**पर्व् - पूर्ण करना, विभाग करना**), अपः (**अप् -** पालन करना), विष्णुम् (**विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना**), पूषणम् (**पुष् - पोषण करना, धारण करना**)

ब्रह्मणस्पतिम्, (**बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना, पा - पालन करना, रक्षा करना**), भगम् (**भग् -भज् -** सेवा करना, सेवन करना, **सेवित होना, दान करना, अलग करना**), नु (निपात, अव्यय), शंसम् (**शंस - इच्छा करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना**), सवितारम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना) ऊतये (ऊ-अव् - रक्षा करना) हुवे (ह्वे - आह्वान करना)।। 49 ।।

110. अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो,
वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र,
इन्द्र ज्येष्ठा अस्मान् अवन्तु देवाः ।। 50 ।।

मन्त्रार्थ- अस्मे हमारे लिए रुद्रा रुद्रगण मेहना सिञ्चन करने वाले पर्वतासो पर्वयुक्त, वृत्रहत्ये वृत्रहत्या के लिए भरहूतौ भरण के आह्वान में सजोषाः विचारशील, विवेकवान्, प्रीति करने वाले यः जो शंसते प्रशंसा करते हैं, स्तुवते स्तुति करने वाले के लिए पज्र, सञ्चय धायि धारण किया। इन्द्र ऐश्वर्यवान् ज्येष्ठा ज्येष्ठ, बड़े देवाः देवगण अस्मान् हमें अवन्तु रक्षा करें।। 50 ।।

भावार्थ - देवशक्तियों ने हमारे लिए, स्तुति करने वालों के लिए सञ्चय को धारण किया है, बहुत कुछ सञ्चय कर रखा है। वे हमारी रक्षा भी करते हैं। इसके लिए हमसे भी इन गुणों को अपनाने, धारण करने की अपेक्षा है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अस्मे (सर्वनाम) रुद्रा (रुद् - रोना, रुलाना, करुण होना, रु - शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना), मेहना (**मिह् -** सिञ्चन करना, घर्षण करना, दबाना) पर्वतासो (**पर्व् - पूर्ण करना, विभाग करना**), वृत्रहत्ये (**वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना, हन् - हिंसा करना),** भरहूतौ (भृ - भरण करना, ह्वे - आह्वान करना) सजोषाः (जुष् - विचार, विवेक-विवेचना करना, हिंसा करना, दुलार करना,

प्रीति करना, सेवा करना) यः (सर्वनाम) शंसते (**शंस - इच्छा करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना**), स्तुवते (**स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना, पूजा करना, अर्चा करना, सेवा करना, भजन करना**) पज्र, (पज - सञ्चय करना) धायि (धा - धारण करना)। इन्द्र (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना**) ज्येष्ठा (**ज्या - वृद्ध होना, बड़ा होना, बर्द्धित होना, जि - जीतना, जेष् - जाना, चलना, जानना, पाना, जिष् - सेवा करना, सिञ्चन करना, घर्षण करना**), देवाः (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**) अस्मान् (सर्वनाम) अवन्तु (अव् - रक्षा करना)।। 50।।

(30) सूक्त 14

111. अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा,
आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्।
त्राध्वम् नो देवा निजुरो वृकस्य,
त्राध्वम् कर्तात् अवपदो यजत्राः ।। 51 ।।

मन्त्रार्थ - यजत्रा यजनपालक, अद्या आज अर्वाञ्चो सम्मुख भवत हो। वो तुम्हारे हार्दि हृदय में भयमानो भय आ व्ययेयम् व्यय हो (समाप्त हो)। देवा देवगण, नो हमको निजुरो जीर्ण करने वाले वृकस्य हिंसक से त्राध्वम् रक्षा करो, यजत्राः हे यजनपालक, अवपदो निम्नगामी कर्तात् करने वाले से त्राध्वम् रक्षा करो।। 51।।

भावार्थ - यजत्र अथवा यजनपालक का अर्थ है यजन की रक्षा, पालन करने वाला। यजन शब्द में धातु यज् है जिसका अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण, दान। ऐसे यजनपालकों के सम्मुख रहने पर हृदय में भय का व्यय हो जाता है, भय समाप्त हो जाता है। सज्जनों का संगठन समाज को निर्भय कर देता है। वृक का धातुज अर्थ हिंसक है तथा लोक में वृक हिंसक होने के कारण ही भेड़िये को कहते हैं। भेड़िये जैसे हिंसकों से तथा प्रतिगामी लोगों से रक्षा की कामना की गयी है।

विशेष - अर्वाञ्चः पद का अर्थ सामान्यतः सम्मुख किया गया है। अर्वाक्

(अव्यय) का अर्थ पहले, पूर्व, सम्मुख होता है। अर्वाञ्चः पद का अर्थ अव्यय के रूप में सम्मुख लिया गया प्रतीत होता है। अर्व तथा ऋ धातुएं गति अर्थ वाली हैं। अर्व तथा ऋ धातुओं से भी सम्मुख जाना अथवा आना अर्थ ले सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यजत्रा (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान), अद्या (अव्यय) अर्वाञ्चो (ऋ - जाना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना, पहुँचाना, अर्-ऋ - गति करना, जाना, जानना, पाना, शब्द करना, व्याप्त होना, मिलाना, महत्व दिखाना, हिंसा करना, अर्व - गति करना, जाना, चलना, जानना, पाना, पहुँचना, हिंसा करना)। भवत (भू - होना)। वो (सर्वनाम) हार्दि (हृ - ले जाना, पहुँचाना, बलपूर्वक करना) भयमानो (भी - भय होना, डर होना, डराना) आ (उपसर्ग), व्ययेयम् (**व्यय - आच्छादन करना, उपयोग होना, खर्च होना, नाश होना**)। देवा (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), नो (सर्वनाम) निजुरो (नि - नितराम्, निरन्तर, जृ - जीर्ण होना, वृद्ध होना, जु - जाना, दौड़ना, भागना) वृकस्य (**वृक् - लेना, स्वीकार करना, काटना, हिंसा करना**) त्राध्वम् (**त्रै - पालन, रक्षण करना**), यजत्राः (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना), अवपदो (अव - नीचे, पद् - जाना) कर्तात् (कृ - करना) त्राध्वम् (**त्रै - पालन, रक्षण करना**)।। 51।।

112. विश्वे अद्य मरुतो विश्वे ऊती,
विश्वे भवन्तु अग्नयः समिद्धाः।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु,
विश्वम् अस्तु द्रविणम् वाजो अस्मे ।। 52 ।।

मन्त्रार्थ- अद्य आज विश्वे सभी मरुतो मरुत विश्वे सभी ऊती रक्षक, विश्वे सभी अग्नयः अग्रगामी समिद्धाः सम्यक् प्रकाशित भवन्तु हों। विश्वे सभी देवा देवगण नो हमारे अवसा रक्षण से गमन्तु गमन करें, अस्मे हमारे लिए विश्वम् सभी द्रविणम् ज्ञान वाजो विद्या, गतिशील अस्तु हो।। 52।।

भावार्थ - मरुत का अर्थ है मरणशील। सभी प्राणी मरणशील हैं। मरुत शब्द को कुछ विद्वानों ने सामान्यतः मनुष्य के लिए प्रयोग किया गया माना है।

कुछ विद्वान् इसका अर्थ विशेष देवगण मानते हैं। श्रेष्ण प्राणी के रूप में सभी मनुष्य तथा देवश्रेणी के मनुष्यों को विशेष रूप से मरुत कहना अध्येता की भावना के अनुसार है।

विशेष - वज धातु का अर्थ गति करना, सिद्ध करना, तैयार करना है। सभी गति अर्थ वाली धातुओं में गति, ज्ञान, प्राप्ति के अर्थ माने जाते हैं। अतः वाज का अर्थ विद्या तथा गतिशीलता किया जाता है। इसका भावार्थ बल तथा अन्न भी इसी अर्थ में किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अद्य (अव्यय) विश्वे (सर्वनाम) मरुतो (मृ - मरना), ऊती (ऊ-अव् - रक्षा करना), अग्नयः (**अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना),** समिद्धाः (सम् - सम्यक्, इन्ध - प्रकाश करना, प्रकाशित होना) भवन्तु (भू - होना)। देवा (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना) नो (सर्वनाम) अवसा (अव् - रक्षा करना), गमन्तु (गम् - जाना), अस्मे (सर्वनाम) विश्वम् (सर्वनाम) द्रविणम् (द्रु - जाना, जानना, पाना) वाजो (वज - गति करना, सिद्ध करना, तैयार करना, जानना, प्राप्ति करना) अस्तु (अस् - होना)॥ 52॥

113. विश्वे देवाः शृणुत इमम् हवम् मे,
ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा,
आसद्य अस्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्॥ 53॥

मन्त्रार्थ- विश्वे सभी देवाः देवगण मे मेरे इमम् इस हवम् आह्वान को शृणुत सुनें। ये जो अन्तरिक्षे अन्तरिक्ष में, य जो उप समीप द्यवि द्यु में ष्ठ स्थित, ये जो अग्निजिह्वा अग्रणी जिह्वा वाले, उत वा अथवा यजत्रा यजन के पालक-रक्षक, अस्मिन् इस बर्हिषि वासस्थान में आसद्य आसीन मादयध्वम् आनन्दित हों॥ 53॥

भावार्थ - हम सभी देवगणों का आह्वान करते हैं। वे किसी स्तर पर, किसी भी ऊँचाई पर स्थित हों, हम सभी का आह्वान, सम्मान करते हैं।

विशेष - अग्निजिह्वा अग्रणी जिह्वा वाले कहने का भाव है प्रभावशाली वाणी वाले, प्रखर सत्यवक्ता। इसका अर्थ धातु की अवहेलना करके लौकिक दृष्टि से जिह्वा से आग उगलने वाले नहीं किया जा सकता है। यह विशेषण देवों के लिए प्रयोग किया गया है जो दुष्टों को दण्ड तो दे सकते हैं, परन्तु समाज में आक्रोश उत्पन्न करने वाली वाणी नहीं बोल सकते हैं।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) - विश्वे (सर्वनाम) देवाः (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**) मे (सर्वनाम) इमम् (सर्वनाम) हवम् (ह्वे - आह्वान करना) शृणुत (**शृ -सुनना, जाना, जानना, पाना**)। ये (सर्वनाम) अन्तरिक्षे (**अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना**), उप (उपसर्ग) द्यवि (**द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना**) ष्ठ (स्था - स्थित होना, प्रतिष्ठित होना), अग्निजिह्वा (**अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना, जिह् - जाना, चलना, जानना, पाना),** उत (अव्यय) वा (अव्यय), यजत्रा (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना, त्रै - पालन करना), अस्मिन् (सर्वनाम) बर्हिषि (**बर्ह् - श्रेष्ठ होना, प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना, बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना**) आसद्य (**आस् - बैठना**), मादयध्वम् (मद् - आनन्द होना)॥ 53॥

114. देवेभ्यो हि प्रथमम् यज्ञियेभ्यो,
अमृतत्वम् सुवसि भागम् उत्तमम्।
आत् इत् दामानम् सवितः वि ऊर्णुषे,
अनूचीना जीविता मानुषेभ्यः॥ 54॥

मन्त्रार्थ - प्रथमम् पहले यज्ञियेभ्यो यजनीय देवेभ्यो देवों के लिए हि ही सुवसि सुन्दर वासस्थान में अमृतत्वम् अमरता उत्तमम् उत्तम भागम् भाग (है)। आत् इत् अब दामानम् दाताओं को सवितः ऐश्वर्यवान् उत्पन्न कर्ता का वि ऊर्णुषे विशेष आच्छादन अनूचीना अनुसम्बन्ध, अनुसंगठन जीविता जीवित

मानुषेभ्यः मनुष्यों के लिए (है)।। 54 ।।

भावार्थ - हमें उत्पन्न करने वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मा ने हमारे लिए आवश्यक प्राकृतिक सुविधाएं भी उत्पन्न की हैं। इतना अवश्य है कि उन पर प्रथम अधिकार देवगुण सम्पन्न लोगों का है तथा सभी मनुष्यों के लिए भी सभी प्राकृतिक साधन हैं। समाज के लिए विशेष उपयोगी देवजनों के लिए विशेष ध्यान रखना उचित है, परन्तु आवश्यक सुविधाएं तो सबके लिए होनी ही चाहिए।

विशेष - उच धातु का अर्थ सम्बन्ध होना, एकत्र होना है। अनु उपसर्ग सहित उच धातु से अनूचीना शब्द का अर्थ अनुसम्बन्ध अथवा अनुसंगठन होगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - प्रथमम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। यज्ञियेभ्यो (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना), देवेभ्यो **(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)** हि (अव्यय) सुवसि (सु - सुन्दर, वस् - वसना, वास करना) अमृतत्वम् (अ - नहीं, मृ - मरना) उत्तमम् (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। भागम् (**भग् -भज् -** सेवा करना, सेवन करना**, सेवित होना, दान करना, अलग करना**), आत् (आत् - भी, अथ, अब, इसके अनन्तर (अव्यय), इत् (अव्यय)) दामानम् (दा - देना, दान करना) सवितः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना) वि विशेष (सर्वनाम) ऊर्णुषे (**ऊ - शब्द करना, ध्वनि करना, विश्वास करना, ऊर्ण - आच्छादन करना**) अनूचीना (अनु - पीछे, उच - सम्बन्ध होना, एकत्र होना) जीविता (**जीव् - जीवन होना, प्राण धारण करना**) मानुषेभ्यः (मन् - मनन करना, विचार करना)।। 54 ।।

115. प्र वायुम् अच्छा बृहती मनीषा,
बृहद्-रयिम् विश्ववारम् रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः,

कविः कविम् इयक्षसि प्रयज्यो।। 55 ।।

मन्त्रार्थ - अच्छा अच्छे बृहती बड़े मनीषा विचारशील, बृहद्-रयिम् बड़े रयि वाले विश्ववारम् सबके लिए वरणीय रथप्राम् रथ को पूर्ण करने (भरने) वाले द्युतद्यामा प्रकाशमान नियमन वाले नियुतः नियुत अर्थात् निश्चित रूप से, निरन्तर युक्त, जुड़े हुए पत्यमानः ऐश्वर्यवान्, प्रयज्यो प्रमुख यजनीय, पूजनीय कविः कवि प्र प्रकृष्ट, प्रमुख वायुम् वायु को कविम् कवि को इयक्षसि पूजते हो।। 55 ।।

भावार्थ - इस मन्त्र का सार कहें तो यह है कि कवि कवि को पूजता है। शेष सभी शब्द या पद कवि के विशेषण हैं। पूजने वाला कवि है तथा वह कवि को ही पूजता है। पूजने वाले तथा पूज्य दोनो के ही गुण समान हैं, दोनो ही कवि हैं। अन्य विशेषण भी यहाँ श्लेष मानकर दोनो कवि अर्थात् पूजक-उपासक तथा पूज्य परमात्मा दोनो में ही माने जाने चाहिए। परमात्मा के गुणों को अपनाकर ही उसकी वास्तविक पूजा सम्भव है।। 55 ।।

विशेष - इयक्षसि क्रिया पद है, इसमें इयक्ष धातु स्पष्ट है। इयक्ष धातु यक्ष (पूजा करना, पूज्य होना, श्रेष्ठ होना) धातु का ही वैदिक रूप है। द्युतद्यामा पद को द्युतद्-यामा तथा द्युत-द्यामा के रूप में मान सकते हैं। द्युतद्-यामा का अर्थ प्रकाशमान तथा नियमन करने वाले तथा प्रकाशमान का नियमन करने वाले होगा। द्युत-द्यामा के रूप में निर्वचन करने पर इसका अर्थ प्रकाशमान को अभिमुख करने, अग्रगामी करने वाला होगा। दोनो ही अर्थ स्वीकार्य हैं। रयि शब्द का अर्थ ज्ञान, विद्या, धन आदि किया जाता है। रय्, रि, तथा री धातुएं गत्यर्थक, गमनार्थक हैं। इनका अर्थ चलना, जाना, जानना, पाना होता है। रै धातु का अर्थ शब्द करना है। इन सभी का समन्वय करते हुए रयि का अर्थ गति, ज्ञान, विद्या, प्राप्ति मानना चाहिए।। 55 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अच्छा (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)। बृहती **(बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना)** मनीषा विचारशील (मन् - मनन करना, विचार करना), बृहद्-रयिम् **(बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना,**

उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना, रय्-रि-री - चलना, जाना, जानना, पाना, रै - शब्द करना) विश्ववारम् (सर्वनाम) वरणीय (विश्व - सब, वृ - वरण करना) रथप्राम् (**रथ - जाना, ले जाना, प्रा - पूर्ण करना, तृप्त करना**) द्युतद्यामा (**द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना**), नियुतः (नि - निश्चित रूप से, निरन्तर, यु - मिलाना, युक्त करना, जोड़ना, अलग करना) पत्यमानः (पत् - ऐश्वर्य होना), प्रयज्यो (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना), कविः (**कव - कविता करना, वर्णन करना, तस्वीरें खींचना**), प्र प्रकृष्ट, (**वा - गति करना, बहना, पवन-सा चलना**) कविम् (**कव - कविता करना, वर्णन करना, तस्वीरें खींचना**), इयक्षसि (इयक्ष-यक्ष - पूजा करना, पूज्य होना, श्रेष्ठ होना)।। 55।।

(31) सूक्त 15

116. इन्द्रवायू इमे सुता, उप प्रयोभिः आ गतम्।
इन्दवो वाम् उशन्ति हि।। 56।।

मन्त्रार्थ- इन्द्रवायू हे इन्द्र और वायु, इमे ये सुता ऐश्वर्यवान् उत्पन्न हुए उप निकट, समीप प्रयोभिः प्रकृष्ट मिलन द्वारा आ गतम्। आ गये। इन्दवो इन्दुगण वाम् तुमको हि ही उशन्ति चाहते हैं।। 56।।

भावार्थ - परमात्मा की दो दिव्य शक्तियों अथवा गुणों इन्द्र और वायु का स्मरण किया गया है। जो परमात्मा के सुत है, उससे उत्पन्न हैं, सन्तान हैं, वे स्वाभाविक रूप से दिव्य गुणों से ऐश्वर्यवान् तो हैं ही। वे प्रकृष्ट मिलन द्वारा निकट आ गये हैं। परमात्मा के निकट आने का मार्ग है उससे मिल जाना, जुड़ जाना, रम जाना, एकाकार हो जाना। ऐसे इन्दुगण उसको ही चाहते हैं, किसी और को चाहने की आवश्यकता ही क्या रह जाती है। सभी लोग उसके रूप में ही हमारे अपने हो जाते हैं।

विशेष - उश् (वश्) धातु का अर्थ कामना, इच्छा करना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्रवायू (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, वा - गति करना, बहना, वे - बुनना, रचना करना), इमे (सर्वनाम) सुता (**सु -**

उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना)। उप (उपसर्ग) प्रयोभिः (**प्र =** प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग), **यु - संयोग-वियोग करना, मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना**) आ गतम् (आ-गम् - आना, गम् - जाना)। इन्दवो (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना**) वाम् (सर्वनाम) हि (अव्यय) उशन्ति (उश्-वश् - कामना, इच्छा करना)।। 56।।

117. मित्रम् हुवे पूतदक्षम्, वरुणम् च रिशादसम्।
धियम् घृताचीम् साधन्ता।। 57।।

मन्त्रार्थ - मित्रम् मित्र, पूतदक्षम् पवित्र दक्षता युक्त, वरुणम् वरणीय च और रिशादसम् हिंसा विनाशक, धियम् धारणाशक्ति, बुद्धि, घृताचीम् प्रकाशमान को साधन्ता साधक हुवे आह्वान करते हैं।। 57।

भावार्थ - मन्त्र में विविध विशेषणों से युक्त परमात्मा तथा उन्हीं विशेषणों-गुणों को धारण करने वाले लोगों का आह्वान करने की भावना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मित्रम् (**मिद् - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना**), पूतदक्षम् (**पू -पु - पवित्र होना या करना, दक्ष - समृद्ध होना, दक्ष होना, शीघ्र कार्य करना**), वरुणम् (वृ - वरण करना), च (अव्यय), रिशादसम् (रिश् - हिंसा करना, अद् - खाना, नष्ट करना) धियम् (**धी - धारण करना, बुद्धि होना**)। घृताचीम् (**घृ - गीला करना, तरडा देना, सींचना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, चमकना, प्रकाशित होना**), साधन्ता (**साध् - निर्णय करना, पूर्ण करना, सिद्ध करना, जीतना, यशस्वी होना, साधना करना**) हुवे (हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना)।। 57।।

118. दस्रा युवाकवः सुता,
नासत्या वृक्त बर्हिषः।
आ यातम् रुद्रवर्त्तनी।
तम् प्रत्नथा अयम् वेनः।। 58।।

मन्त्रार्थ- दस्रा दर्शनीय, रक्षक युवाकवः मिलकर बोलने वाले, सुता सुत,

उत्पन्न, ऐश्वर्यवान्, नासत्या असत्यहीन, नमनीय, वृक्त स्वीकार्य, मान्य बर्हिषः बड़ा, निवास रुद्रवर्त्तनी रुद्र के साथ वर्तमान, रुद्र बर्ताव युक्त आ यातम् प्राप्त हुआ। अयम् यह वेनो विद्वान् तम् उसको प्रत्नथा प्रसिद्ध करते हैं।। 58।।

भावार्थ - उपासकों को विविध दिव्यगुण तथा दिव्यगुणयुक्त परमात्मा की प्राप्ति होने का भाव है।

विशेष - दस धातु के अर्थ रक्षा, स्थापना, दर्शन करना, डसना, नष्ट करना हैं। यु धातु का अर्थ मिलाना, अलग करना तथा कु धातु का अर्थ शब्द करना है। अतः युवाकवः का अर्थ मिलकर बोलने वाले है। नस धातु के अर्थ वक्रगति तथा नम जाना हैं। इस प्रकार नासत्य का अर्थ नमनयोग्य होगा। गुणवान् होने से नासत्य इस योग्य हैं कि उनको नमन किया जाये। दूसरे अर्थ में वक्रता कुटिलता का अर्थ लेने पर उनको नमनशील बनाना भावार्थ ले सकते हैं। नासत्य शब्द को न असत्य के रूप में मानकर इसका अर्थ जिसमें असत्य न हो, अर्थात् असत्य हीन अथवा सत्यवान् अर्थ भी किया गया है। वृक् धातु का अर्थ लेना, ग्रहण करना, मान्य करना, स्वीकार करना तथा वृज् धातु का अर्थ त्याग करना होता है। अतः वृक्त का अर्थ ग्रहीत, मान्य, स्वीकृत अथवा त्यागी या त्याग किया हुआ भी हो सकता है। रुद्र का अर्थ रुदन करने वाला करुणाशील तथा दुष्टों को रुलाने वाला न्यायकारी परमात्मा है। प्रत्नथा पद का अर्थ विद्वानों ने पूर्व के समान भी किया है। प्रत्न का अर्थ पूर्व या पहले तथा था प्रत्यय उपमा या समानता के लिए प्रयोग होता है। विन धातु का अर्थ कान्ति होना, तथा वेन धातु का अर्थ ज्ञान होना, रक्षा करना है। वेनः का अर्थ विद्वान् है।

पदार्थ-मूल (निरुक्त) - दस्रा (**दस् - नष्ट होना, नष्ट करना, रक्षा करना, डसना, देखना**) युवाकवः (**यु - संयोग-वियोग करना, मिश्रित करना, मिलाप करना, अलग करना, कव - कविता करना, वर्णन करना, तस्वीरें खींचना**), सुता (**सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना**), नासत्या (नस - वक्रगति होना, नम जाना), वृक्त (वृक् - लेना, ग्रहण करना, मान्य करना, स्वीकार करना, वृज् - त्याग करना) बर्हिषः (**बर्ह् - श्रेष्ठ होना,**

प्रधान होना, प्रयास करना, उद्यम-व्यवसाय करना, खेलना, बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना), रुद्रवर्त्तनी (**रुद् -** रोना, रुलाना, करुण होना, **वृत् -** वर्तना, वर्तमान होना,रहना) आ यातम् (आ-या - आना, प्राप्त होना)। **अयम्** (सर्वनाम), **वेनो (वेन** - मिलाना, अलग करना, रक्षा करना, जाना, समझना, जानना, स्मरण करना, सारासार विचार करना, तारतम्य देखना, वाद्य यन्त्र बजाना, बाजा हाथ में लेना**) तम्** (सर्वनाम) **प्रत्नथा (प्रथ् - प्रसिद्ध होना, प्रसिद्ध करना, फैलना, फैलाना**)।। 58।।

119. विदत् यदि सरमा रुग्णम् अद्रेः,
महि पाथः पूर्व्यम् सध्र्यक्कः।
अग्रम् नयत् सुपदि अक्षराणाम्,
अच्छा रवम् प्रथमा जानती गात्।। 59।।

मन्त्रार्थ- यदि यदि, अगर, सरमा गति, विद्या अद्रेः अद्रि का रुग्णम् रुग्ण विदत् जाने, कः कौन सध्र्यक् सहगामी महि महान् पाथः पाथ, मार्ग, रक्षण पूर्व्यम् पहले (विदत् जाने)। अग्रम् आगे नयत् ले जाये सुपदि सुन्दर पद में अक्षराणाम् अक्षरों को, अच्छा अच्छे, श्रेष्ठ रवम् रव को, ध्वनि को, प्रथमा पहले जानती जानते हुए गात् जाते हैं, प्राप्त होते हैं।। 59।।

भावार्थ - विद्या से ही रुग्ण को जाना जा सकता है। इसके पश्चात् कहा गया है कि महान् पथ को कौन सहगामी या सहज्ञानी जान सकता है। स्पष्ट है कि जो विद्या के पथ पर चल रहा है, वही एक दिन जीवन लक्ष्य को पाने के महान् पथ को जान सकता है, प्राप्त कर सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि अक्षरों को सुन्दर पदों में अर्थात् भलीभाँति वर्णमाला तथा ध्वनि-विज्ञान के अनुसार जाने तथा श्रेष्ठ ध्वनि, अच्छे उच्चारण के साथ बोल सकें। रुग्ण का सामान्य अर्थ रोगी है। इसका भावार्थ पीड़ित तथा न्यूनताग्रस्त है।

विशेष - सध्र्यक् (सध्र्यक्) शब्द वैदिक उपसर्ग है। यह सह उपसर्ग का वैदिक रूप है। र्यक वैदिक प्रत्यय है। वैदिक उपसर्ग सध् में र्यक वैदिक

प्रत्यय जुड़ा है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यदि (अव्यय), सरमा (**सृ -** गति करना, **सरकना, चलना**) अद्रे (**दृ-द्रि-द्री - आदर करना, दृ - हिंसा करना, चीरना, तोड़ना, टुकड़े करना**) रुग्णम् (रुज् - रोग होना, कष्ट होना, हिंसा करना) विदत् (विद् - जानना), कः (सर्वनाम) सध्र्यक् (**मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना**), पाथः (**पथ् - जाना, उड़ाना, फेंकना, त्यागना**) पूर्व्यम् (पूर्व - पूर्ण करना, रहना, बुलाना)। अग्रम् (**अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना**), नयत् (नी-नय - ले जाना) सुपदि (पद् - चलना, जाना, जानना, पाना) अक्षराणाम् (**अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना, अ - नहीं, क्षर - संचलन होना, टपकना, झरना, बहना, क्षरण होना, अनुपयुक्त होना**), अच्छा अच्छे, श्रेष्ठ = अच्छा, श्रेष्ठ, सुन्दर, स्वच्छ (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)। रवम् (**रव् - जाना, जानना, पाना, प्रकाश करना, रु -** शब्द करना, जाना, चलना, जानना, पाना), प्रथमा (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना) जानती (ज्ञा-जान - जानना) गात् (गम् - जाना, जानना, पाना)॥59॥

120. नहि स्पशम् अविदन् अन्यम् अस्मात्,
वैश्वानरात् पुर एतारम् अग्नेः।
आ ईम् एनम् अवृधन् अमृता अमर्त्यम्,
वैश्वानरम् क्षैत्र-जित्याय देवाः॥60॥

मन्त्रार्थ- अस्मात्, इस वैश्वानरात् वैश्वानर अग्नेः अग्नि से पुर पहले एतारम् इस स्पशम् स्पश (प्रसिद्ध, स्पर्श) को अन्यम् अन्य ने नहि नहीं अविदन् जाना। आ ईम् अब अमृता अमृत ने एनम् इस अमर्त्यम् अमर्त्य को, देवाः देवों ने वैश्वानरम् वैश्वानर को क्षैत्र-जित्याय क्षैत्र-जित्य के लिए अवृधन् बढ़ाया॥60॥

भावर्थ - स्पश अर्थात् प्रसिद्ध परमात्मा को वैश्वानर अर्थात् विश्वव्यापी भावना वाले जन ही जान सकते हैं। स्वाभाविक रूप से ऐसे वैश्वानर ही अग्नि

अर्थात् समाज में अग्रणी होते हैं। अमृता ने अमर्त्य को अर्थात् दोनो ही मृत्यु से परे हैं। परमात्मा तो अमर अविनाशी है ही, उसके उपासक भी उसकी ही चेतना होने से अमर्त्य हैं, न मरने वाले हैं, मृत्यु से परे हैं। देवजनों का दायित्व है कि वैश्वानर को बढ़ायें। ऐसा करना क्षेत्र जीतने के लिए आवश्यक होता है। यहाँ स्पष्ट है कि क्षेत्र जीतने का अर्थ युद्ध में कोई देश-प्रदेश जीतना नहीं है, इसका आशय तो विश्व-परिवार की भावना से वैश्वानर बनकर व्यापक क्षेत्र में संस्कृति का प्रभाव-विस्तार करने से ही है।

विशेष - स्पश धातु के अर्थ अवरोध, स्पर्श, प्रसिद्ध, एकत्र करना होते हैं। क्षेत्र-क्षैत्र के अर्थ विस्तृत स्थान माने जाते हैं। क्षि धातु के अर्थ नष्ट होना, हिंसा करना, निवास करना हैं। इसका अर्थ निवास के लिए उपयुक्त स्थान मानना उचित है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अस्मात्, (सर्वनाम) वैश्वानरात् (विश्व - सब, सभी, नृ - ले जाना) अग्नेः (**अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना**), पुर (पुरो - पहले, अव्यय)। एतारम् (सर्वनाम) स्पशम् (**स्पश - गृहण करना, लेना, छूना, संयुक्त करना, जोड़ना, रोकना, अवरोध करना, प्रसिद्ध करना, एकत्र करना, गुम्फित करना, जोड़ना**) अन्यम् (विद् - जानना)। आ ईम् (अ - नहीं, मृ - मरना) एनम् (अ - नहीं, मृ - मरना), देवाः (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), वैश्वानरम् (विश्व - सब, सभी, नृ - ले जाना) क्षैत्र-जित्याय (क्षि - निवास करना, जि - जीतना) अवृधन् (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, बृध् - बढ़ना, बढ़ाना)॥60॥

(32) सूक्त 16

121. उग्रा विघनिना मृध, इन्द्राग्नी हवामहे।
ता नो मृडातः ईदृशे॥61॥

मन्त्रार्थ- उग्रा उग्र मृधः हिंसक विघनिना हनन करने वाले इन्द्राग्नी इन्द्र और अग्नि का हवामहे आह्वान करते हैं। ता वे दोनो नो हमे ईदृशे इस प्रकार मृडातः सुखी करें॥61॥

भावार्थ - इन्द्राग्नी का युगल रूप में आह्वान किया गया है। इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् तथा अग्नि अर्थात् अग्रणी, ज्ञानी की आवश्यकता युगल रूप में एक साथ होती ही है। ज्ञान के विना ऐश्वर्य तथा ऐश्वर्य के विना ज्ञान अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाते हैं। अतः परमात्मा के दोनो दिव्य स्वरूपों का आह्वान युगल रूप में किया गया है, तभी सुख प्राप्त होना सम्भव है। इसके लिए उग्र, हिंसक, हनन करने वालों का सामना करने के लिए हममें भी ऐसी क्षमता होना आवश्यक है। इसका भी सन्देश इस मन्त्र में स्पष्ट है।

विशेष - मृध धातु के अर्थ दबाना, हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, गीला करना, गीला होना हैं। घन - हन् धातु के अर्थ हिंसा करना, मार डालना हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उग्रा (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना)। मृधः (मृध - दबाना, हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, गीला करना, गीला होना) विघनिना (वि - विशेष (उपसर्ग), घन्-हन् - मारना, हिंसा करना) इन्द्राग्नी **(इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)** हवामहे (ह्वे - आह्वान करना)। ता (सर्वनाम) नो (सर्वनाम) ईदृशे (अव्यय)। मृडातः (मृड् - सुख होना)॥ 61॥

122. उप अस्मै गायता, नरः पवमानाय इन्दवे। अभि देवान् इयक्षते॥ 62॥

मन्त्रार्थ - नरः नर (लोग) अस्मै इस पवमानाय पवित्र करने वाले इन्दवे इन्दु के लिए उप समीप, निकट गायता गायन करते हुए देवान् देवों को अभि इयक्षते पूजते हैं॥ 62॥

भावार्थ - इन्दु अर्थात् ऐश्वर्यवान् परमात्मा पवित्र करने वाला है। उसके लिए निकट होकर गायन करना है। निकट होने का भाव स्वयम् की चेतना को उसके साथ लीन कर देना है। हमारी चेतना उसी का अंश है। एकाकार हो जाने पर भेद मिट जाता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर हम देवों अर्थात् उसकी दिव्य शक्तियों को पूजते हैं। पूजन का अर्थ सन्तुष्ट करना, सेवा करना होता है। जो प्राकृतिक शक्तियाँ हैं, उनका संरक्षण करना ही देवपूजा है। इसी

प्रकार देवजनों का भी पूजन करने की भावना अनेक स्थलों पर व्यक्त की गयी है।

विशेष - इयक्षसि क्रिया पद है, इसमें इयक्ष धातु स्पष्ट है। इयक्ष धातु यक्ष (पूजा करना, श्रेष्ठ होना) धातु का ही वैदिक रूप है। यक्ष तथा इयक्ष को स्वतन्त्र धातु मानने पर भी दोनो को समानार्थी माना जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - नरः (नृ - ले जाना) अस्मै (सर्वनाम) पवमानाय (पू - पवित्र करना) इन्दवे (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना) उप (उपसर्ग), गायता (गा-गै - गायन करना) देवान् (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना), अभि (उपसर्ग) इयक्षते (इयक्ष - पूजा करना, श्रेष्ठ होना)॥ 62॥

123. ये त्वा अहिहत्ये मघवन् अवर्द्धन्, ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ। ये त्वा नूनम् अनु मदन्ति विप्राः, पिब इन्द्र सोमम् सगणो मरुद्भिः॥ 63॥

मन्त्रार्थ- मघवन्, हे मघवन् (ऐश्वर्यवान्), ये जिन्होंने त्वा तुमको अहि-हत्ये अहि की हत्या में अवर्द्धन् बढ़ाया, ये जिन्होंने शाम्बरे शाम्बर में, ये जिन्होंने हरिवो हरिवान् गविष्टौ गवेषणा में। ये जो विप्राः विशेष पूर्ण करने वाले त्वा तुमको नूनम् निश्चय ही अनु मदन्ति आनन्दित करते हैं, इन्द्र हे इन्द्र, सोमम् सोम को मरुद्भिः मरुतों के सगणो गण सहित पिब पी लो॥ 63॥

भावार्थ - जो विभिन्न कार्यों में हमारी सहायता करते हैं, विभिन्न अवसरों पर हमें आनन्दित करते हैं, उनके साथ सामूहिक रूप से सोम पीना सम्भव हो पाता है। सोम शब्द भी सु धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ ऐश्वर्य होना तथा उत्पन्न करना होता है। इसी अर्थ में सोम परमात्म का वाचक है। सोम पीने का अर्थ है परमात्मा की चेतना को आत्मसात् करना, उसके साथ एकाकार हो जाना।

विशेष - शम्ब धातु का अर्थ मर्दन, ताडन, गर्जन करना होता है। इसी

अर्थ में मेघ (बादल) तथा जल को भी शम्बर कहा जाता है। शाम्बर का अर्थ है शम्बर सम्बन्धी अर्थात् मेघ या जल सम्बनधी कार्य। मेघ बनना, वर्षा होना, जल प्रवाहित होना तथा जल एकत्र होना जैसे कार्य शाम्बर कहे जाते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मघवन्, (मघ् - ऐश्वर्य होना), ये (सर्वनाम) त्वा (सर्वनाम) अहि-हत्ये (अह् = फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना, हन्- वध करना, मारना)। अवर्द्धन् (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वृध् - बढ़ना, बढ़ाना), शाम्बरे (शम्ब - मर्दन, ताडन, गर्जन करना), हरिवो (**हृ - हरण करना, ले जाना,** पहुँचाना, बलपूर्वक करना, **नाश करना, पाप काटना**) गविष्टौ (**गु - बोलना, मनन करना**)। विप्राः (वि - विशेष, प्रा - पूर्ण करना) नूनम् (अव्यय) अनु (मद् - आनन्द होना, आनन्द करना), इन्द्र (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना**), सोमम् (**सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना**) मरुद्भिः (मृ - मरना) सगणो गण सहित (स - सहित, साथ, गण् - गिनना, समूह बनाना) पिब (पी - पीना)॥ 63॥

124. जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय,
मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः।
अवर्द्धन् इन्द्रम् मरुतः चित् अत्र,
माता यत् वीरम् दधनत् धनिष्ठा॥ 64॥

मन्त्रार्थ- उग्रः उग्र जनिष्ठा जनों में निष्ठा रखने वाले, लोगों का ध्यान रखने वाले श्रेष्ठ जन तुराय शीघ्रता के लिए सहसे समर्थ (सहनयोग्य, सक्षम) होते हैं, मन्द्र स्तुत्य ओजिष्ठो अतिशय ओजयुक्त, बहुलाभिमानः बहुत अभिमान वाला इन्द्रम् इन्द्र को अवर्द्धन् बढ़ाया, मरुतः मरुतों की माता माता ने चित् ही अत्र यहाँ यत् जो धनिष्ठा धनी वीरम् वीर को दधनत् धारण किया॥ 64॥

भावार्थ - शीघ्रता से कार्य पूर्ण करने के लिए कुछ उग्रता भी आवश्यक है। लोगों से दूर रहकर एकाकी प्रयास तो सफल होने से रहे, अतः जनिष्ठ होना ही है, जनों से मिलकर रहना ही है। मरुतों की माता कहने का भाव है कि हम सब तो मरुत् अर्थात् मरणशील हैं, परन्तु मरुतों की माता अर्थात् जन्मदाता

परमात्मा मरणशील नहीं है। उसका स्मरण करें, उसका कार्य समझकर दायित्व निर्वाह करें तो कार्य ही ही जाता है।

विशेष - मन्द धातु के अर्थ स्तुति, प्रकाश, आनन्द, तुष्ट करना है। मन्द्र का अर्थ मन्दनीय, स्तुत्य, प्रकाशवान्, तोषणीय होते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उग्रः (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना) जनिष्ठा (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना), तुराय (तुर - शीघ्र चलना, तीव्र गति से चलना, शीघ्रता करना) सहसे (सह् - सहना, सहन करना, सक्षम होना) मन्द्र (**मन्द् -** आनन्द करना, स्तुति करना, तुष्ट करना, प्रकाशित होना) ओजिष्ठो (ओज - बल होना, तेज होना, ओज होना), बहुलाभिमानः (बहुल - बहुत, अभि - सब ओर, **मान - पूजा करना, सम्मान करना, श्रेष्ठ होना, शोध करना**) इन्द्रम् (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना**), अवर्द्धन् (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, वृध् - बढ़ना, बढ़ाना), मरुतः (मृ - मरना) माता (**मा - मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, शब्द करना**) चित् (अव्यय) अत्र (सर्वनाम) यत् (सर्वनाम) धनिष्ठा (**धन् - गति, शब्द, उत्पन्न करना**) वीरम् (**वीर् - वीर होना, वीरता दिखाना**) दधनत् (धा-दध् - धारण करना)॥ 64॥

(33) सूक्त 17

125. आ तु नः इन्द्र वृत्रहन्,
अस्माकम् अर्द्धम् आ गहि।
महान् महीभिः ऊतिभिः॥ 65॥

मन्त्रार्थ- आ समन्तात् सम्पूर्ण तु तो नः हमारे वृत्रहन् वृत्र (हिंसा) को मारने वाले महान् बड़े, पूज्य, महान् इन्द्र ऐश्वर्यवान् (परमात्मन्), अस्माकम् हमारे अर्द्धम् आधे को महीभिः महान् ऊतिभिः संरक्षण से आ गहि गति, ज्ञान, घना करें॥ 65॥

भावार्थ - कर्म स्वतन्त्रता तथा उपासना का महत्व दोनो ही समान रूप से इस मन्त्र में हमारी प्रेरणा हैं। हमारा आधा कार्य तो परमात्मा की कृपा से उसके संरक्षण से होगा, परन्तु यह तभी सम्भव होगा जब हम आधा कार्य स्वयम्

अपने प्रयास से करेंगे।

विशेष - गह धातु गति अर्थ वाली है। गति अर्थ में ज्ञान, प्राप्ति समाहित होते हैं। गह धातु का एक अर्थ घना होना भी है, इसी से गहन का अर्थ घना वन या जंगल भी होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ समन्तात् (उपसर्ग) तु (अव्यय) नः (सर्वनाम) वृत्रहन् (**वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना,** हन् - हिंसा करना) महान् (**मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना**), इन्द्र (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना**), अस्माकम् (सर्वनाम) अर्द्धम् (अर्ध - आधा, अर्द – मारना, बध करना)। महीभिः (**मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना**), ऊतिभिः (ऊ-अव् - रक्षा करना, पालन करना) आ (उपसर्ग) गहि (**गह्** - गहन होना, घना होना, डराना, हिंसा करना, जाना, जानना, पाना)।। 65।।

126. त्वम् इन्द्र विश्वा प्रतूर्तिषु,
अभि असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूः,
असि त्वम् तूर्य्य तरुष्यतः।। 66।।

मन्त्रार्थ- इन्द्र हे इन्द्र, त्वम् तुम विश्वा सब प्रतूर्तिषु तीव्रगतियों में, अभि स्पृधः स्पर्धा करने वाले असि हो। त्वम् तुम अशस्तिहा अहिंसक को गति, ज्ञान देने वाले जनिता उत्पन्न करने वाले विश्वतूः, सबको गति, ज्ञान, वृद्धि पूर्ण करने वाले तरुष्यतः तरने के इच्छुकों को तूर्य्य वृद्धि, पूर्ण करने वाले असि हो।।66।।

भावार्थ - जो भी तीव्रतम गति सम्भव है, वह परमात्मा की इच्छा से ही है। अतः तीव्रता में इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा से स्पर्धा कोई नहीं कर सकता है। इसे ध्यान में रखें तो हम उतावलेपन से बच सकते हैं, हमारी गति सन्तुलित तथा संयमित बनी रहेगी और हमारा जीवन शान्तिमय बना रहेगा।

परमात्मा अहिंसक को सहायता देता है, उसको पूर्णता प्रदान करता है। जो वास्तव में तरना चाहते हैं, पार जाना चाहते हैं, उनको भी उनके लक्ष्य में पूर्णता प्रदान करता है।

विशेष - प्रतूर्तिषु पद में तु या तुर् धातु होना सम्भव है। तु धातु का अर्थ गति, वृद्धि, पूर्ण, हिंसा करना है। तुर् धातु का अर्थ शीघ्र गति करना, शीघ्रता करना है। शस् धातु का अर्थ हिंसा करना, मारना, दुःख देना, काटना है। हा धातु का अर्थ गति करना, त्याग करना है। अशस्तिहा पद में कुछ विद्वानों ने शंस् (स्तुति, प्रशंसा करना) धातु का शस् रूप हो जाना तथा हन् (हिंसा करना, मारना) धातु का हा रूप हो जाना माना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्र (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना**), त्वम् (सर्वनाम) विश्वा (सर्वनाम) प्रतूर्तिषु (तु - गति, वृद्धि, पूर्ण, हिंसा करना, तुर - शीघ्र गति करना, शीघ्रता करना), अभि (उपसर्ग), स्पृधः (**स्पर्ध - स्पर्धा करना, जीतने की इच्छा करना, स्पृ - प्रीति करना, सेवा करना, चलना, पालना, जाना**) असि (अस् - होना)। त्वम् (सर्वनाम) अशस्तिहा (शस् - हिंसा करना, मारना, दुःख देना, काटना, हा - गति करना, त्याग करना है, शंस्-शस् - स्तुति, प्रशंसा करना, हन् - हिंसा करना, मारना) जनिता (जन् - उत्पन्न करना) विश्वतूः (विश्व - सब, सभी, तु - गति, वृद्धि, पूर्ण, हिंसा करना, तुर - शीघ्र गति करना, शीघ्रता करना) तरुष्यतः (तृ - तरना, तैरना, पार होना) तूर्य्य (तु - गति, वृद्धि, पूर्ण, हिंसा करना, तुर - शीघ्र गति करना, शीघ्रता करना) असि (अस् - होना)।। 66।।

127. अनु ते शुष्मम् तुरयन्तम्,
ईयतुः क्षोणी शिशुम् न मातरा।
विश्वाः ते स्पृधः श्नथयन्त,
मन्यवे वृत्रम् यत् इन्द्र तूर्वसि।। 67।।

मन्त्रार्थ- ते तुम्हारा शुष्मम् शुष्म (सुखाना) तुरयन्तम् शीघ्रता करने वाला, क्षोणी गति, ध्वनि करने वाली मातरा माता के न समान शिशुम् शिशु को

अनु ईयतुः अनुगमन करे। इन्द्र हे इन्द्र, ते तुम्हें विश्वाः सब स्पृधः स्पर्धायें श्नथयन्त मारने वाले मन्यवे मानते हैं, यत् जो वृत्रम् वृत्र (हिंसा) को तूर्वसि मारते हो।। 67।।

भावार्थ - परमात्मा इन्द्र शीघ्रता से सुखाने वाला है। वह हमारे दुःखों के सागर को, हमारे कष्ट के घावों को उसी तरह शीघ्रता से सुखा देता है जैसे माता अपने शिशु के पीछे शीघ्रता से भगती है। क्षोणी शब्द का प्रयोग यहाँ महत्वपूर्ण है। क्षुण् धातु का अर्थ गति करना तथा ध्वनि करना दोनो है। और ध्वनि भी ऐसी जिसका कोई विशेष महत्वपूर्ण या गम्भीर अर्थ नहीं होता है। माता खोये हुए या कष्ट में पड़े हुए या रोते हुए शिशु के पीछे भागती है तो कुछ बोलते हुए भागती है, शिशु को पुकारते हुए भागती है, परन्तु उन शब्दों का अर्थ महत्वपूर्ण नहीं होता है। महत्वपूर्ण होती है उसकी भावना, उसका प्रेम।

विशेष - क्षु धातु के अर्थ गति करना, शब्द करना हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ते (सर्वनाम) शुष्मम् शुष्म (शुष् - सुखाना) तुरयन्तम् शीघ्रता करने वाला (तुर - शीघ्र गति करना, शीघ्रता करना), क्षोणी (क्षु - शब्द करना, जाना, जानना, पाना) मातरा (**मा - मान करना, तोलना, तुलना करना, मापना, शब्द करना**) न (अव्यय) शिशुम् (शिष् - शेष रखना, बचाना, प्रयोजन करना) अनु ईयतुः (अनु - पीछे, ई - चलना, जाना)। इन्द्र (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना**), ते (सर्वनाम) विश्वाः (सर्वनाम) स्पृधः (**स्पृध्-स्पर्ध - स्पर्धा करना, जीतने की इच्छा करना, स्पृ - प्रीति करना, सेवा करना, चलना, पालना, जाना**) श्नथयन्त (**श्नथ - हिंसा करना, मारना**) मन्यवे (मन् - जानना, समझना, मान्य करना), यत् (सर्वनाम) वृत्रम् (**वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना**), तूर्वसि (तूर्व - हिंसा करना, मारना)।। 67।।

128. यज्ञो देवानाम् प्रत्येति सुम्नम्,
आदित्यासो भवता मृडयन्तः।
आ वो अर्वाची सुमतिः ववृत्यात्,

अंहोः चित् या वरिवोवित्तरा असत्।। 68।।

मन्त्रार्थ- देवानाम् देवों का यज्ञो यजन सुम्नम् सुविचार अथवा सृजन, रचनाशीलता को प्रत्येति प्राप्त होता है, आदित्यासो आदित्यगण मृडयन्तः सुखकारी भवता हों। आ वो तुम्हारा अर्वाची हिंसक सुमतिः सुमति, सुबुद्धि ववृत्यात् वर्तमान हो, प्राप्त करे। या जो अंहोः कुटिल चित् भी वरिवोवित्तरा श्रेष्ठ वित्त (विद्या) वाला असत् हो गया।। 68।।

भावार्थ - यजन (यज् धातु) का अर्थ देवपूजा, संगतिकरण, दान करना है। दिव्य भावना वाले जन यदि यजन करेंगे तो सुविचार तथा सृजन ही होगा। किसी कार्य के यजन होने का यही प्रमाण है। इससे हिंसक स्वभाव वाले को भी सुमति प्राप्त होगी तथा कुटिल स्वभाव वाले भी श्रेष्ठ विद्या प्राप्त कर सकेंगे, उनका जीवन भी सुधर सकेगा।

विशेष - सुम्नम् पद में सु उपसर्ग मानें या सु धातु, दोनो स्वीकार्य हैं। मन का म्न रूप वैदिक प्रयोग है। सुमनम् के स्थान पर सुम्नम् पद का प्रयोग हुआ है। ववृत्यात् पद में वृत् धातु है, इसका अर्थ वर्तना, वर्तमान होना है। गति अर्थ वाली धातु होने से ज्ञान तथा प्राप्त करें अर्थ भी स्वीकार्य है। अंह् धातु के अर्थ प्रकाश होना, चमकना के साथ ही कुटिल गति करना, कलुष होना भी है। अतः अंहस् शब्द का अर्थ पाप भी होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - देवानाम् (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), यज्ञो (**यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना**) सुम्नम् (**सु - उत्तम श्रेष्ठ (उपसर्ग), मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना**) प्रत्येति (प्रति एति, इ - जाना), आदित्यासो (**अदिति, अ - नहीं, दी - क्षय होना**), मृडयन्तः (**मृड - सुखी होना, सुख देना**) भवता (भू - होना)। वो (सर्वनाम) अर्वाची (**अर्व** - गति करना, जाना, चलना, जानना, पाना, पहुँचना, हिंसा करना) सुमतिः (सु - सुन्दर, अच्छा, **मन - मनन करना, जानना, समझना, स्वीकार करना, अभ्यास करना, स्थिर होना, गर्व होना**) आ ववृत्यात् (**वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा**

करना)। या (सर्वनाम) अंहोः (**अंह् -** प्रकाशित होना, चमकना, कुटिल गति करना, मथना) चित् (अव्यय) वरिवोवित्तरा (**वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वित्त - दान करना, धर्म में व्यय करना**) असत् (अस् - होना)॥ 68॥

129. अदब्धेभिः सवितः पायुभिः त्वम्,
शिवेभिः अद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्य जिह्वः सुविताय नव्यसे,
रक्षा माकिः नो अघशंस ईशत॥ 69॥

मन्त्रार्थ- सवितः हे सविता, उत्पन्न कर्ता, त्वम् तुम अद्य आज अदब्धेभिः अहिंसा शिवेभिः कल्याणकरी पायुभिः पालन-रक्षण द्वारा नो हमारे गयम् गय (गायन, वाणी, गति, ज्ञान) को परि सब ओर पाहि पालन करो, रक्षा करो। हिरण्य-जिह्वः प्रकाशयुक्त जिह्वा वाले सुविताय सुन्दर विशेष रक्षण-पालन करने वाले नव्यसे नवीनता के लिए रक्षा रक्षा करो। अघशंस पाप का प्रशंसक (पापी) माकिः कोई नहीं नो हमें ईशत शासन करे॥ 69॥

भावार्थ - परमात्मा की कृपा होगी तो आज ही संरक्षण मिलेगा। उसका संरक्षण पाने के लिए अहिंसक तथा कल्याणकारी हमें भी होना होगा। यदि हम ऐसा करते हैं तो हमें आज ही अर्थात् तत्काल ईश्वर का संरक्षण प्राप्त होता है, उसके लिए लम्बी प्रतीक्षा नहीं करनी पडती है। न इस जन्म में लम्बी प्रतीक्षा करनी है, और न आगामी जन्मों की कल्पना कर सन्तोष करने की आवश्यकता है। हिरण् धातु का अर्थ प्रकाश करना, शब्द करना हैं। हिरण्य-जिह्वा का अर्थ प्रकाशित वाणी वाले है। जिनकी जिह्वा में प्रकाशित वाणी है, ऐसे लोग हिरण्य-जिह्वा होते हैं।

विशेष - गय शब्द में गै (शब्द, ध्वनि करना, गायन करना) अथवा गम् (जाना) धातु मानना उचित है। गम् धातु गति अर्थ वाली होने से इसमें ज्ञान तथा प्राप्ति अर्थ भी माने जा सकते हैं। अतः गय शब्द के अर्थ गायन, वाणी, गति, ज्ञान होंगे। विद्वानों ने इसका भावार्थ घर तथा धन भी किया है जो इन सबका

आधारभूत साधन कहा जा सकता है। सुविताय पद में सु-वि-ताय के रूप में सु तथा वि उपसर्ग तथा ताय धातु है। ताय धातु का अर्थ रक्षा करना, पालन करना, तानना, फैलाना हैं। सुविताय का अर्थ सुन्दर विशेष रक्षण-पालन करने वाले है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सवितः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना), त्वम् (सर्वनाम) अद्य (अव्यय) अदब्धेभिः (दभ् - निन्दा करना) शिवेभिः (शिव् - कल्याण करना) पायुभिः (पा - पालन, रक्षण करना) नो (सर्वनाम) गयम् (गै - शब्द, ध्वनि करना, गायन करना, गम् - जाना) परि (उपसर्ग) पाहि (पा - पालन, रक्षण करना)। हिरण्य (**हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना, जिह् - जाना, चलना, जानना, पाना**) सुविताय (सु - सुन्दर, अच्छा, वि - विशेष, ताय - रक्षा करना, पालन करना, तानना, फैलाना) नव्यसे (नव् - नूतन होना, नवीन होना, नया होना) रक्षा (रक्षा करना)। अघशंस (**अघ् - पाप करना, अपराध करना, गिरना, शंस् - स्तुति करना, प्रशंसा करना**) माकिः (अव्यय)। नो (सर्वनाम) ईशत (ईश् - शासन करना)॥ 69॥

130. प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वाम्,
अध्वर्युभिः मधुमन्तः सुतासः।
वह वायो नियुतो याहि अच्छा,
पिबा सुतस्य अन्धसो मदाय॥ 70॥

मन्त्रार्थ- मधुमन्तः मधुरता युक्त सुतासः ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न हुए (प्रजा, सृष्टि, प्रकृति) शुचयो पवित्र वाम् तुम दोनो को प्र प्रकृष्ट वीरया वीरता (और) अध्वर्युभिः अहिंसकों द्वारा दद्रिरे समादृत किया। वायो हे वायु, हे प्रवाहमान, नियुतो नियुक्त, वह वहन करो। अच्छा, सुन्दर, स्वच्छ याहि जाओ। सुतस्य सुत के अन्धसो अन्धकार को मदाय आनन्द के लिए पिबा पियो॥ 70॥

भावार्थ - मधुरता, पवित्रता जैसे सद्गुणों वाले सज्ञन अहिंसकों से साथ ही प्रकृष्ट वीरों द्वारा समादृत-सम्मानित होते हैं। जिस दायित्व के लिए हमको नियुक्त किया गया है, हमें उसको वहन करना है। अच्छे मार्ग पर जाना है। हम

इतना करें तो परमात्मा भी अपने सुत अर्थात् अपने से उत्पन्न हमारे आनन्द के लिए अन्धकार को पी लेता है, हमारे मार्ग के अन्धकार तथा बाधाओं को दूर कर देता है।

विशेष - सुतासः पद में सु धातु स्पष्ट है। इससे इसका अर्थ ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न हुए (प्रजा, सृष्टि, प्रकृति) है। सु धातु का अर्थ आसवन करना, मथना, निचोड़ना भी होता है। इससे सुतासः का अर्थ आसवन किये गये भी किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मधुमन्तः **(मध - मधुर होना, मीठा होना)**, सुतासः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना), शुचयो **(शुच् - शुद्धि करना, शुद्ध होना)**। वाम् (सर्वनाम) प्र (उपसर्ग) वीरया **(वीर् - वीरता दिखाना, वीर होना)** अध्वर्युभिः (ध्वृ - हिंसा करना) दद्रिरे (दृ - आदर करना)। वायो **(वा - गति करना, बहना, पवन की भाँति चलना, गन्ध होना)**, नियुतो (नि - निश्चित, निरन्तर), वह (वह् - वहन करना, ले जाना)। अच्छा (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)। याहि (या - जाना)। सुतस्य (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना), अन्धसो **(अन्ध - नेत्र बन्द करना, अन्धकार होना, अन्** - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना) मदाय (मद् - आनन्द होना) पिबा (पी-पिब् - पीना)।। 70 ।।

(34) सूक्त 18

131. गाव उप अवत अवतम्,
मही यज्ञस्य रप्सुदा।
उभा कर्णा हिरण्यया।। 71 ।।

मन्त्रार्थ- मही महान् (पूज्य) यज्ञस्य यज्ञ की रप्सुदा स्पष्ट वाणी देने वाले अवतम् रक्षित गाव शब्दों या वचनों की उप समीप हिरण्यया हिरण्यमय उभा दोनों कर्णा कानों से अवत रक्षा करो ।। 19 ।।

भावार्थ - यजन की स्पष्ट वाणी देने वाले, रक्षा की गयी वाणी की हिरण्यमय दोनो कानों से निकट रक्षा करो। स्पष्ट वाणी बोलने की क्षमता मनुष्य

को परमात्मा का विशेष उपहार है। परमात्मा से प्रार्थना है कि हमारे निकट, हमारे दोनो कानों से उसकी रक्षा करे। स्पष्ट वाणी की रक्षा कानों से ही हो सकती है, हम सुनकर ही स्पष्ट बोलना सीख सकते हैं, स्पष्ट उच्चारण की रक्षा कर सकते हैं। इसके लिए कानों को हिरण्यमय होना चाहिए। हिरण धातु का अर्थ है दीप्त होना, शब्द करना। हिरण्य का अर्थ हुआ दीप्त शब्द। कानों को ऐसा होना चाहिए कि वे दीप्त वचन सुनें, अनुचित निन्दनीय वाणी न सुनें।

विशेष - रप धातु का अर्थ है स्पष्ट बोलना। पप्सुदा का अर्थ हुआ स्पष्टवाणी देने वाले। अव धातु अथवा अवति, अवते, आवयति क्रिया-रूपों के अर्थ बहुत व्यापक हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मही (मह् - पूज्य होना) यज्ञस्य (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना) रप्सुदा (रप - स्पष्ट बोलना) अवतम् (अव - रक्षा करना) गाव (गु - शब्द करना) उप (उपसर्ग) हिरण्यया (**हिरण - प्रकाश, शब्द होना**) उभा (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। कर्णा (श्रु - सुनना, कर्ण - सुनना, दूर ले जाना, बेधना, छेदना) अवत (अव - रक्षा करना)।। 71।।

132. काव्ययोः आजानेषु, क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे।
रिशादसा सधस्थ आ।। 72 ।।

मन्त्रार्थ- काव्ययोः काव्यों के आजानेषु उत्पत्तियों में, दक्षस्य दक्ष के दुरोणे दुरोण (ज्ञान, गमन, प्रप्ति) में रिशादसा हिंसा-भक्षकों के सधस्थ साथ आ क्रत्वा करें।। 72।।

भावार्थ - हमारे कर्म, संगमन उन स्थानों पर हों जहाँ काव्यरचना हो, दक्ष अर्थात् कुश ल लोगों का ज्ञान हो, हिंसा का निवारण करने वालों का साथ हो।

विशेष - द्रू-द्रूण धातु का अर्थ गति, ज्ञान, प्राप्ति के साथ हिंसा करना भी है। दुरोण शब्द इस धातु से निष्पन्न वैदिक रूप है। इसका अर्थ सामान्यतः घर तथा विद्यास्थान आदि के रूप में किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - काव्ययोः **(कव - कविता करना, वर्णन**

करना, चित्र खींचना), आजानेषु (**आ - समन्तात्, सम्यक्, ज्ञा-जा - जानना)**। दक्षस्य (**दक्ष - समृद्ध होना, दक्ष होना, शीघ्र कार्य करना**) दुरोणे (द्रू-द्रूण - गति, ज्ञान, प्राप्ति करना, हिंसा करना) रिशादसा **(रिश्-रिष् - हिंसा करना)** सधस्थ (सध = साथ (अव्यय), सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। आ - समन्तात् (उपसर्ग) क्रत्वा करें (कृ - करना)॥ 72॥

133. दैव्यौ अध्वर्यू आ गतम्,
रथेन सूर्य-त्वचा।
मध्वा यज्ञम् सम् अञ्जाथे।
तम् प्रत्नथा अयम् वेनः॥ 73॥

मन्त्रार्थ- दैव्यो दिव्य अध्वर्यू अहिंसक सूर्य-त्वचा सूर्य की त्वचा (सूर्य - उत्पन्नकर्ता, ऐश्वर्यवान् (परमात्मा), त्वचा - आच्छादन) रथेन रथ द्वारा आ गतम् आ गये। मध्वा मधु से यज्ञम् यजन को सम् सम्यक् रूप से अञ्जाथे अञ्जन (स्वच्छ, प्रकाशित) करते हो। अयम् यह वेनः वेन विद्वान् देवानाम् देवों के तम् उस चित्रम् चित्र को प्रत्नथा प्रसिद्ध करते हैं॥ 73॥

भावार्थ - दिव्य परमात्मा सबको उत्पन्न करने तथा ऐश्वर्य देने वाला है, वह त्वचा अर्थात् आच्छादन, ग्रहण रूपी रथ से आता है। वह सम्पूर्ण सृष्टि को आच्छादित किये हुए है, ग्रहण किये हुए है। यही स्वरूप उसका आगमन है। वह सर्वत्र व्याप्त है, उसे कहीं आना-जाना तो है ही नहीं। उसकी सर्वव्यापकता का अनुभव हो जाये यही उसका आना अर्थात् ईश्वर का प्राप्त होना है।

विशेष - प्रत्नथा पद का अर्थ विद्वानों ने पूर्व के समान भी किया है। प्रत्न का अर्थ पूर्व या पहले तथा था प्रत्यय उपमा या समानता के लिए प्रयोग होता है। त्वच् धातु का अर्थ आच्छादित करना, ग्रहण करना होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - दैव्यो (दिव्, देव् = तेजस्वी होना, विद्वान होना)। अध्वर्यू (ध्वृ = हिंसा करना)। आगतम् (गम् - जाना, आगम् - आना)। रथेन (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। सूर्य (सु - उत्पन्न करना)। त्वचा (त्वच - आच्छादित

करना, लपेटना, ढांकना)। मध्वा (मधु - मीठा)। यज्ञम् (यज - देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना)। सम् अञ्जाथे (सम् - सम्यक् रूप से, अंज - स्वच्छ करना, प्रकाशित होना)। तम् (सर्वनाम)। प्रत्नथा (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। अयम् (सर्वनाम)। वेनः (वेन - रक्षा करना, वेन - जाना, समझना, जानना, स्मरण करना, याद करना, सारासार विचार करना)। चित्रम् (चित् - चेतन करना या होना, विचार करना, चित्र - चित्र बनाना, आश्चर्य करना)। देवानाम् (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)॥ 73॥

134. तिरश्चीनो विततो रश्मिः एषाम्,
अधः स्वित् आसीत् उपरि स्वित् आसीत्।
रेतोधा आसन् महिमानः आसन्,
स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्॥ 74॥

मन्त्रार्थ - एषाम् इनका तिरश्चीनो तिरछा विततो वर्णन-विस्तार रश्मिः किरण अधःस्वित् नीचे भी आसीत् था, उपरि स्वित् ऊपर भी आसीत् था। रेतोधा रेतस् (ज्ञान) को धारण करने वाला आसन् था। महिमानः महिमावान् आसन् था, स्वधा स्वयम् धारण करने वाला परस्तात् परे प्रयतिः प्रयत्न करने वाला अवस्तात् रक्षा करे॥ 74॥

भावार्थ - इनकी विस्तार रूपी किरणें ऊपर-नीचे सभी ओर व्याप्त हो रहीं थीं। एक किरण सीधी रेखा में चलती है, परन्तु किरण-पुञ्ज में किरणें परस्पर तिरछी दिशाओं जाती हैं, तभी वे ऊपर-नीचे सभी दिशाओं में विस्तार पाती हैं। इसी प्रकार से उनका (परमात्मा तथा उपासक विद्वानों का) वर्णन विस्तार भी सभी ओर फैलता है। परमात्मा स्वधा है, स्वयम् धारण करने वाला है, उसे कोई अन्य धारण नहीं करता है। वह हमारी अपेक्षाओं-कल्पनाओं से भी परे प्रयत्नों-उपायों से हमारी रक्षा करता है॥ 74॥

विशेष - रि धातु गति अर्थ वाली है, अतः इसका अर्थ ज्ञान, गमन, प्राप्ति है। री धातु का अर्थ गति के साथ ही झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना

भी हैं।। 74 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - एषाम् (सर्वनाम) तिरश्चीनो (अव्यय)। विततो **(वि - विशेष, तन् - विस्तार करना, वर्णन करना, शब्द करना, आश्रय देना)** रश्मिः **(रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)** अधःस्वित् (अधः = नीचे, अव्यय)। आसीत् (अस् - होना), उपरि स्वित् (सर्वनाम, अव्यय)। रेतोधा (**रि - जाना, जानना, पाना, हिंसा करना,** री - गति करना, झरना-टपकना, लेना, शब्द करना, सुनना) आसन् (अस् - होना), महिमानः **(मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)**, आसन् (अस् - होना), स्वधा (स्व - स्वयम्, अपना, धा - धारण करना) परस्तात् (सर्वनाम)। प्रयतिः (यत् - यत्न करना) अवस्तात् (अव - रक्षा करना)।। 74 ।।

135. आ रोदसी अपृणत्,
आ स्वः महत् जातम्,
यत् एनम् अपसो अधारयन्।
सो अध्वराय परि णीयते कविः,
अत्यो न वाजसातये चनोहितः ।। 75 ।।

मन्त्रार्थ - रोदसी रुदन (करुणा) आ अपृणत् भर गयी, स्वः ऐश्वर्य महत् महान् आ जातम् उत्पन्न हुआ। यत् क्योंकि एनम् इसको अपसो अपः ने अधारयन् धारण किया। सो वह कविः कवि चनोहितः शब्दकर्ता (विद्वान्), विश्वास तथा स्मरण करने वालों का हित करने वाला अध्वराय अहिंसक के लिए अत्यो अत्य (सतत गतिशील) न के समान वाजसातये विद्यावान् के लिए परि णीयते ले जाता है।। 75 ।।

भावार्थ - रोदसी अर्थात् रुदन अथवा करुणा करने वाला। परमात्मा रुद्र है। वह अपने उपसक के साथ हमारे लिए व्यावहारिक रूप से युगल रूप मे रोदसी है। उसकी उपासना से हमारे जीवन में करुणा भर जाती है।

विशेष - चन धातु के अर्थ शब्द करना, विश्वास करना, स्मरण करना आदि हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - रोदसी (रुद - रुदन् करना, करुणा करना) आ (उपसर्ग), अपृणत् (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, पृ - पूर्ण करना, भरना), स्वः (सु - ऐश्वर्य होना) महत् **(मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना)**, आ जातम् (जन् - उत्पन्न होना)। यत् (अव्यय) एनम् (सर्वनाम) अपसो **(अप - पालन करना,** अधारयन् धारण किया (धृ - धारण करना)। सो (सर्वनाम) कविः **(कव - कविता करना, वर्णन करना, चित्र खींचना)**, चनोहितः (**चन् - स्मरण करना, शब्द करना, विश्वास करना, मिलाना, अलग करना, हिंसा करना, हि - जाना, जानना, पाना, हित करना**) अध्वराय (ध्वृ = हिंसा करना)। अत्यो (अत् - निरन्तर चलना, सतत गमन करना) न (अव्यय) वाजसातये (**वाज् - गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना**) परि णीयते (नी - ले जाना)।।75 ।।

(35) सूक्त 19

136. उक्थेभिः वृत्रहन्तमा,
या मन्दाना चित् आ गिरा।
आङ्गूषैः आविवासतः ।। 76 ।।

मन्त्रार्थ- या जो आ गिरा वाणी द्वारा मन्दाना आनन्दित करते हुए चित् ही उक्थेभिः वाणियों द्वारा वृत्रहन्तमा वृत्र (हिंसा) का हनन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ, आङ्गूषैः वाणियों द्वारा आविवासतः वास करते हैं।। 76 ।।

भावार्थ - इसमें वाणी या शब्दों का महत्व प्रतिपादित है। परमात्मा की वाणी हम सुनें, यह महत्वपूर्ण है। इसके लिए निर्मल चित्त होकर उसके साथ एकाकार होना होता है। हिंस का हनन या प्रतिकार वाणी द्वारा करना ही सर्वश्रेष्ठ है। सर्वव्यापी परमात्मा का वास व्यावहारिक रूप से हमारे जीवन में सुन्दर वाणी अर्थात् मधुर वाणी तथा स्तुतियों द्वारा ही अनुभव होता है।

विशेष - वाणी या शब्द करने के लिए तीन पदों उक्थेभिः, गिरा, आङ्गूषैः का प्रयोग किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - या (सर्वनाम) आ (उपसर्ग), गिरा (**गृ - सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना**) मन्दाना (**मन्द् -** आनन्द करना, स्तुति करना, तुष्ट करना, प्रकाशित होना) चित् (अव्यय) उक्थेभिः (उक्-वच् - कहना, बोलना) वृत्रहन्तमा **(वृ - वरण करना, आच्छादन करना, स्वीकार करना, वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना, हन् - मारना, हिंसा करना),** आङ्गूषैः (अङ्ग् - जाना, जानना, पाना, शब्द करना) आविवासतः (आ- **समन्तात्, सम्यक् रूप से, भलीभाँति, वि - विशेष, वस् - बसना, रहना, निवास करना**)।। 76।।

137. उप नः सूनवो गिरः, शृण्वन्तु अमृतस्य ये।
सुमृडीका भवन्तु नः।। 77।।

मन्त्रार्थ- ये जो अमृतस्य अमृत (अविनाशी) के सूनवो सन्तान, नः हमारे गिरः वाणियों को उप समीप शृण्वन्तु सुनें। नः हमारे लिए सुमृडीका सुखकारी भवन्तु हों ।। 77।।

भावार्थ - हम सभी अमृत अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हैं, उसके सन्तान हैं। इसी भावना के साथ दूसरों से हम अपनी बात कहते हैं और इसी भावना के साथ सुनने की अपेक्षा भी की जाती है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ये (सर्वनाम) अमृतस्य (अ - नहीं, मृ - मरना) सूनवो (सू - जन्म देना, उत्पन्न करना), नः (सर्वनाम) गिरः (**गृ - सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना**) उप (उपसर्ग) शृण्वन्तु (शृ - सुनना)। सुमृडीका (सु - अच्छा, सुन्दर, मृड् - सुख होना) भवन्तु (भू - होना)।। 77।।

138. ब्रह्माणि मे मतयः शम् सुतासः,
शुष्म इयर्त्ति प्रभृतो मे अद्रिः।
आ शासते प्रति हर्यन्ति उक्था,
इमा हरी वहतः ता नो अच्छ।। 78।।

मन्त्रार्थ- मे मेरी मतयः मतियाँ (बुद्धि, विवेक, मननशक्ति) ब्रह्माणि ब्रह्ममय, सुतासः सन्तान, ऐश्वर्य शम् शान्तिमय, मे मेरा अद्रिः भोजन प्रभृतो परिपूर्म, शुष्म सुखाने वाला (परमात्मा) इयर्त्ति प्राप्त होता है। आ शासते शासन करता है, उक्था वाणी प्रति हर्यन्ति कामना करते हैं, इमा ये हरी हरण करने वाले वहतः वहन करते हैं, ता वह नो हमारे लिए अच्छ सत्य करो, निर्मल करो।। 78।।

भावार्थ - हमारी मति ब्रह्म में रत रहे, परिवार तथा संसाधन भी समुचित रूप से उपलब्ध हों, भोजन परिपूर्ण रहे। यह कामना करना उचित है तथा स्वाभाविक भी। इससे सुखमय जीवन के साथ उपासना भी सहजता से सम्भव है। ब्रह्ममय मति के साथ उपासना से परमात्मा प्राप्त होता है। परमात्मा शुष्म अर्थात् सुखाने वाला है। वह हमारे दुःखों के सागर को, हमारे कष्ट के घावों को शीघ्रता से सुखा देता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मे (सर्वनाम) मतयः (मन् - मनन करना, विचार करना) ब्रह्माणि (**बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना**), सुतासः(**सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना**) शम् (**शम् - शमन करना, शान्त करना, प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, विचार करना, सहन करना**), अद्रिः **(अद् - खाना, ग्रहण करना, आत्मसात् करना, नष्ट करना)** प्रभृतो (प्र - प्रकृष्ट, भृ - भरण करना) शुष्म (शुष् - सुखाना) इयर्त्ति (इ - जाना)। आ (उपसर्ग) शासते (शास् - शासन करना), उक्था (उक्-वच् - बोलना, कहना) प्रति हर्यन्ति (प्रति - प्रतिकार, सम्बन्ध में, विषय में, प्रत्येक में (उपसर्ग), हर्य् - चलना, जाना, इच्छा करना, चाहना, प्रकाशित होना, सूखना, हृ - प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना)। इमा (सर्वनाम) हरी (हृ - हरण करना, ले जाना) वहतः (वह् - वहन करना, ले जाना), ता वह (सर्वनाम) नो (सर्वनाम) अच्छ (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)।। 78।।

139. अनुत्तम् आ ते मघवन् नकिः नु,
न त्वावान् अस्ति देवता विदानः।

न जायमानो नशते न जातो,
यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ।। 79 ।।

मन्त्रार्थ - मघवन् हे ऐश्वर्यवान्, अनुत्तम् अप्रेरित, आ - समन्तात, ते तुम्हारा नकिः कोई नु निश्चय ही त्वावान् तुम्हारे समान देवता देवत्व विदानः विद्वान् न नहीं अस्ति है। न नहीं जातो उत्पन्न हुआ, न नहीं जायमानो उत्पन्न होता हुआ, नशते अदृश्य होता है, प्रवृद्ध हे प्रवृद्ध (प्रकृष्ट बढ़े हुए) यानि जो करिष्या करोगे, कृणुहि करो ।। 79 ।।

भावार्थ - परमात्मा किसी से प्रेरित नहीं होता है, सबको प्रेरित करता अवश्य है। अतः हम कहते हैं कि जो कुछ करोगे, वह करो क्योंकि उसकी इच्छा, उसकी व्यवस्था ऋत ही महत्वपूर्ण है। किसी का देवत्व उसके समान नहीं है, कोई उसके समान विद्वान् नहीं हो सकता है। वह हमारे लिए अदृश्य है। उपासना से हम उसकी अनुभूति कर सकते हैं।

विशेष - अन्य मन्त्र में कहा गया है कि जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, जो उत्पन्न हो रहा है, जो उत्पन्न होने वाला है, वह सबकुछ परमात्मा ही है। परन्तु वह अपने शुद्ध स्वरूप में न तो उत्पन्न हुआ है और न ही उत्पन्न होने वाला है। भले ही विभिन्न रूपों में जो कुछ उत्पन्न होता है, वह भी परमात्म की ही स्वरूप होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मघवन् (मघ् - ऐश्वर्य होना), अनुत्तम् (अ - नहीं, नुद् - प्रेरित करना), आ (उपसर्ग) ते (सर्वनाम) नकिः (अव्यय) नु (निपात, अव्यय) त्वावान् (सर्वनाम) देवता **(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)**। विदानः (विद् - जानना) न (अव्यय) अस्ति (अस् - होना)। जातो (जन् - उत्पन्न होना), जायमानो (जन् - उत्पन्न होना), नशते (नश् - नष्ट होना, अदृश्य होना), प्रवृद्ध (प्र - प्रकृष्ट, वृध् - बढना) यानि (सर्वनाम) करिष्या (कृ - करना), कृणुहि (कृ - करना) ।। 79 ।।

140. तत् इत् आस भुवनेषु ज्येष्ठम्,
यतो जज्ञे उग्रः त्वेष-नृम्णः ।

सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रून्,
अनु यम् विश्वे मदन्ति ऊमाः ।। 80 ।।

मन्त्रार्थ - तत् वह **इत्** ही **भुवनेषु** भुवनों में **ज्येष्ठम्** बडा **आस** है, **यतो** जिससे **उग्रः** उग्र **त्वेष-नृम्णः** तेजोमय ज्ञान वाले **जज्ञे** उत्पन्न हुए। **सद्यो** तत्काल **जज्ञानो** उत्पन्न **शत्रून्** शत्रुओं को **निरिणाति** शब्द करता है, चूर्ण करता है। **यम्** जिसको **विश्वे** सभी **ऊमाः** विश्वास, वाणी सम्पन्न **अनु** अनुसार **मदन्ति** आनन्दित करते हैं। 80 ।।

भावार्थ - सभी भुवनों में, जो कुछ हुआ है, सबमें ज्येष्ठ अर्थात् सबसे बड़ा तो परमात्मा ही है। सब कुछ उससे ही उत्पन्न है तो तेजोमय विद्या वाले भी उससे ही उत्पन्न हैं। उनका विशेष उल्लेख यहाँ विशेष महत्व की दृष्टि से है। तत्कल उत्पन्न शत्रु को वाणी देने से आशय विचारपूर्वक समझाना है, चूर्ण करना, नष्ट करना अन्तिम उपाय है।

विशेष - त्विष् धातु का अर्थ प्रकाश होना है। नृ धातु का अर्थ गति करना, चलना, ले जाना है। नृ धातु गति अर्थ वाली होने से इसका अर्थ ज्ञान, गमन, प्राप्ति होता है। अतः नृम्णः का अर्थ ज्ञान, विद्या भी है। इस प्रकार त्वेष-नृम्णः का अर्थ प्रकाशित विद्या वाला अथवा तेजोमय ज्ञानयुक्त अथवा ज्ञान के तेज से सम्पन्न है। रिण धातु का अर्थ शब्द करना तथा चूर्ण करना या होना है। निरिणाति का अर्थ शब्द करता है अथवा चूर्ण करता है, ऐसा होगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तत् (सर्वनाम)। **इत्** (अव्यय)। **भुवनेषु** (भू - होना)। **ज्येष्ठम्** (ज्या - वृद्ध होना, बर्धित होना, बड़ा होना)। **आस** (अस् - होना)। **यतो** (सर्वनाम)। **उग्रः** (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना)। **त्वेष-नृम्णः** (त्विष् - प्रकाश होना, नृ - गति करना, चलना, ले जान, ज्ञान, गमन, प्राप्ति होना)। **जज्ञे** (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **सद्यो** (सर्वनाम)। **जज्ञानो** (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, ज्ञा - जानना)। **शत्रून्** (रिण - शब्द करना, चूर्ण करना या होना, निः - निश्चित, इ - जाना, इण् - शब्द करना, बोलना)। **यम्** (सर्वनाम)। **विश्वे** (सर्वनाम)। **ऊमाः** (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना)। **अनु** (उपसर्ग)। **मदन्ति** (मद् - आनन्द होना, आनन्द करना) ।। 80 ।।

(36) सूक्त 20

141. इमा उ त्वा पुरूवसो,
गिरो वर्द्धन्तु या मम।
पावक-वर्णाः शुचयो विपश्चितो,
अभि स्तोमैः अनूषत॥ 81॥

मन्त्रार्थ- पुरूवसो हे अग्र-वसन वाले, इमा ये उ ही त्वा तुम्हारे लिए या जो मम मेरा गिरो वाणी वर्द्धन्तु बढे। पावक-वर्णाः पवित्रता का वरण करने वाले शुचयो पवित्र विपश्चितो विशेष दृष्टियुक्त अभि स्तोमैः स्तुतियों से अनूषत प्राणवान् किया॥ 81॥

भावार्थ - हमारी वाणी परमात्मा को समर्पित हो तो शुद्ध पवित्र रहे गी और उसका प्रभाव भी बढ़ेगा। पवित्र दृष्टि वाले स्तुतियों से हमें प्राणवान् करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पुरूवसो (पुर् - अभिगमन करना, आगे जाना, वस् - वसना, वास करना), इमा (सर्वनाम) उ (निपात, अव्यय) त्वा (सर्वनाम) या (सर्वनाम) मम (सर्वनाम) गिरो (**गृ - शब्द करना**) वर्द्धन्तु (**बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, रण करना**)। पावक-वर्णाः (पू - पवित्र करना, पवित्र होना, **वर्ण - वर्णन करना, विस्तृत करना, प्रसंसा करना, प्रकाशित होना,** वृ - वरण करना) शुचयो (**शुच्-शुक्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना,जाना**) विपश्चितो (वि - विशेष, पश् - देखना) अभि (उपसर्ग), स्तोमैः (स्तु - स्तुति करना, प्रशंसा करना) अनूषत (प्राण होना, स्पन्दन होना, चेतन होना)॥ 81॥

142. यस्य अयम् विश्व आर्यो,
दासः शेवधिपा अरिः।
तिरः चित् अर्ये रुशमे पवीरवि,
तुभ्य इत् सो अज्यते रयिः॥ 82॥

मन्त्रार्थ- यस्य जिसका अयम् यह विश्व सब आर्यो आर्य, दासः दास,

शेवधिपा शेवधिप अरिः अरि, शत्रु। तिरश्चित् भीतर रखने वाला ही अर्ये अर्य में रुशमे हिंसा में पवीरवि पवित्र प्रकाश में तुभ्य तुम्हारे लिए इत् ही सो वह रयिः ज्ञान अज्यते स्थापित करता है॥ 82॥

भावार्थ - यस्य जिसका अयम् यह विश्व सब आर्यो आर्य, दासः दास, शेवधिपा शेवधिप अरिः। इसका भावार्थ यह ले सकते हैं कि आर्य, दास, शेवधिप, अरि सभी उसके हैं। परमात्मा के तो सभी हैं, उसके लिए तो कोई भी पराया हो नहीं सकता है। तिरश्चित् भीतर रखने वाला ही अर्ये अर्य में रुशमे हिंसा में पवीरवि पवित्र प्रकाश में तुभ्य तुम्हारे लिए इत् ही सो वह रयिः ज्ञान अज्यते स्थापित करता है। इसका भावार्थ है कि वह सभी परिस्थितियों में हमारे लिए ज्ञान को स्थापित करता है। रयि का अर्थ धन भी मानते हैं तो कह सकते हैं कि परमात्मा हमारे लिए ज्ञान और धन व्यवस्था सभी स्थितियों में करता है, उसका लाभ उठाना हमारे प्रयासों तथा भावना पर निर्भर है।

विशेष - अर् - ऋ धातु के अर्थ गति, ज्ञान, प्राप्ति करना, फैलाना, शब्द करना, ध्वनि करना, महत्व प्रदर्शन करना, हिंसा करना हैं। दास् धातु के अर्थ काटना, दान करना, सेवा करना है। शेव धातु का अर्थ सेचन, घर्षण, सेवा करना तथा सभा में बैठना है। धि धातु का अर्थ धारण करना है। अरि शब्द का सामान्यतः शत्रु अर्थ लिया जाता है। इस अर्थ में अरि को ऋ धातु से निष्पन्न मानने में ऋ धातु का अर्थ हिंसा करना लेना होगा। अरर धातु का अर्थ काटना होता है, इससे भी अरि शब्द को निष्पन्न माना जाता है। हिंसा करने वाला अथवा काटने वाला अरि अर्थात् शत्रु होता है। तिर् धातु का अर्थ भीतर रखना है। तिरः का अर्थ भीतर रखने वाला तथा तिरश्चित् का अर्थ भीतर रखने वाला ही होगा। पु धातु के अर्थ गति-ज्ञान-प्राप्ति करना, रक्षा करना, श्वास लेना, पवित्र करना हैं। रव् धातु के अर्थ गति, ज्ञान, प्राप्ति, प्रकाश करना तथा रु धातु के अर्थ शब्द करना, गति करना, सम्भाषण करना, क्रोध करना, हिंसा करना हैं। इस प्रकार पवी-रवि का अर्थ पवित्र प्रकाश में लेना उचित है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - यस्य (सर्वनाम) अयम् (सर्वनाम) विश्व (सर्वनाम) आर्यो (अर् - ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति करना, फैलाना, शब्द करना,

ध्वनि करना, महत्व प्रदर्शन करना, हिंसा करना), दासः (दास् - काटना, दान करना, सेवा करना), शेवधिपा (शेव - सेचन, घर्षण, सेवा करना, सभा में बैठना, धि - धारण करना) अरिः (ऋ-अर् - गति करना, व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना)। तिरश्चित् (तिर् - भीतर रखना) अर्ये (अर् - ऋ - गति, ज्ञान, प्राप्ति करना, फैलाना, शब्द करना, ध्वनि करना, महत्व प्रदर्शन करना, हिंसा करना) रुशमे (**रुश् - हिंसा करना**) पवीरवि (पु - गति-ज्ञान-प्राप्ति करना, रक्षा करना, श्वास लेना, पवित्र करना, रव् - गति, ज्ञान, प्राप्ति, प्रकाश करना, रु - शब्द करना, गति करना, सम्भाषण करना, क्रोध करना, हिंसा करना) तुभ्य (सर्वनाम) इत् (अव्यय) सो (**सर्वनाम**) **रयि (रय्-रि, जाना, जानना,पाना, री-रै - शब्द करना)**, अज्यते (**अज् - जाना, स्थापना करना, अ - नहीं, जन् - जन्म होना, पाल् - पालन करना**)॥ 82॥

143. अयम् सहस्रम् ऋषिभिः,
सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे,
शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये॥ 83॥

मन्त्रार्थ - अयम् यह सहस्रम् सहस्रशः (हजारों बार, बहुधा) ऋषिभिः ऋषियों द्वारा सहस्कृतः शक्तिशाली बनाया गया समुद्र इव समुद्र के समान पप्रथे विस्तृत हुआ। सो वह अस्य इसकी सत्यः सत्य महिमा महत्व यज्ञेषु यज्ञों में विप्रराज्ये विप्र-राज्य में शवो आगमन, ज्ञान गृणे जानते हैं॥ 83॥

भावार्थ - ऋषियों ने बहुत प्रयास कर परमात्मा तथा उसकी वाणी वेद को विस्तार दिया तथा शक्तिशाली बनाया। शक्तिशाली बनाने से आशय समाज में प्रभावशाली बनाना, अन्यथा परमात्मा अथवा वेद को भी कोई अन्य शक्तिशाली बनाये, न इसकी आवश्यकता है और न ही यह सम्भव है। इतना अवश्य है कि परमात्मा के उपासकों तथा वेद के विद्वानों को व्यापक तथा शक्तिशाली बनाने के लिए ऋषियों का प्रयास करना स्वाभाविक है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अयम् (सर्वनाम) सहस्रम् (सहस्र = हजार,

संख्या) ऋषिभिः (**ऋष् - जानना, जाना, पाना, अन्तदृष्टि होना, अन्तर्गमन करना, सूक्ष्मता से भीतर देखना**) सहस्कृतः (सह् - सहन करना, समर्थ होना) समुद्र (सम् - सम्यक्, उदी-उन्द् - आद्र करना) इव (अव्यय) पप्रथे (प्रथ् - विस्तार होना)। सो (सर्वनाम) अस्य (सर्वनाम) सत्यः (सत् - सत्य होना) महिमा (**मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना, सम्मान करना, सत्कार करना**) यज्ञेषु (**यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना**) विप्रराज्ये (वि - विशेष, राज् - दीप्त होना, प्रकाशित होना, शोभित होना) शवो (जाना, जानना, पाना) गृणे (**गृ - सिञ्चन करना, घर्षण करना, जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना, शब्द करना**)॥ 83॥

144. अदब्धेभिः सवितः पायुभिः त्वम्,
शिवेभिः अद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे,
रक्षा माकिः नो अघशंस ईशत॥ 84॥

मन्त्रार्थ- सवितः हे सविता, उत्पन्न कर्ता, त्वम् तुम अद्य आज अदब्धेभिः अहिंसा शिवेभिः कल्याणकरी पायुभिः पालन-रक्षण द्वारा नो हमारे गयम् गय (गायन, वाणी, गति, ज्ञान) को परि सब ओर पाहि पालन करो, रक्षा करो। हिरण्य-जिह्वः प्रकाशयुक्त जिह्वा वाले सुविताय सुन्दर विशेष रक्षण-पालन करने वाले नव्यसे नवीनता के लिए रक्षा रक्षा करो। अघशंस पाप का प्रशंसक (पापी) माकिः कोई नहीं नो हमें ईशत शासन करे॥ 84॥

भावार्थ - परमात्मा की कृपा होगी तो आज ही संरक्षण मिलेगा। उसका संरक्षण पाने के लिए अहिंसक तथा कल्याणकारी हमें भी होना होगा। यदि हम ऐसा करते हैं तो हमें आज ही अर्थात् तत्काल ईश्वर का संरक्षण प्राप्त होता है, उसके लिए लम्बी प्रतीक्षा नहीं करनी पडती है। न इस जन्म में लम्बी प्रतीक्षा करनी है, और न आगामी जन्मों की कल्पना कर सन्तोष करने की आवश्यकता है। हिरण् धातु का अर्थ प्रकाश करना, शब्द करना हैं। हिरण्य-जिह्वा का अर्थ प्रकाशित वाणी वाले है। जिनकी जिह्वा में प्रकाशित वाणी है, ऐसे लोग हिरण्य-जिह्वा होते हैं॥ 84॥

विशेष - गय शब्द में गै (शब्द, ध्वनि करना, गायन करना) अथवा गम् (जाना) धातु मानना उचित है। गम् धातु गति अर्थ वाली होने से इसमें ज्ञान तथा प्राप्ति अर्थ भी माने जा सकते हैं। अतः गय शब्द के अर्थ गायन, वाणी, गति, ज्ञान होंगे। विद्वानों ने इसका भावार्थ घर तथा धन भी किया है जो इन सबका आधारभूत साधन कहा जा सकता है। सुविताय पद में सु-वि-ताय के रूप में सु तथा वि उपसर्ग तथा ताय धातु है। ताय धातु का अर्थ रक्षा करना, पालन करना, तानना, फैलाना हैं। सुविताय का अर्थ सुन्दर विशेष रक्षण-पालन करने वाले है।। 84 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सवितः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना), त्वम् (सर्वनाम) अद्य (अव्यय) अदब्धेभिः (अ - नहीं, दभ् - निन्दा करना) शिवेभिः (शिव् - कल्याण करना) पायुभिः (पा - पालन, रक्षण करना) नो (सर्वनाम) गयम् (गै - शब्द, ध्वनि करना, गायन करना, गम् - जाना) परि (उपसर्ग) पाहि (पा - पालन, रक्षण करना)। हिरण्य-जिह्वः (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना, जिह् - जाना, चलना, जानना, पाना) सुविताय (सु - सुन्दर, अच्छा, वि - विशेष, ताय - रक्षा करना, पालन करना, तानना, फैलाना) नव्यसे (नव् - नूतन होना, नवीन होना, नया होना) रक्षा (अघ् - पाप करना, अपराध करना, गिरना, शंस् - स्तुति करना, प्रशंसा करना) माकिः (अव्यय) नो (सर्वनाम) ईशत (ईश् - शासन करना)।। 84 ।।

(37) सूक्त 21

145. आ नो यज्ञम् दिविस्पृशम्,
वायो याहि सुमन्मभिः।
अन्तः पवित्रः उपरि श्रीणानो,
अयम् शुक्रो अयामि ते।। 85 ।।

मन्त्रार्थ - वायो हे वायु (प्रवाहमान सृजनशील परमात्मन्) नो हमारे दिविस्पृशम् दिव्यता को स्पर्श करने वाले यज्ञम् यज्ञ को सुमन्मभिः सुन्दर मन से आ याहि प्राप्त हों (आयें)। अन्तः भीतर पवित्रः पवित्र उपरि ऊपर श्रीणानो

श्री होते हुए अयम् यह ते तुम्हारा शुक्रो शुक्र अयामि प्राप्त करता हूँ।। 85 ।।

भावार्थ - यज्ञ-यजन (यज् धातु) का अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण, दान। दिव्य भावना से ऐसे पवित्र कार्य सुन्दर मन से ही किये जाते हैं। इसमें परमात्मा का आह्वान-स्मरण स्वाभाविक है, अनिवार्य है। श्री तथा शुक्र अर्थात् पवित्रता को भीतर धारण करने की भावना भी महत्वपूर्ण है। यही हमें प्राप्त करना है, यही यजन का उद्देश्य तथा फल भी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वायो (**वा - गति करना, बहना, पवन-सा चलना,** वे - बुनना, रचना करना) नो (सर्वनाम) दिविस्पृशम् (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना, स्पृश् - छूना, कम्पन करना**), यज्ञम् (**यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना**) सुमन्मभिः (सु - अच्छा, सुन्दर, मन् - मनन करना) आ याहि (आ-या - आना, या - जानना, जानना, पाना)। अन्तः (उपसर्ग) पवित्रः (पू - पवित्र करना) उपरि (अव्यय) श्रीणानो (**श्री - सेवा करना, आश्रय होना, समृद्धि होना, शोभा होना**) अयम् (सर्वनाम) ते (सर्वनाम) शुक्रो (शुक्-शुच्-शुध - शुद्धि करना, शुद्ध होना, पवित्र होना, जाना) अयामि (या - जानना, जानना, पाना)।। 85 ।।

146. इन्द्रवायू सुसन्दृशा,
सुहवा इह हवामहे।
यथा नः सर्व इत् जनो अनमीवः,
सङ्गमे सुमना असत्।। 86 ।।

मन्त्रार्थ- इन्द्रवायू इन्द्र तथा वायु सुसन्दृशा सुन्दर सम्यक् दृष्टि वाले सुहवा सुन्दर आह्वान द्वारा इह यहाँ हवामहे आह्वान करते हैं। यथा जैसे नः हमारे सर्व सब इत् ही जनो जन अनमीवः रोगमुक्त, सङ्गमे संगमन (सम्मेलन, सभा, समाज) में सुमना सुन्दर मन वाले असत् हैं।। 86 ।।

भावार्थ - इन्द्रवायू इन्द्र तथा वायु अर्थात् ऐश्वर्यवान् तथा प्रवाहमान रचनाशील। परमात्मा के दो गुणों अथवा दो दिव्य शक्तियों का स्मरण तथा आह्वान किया गया है। इस प्रकार स्मरण तथा आह्वान करने का आशय इन

गुणों को स्वयम् धारण करना तथा इसके लिए परमात्मा की कृपा पाने की कामना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्रवायू (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, वा - गति करना, बहना, वे - बुनना, रचना करना), सुसन्दृशा (सु - सुन्दर, अच्छा, सम् - सम्यक्, दृश् - देखना) सुहवा (सु - उत्तम, अच्छा, **ह्वे - आह्वान करना**) इह (सर्वनाम) हवामहे **(ह्वे - आह्वान करना)**। यथा (अव्यय) नः (सर्वनाम) सर्व (सर्वनाम) इत् (अव्यय) जनो (जन् - उत्पन्न करना या होना) अनमीवः (अन् - नहीं, अम् - रोग होना) सङ्गमे (सम् - सम्यक्, गम् - जाना, सम्-गम्, सङ्गम् - मिलना, साथ चलना) सुमना (सु - उत्तम, अच्छा, मन् - जानना, विचार करना) असत् (अस् - होना)॥ 86॥

147. ऋधक् इत्था स मर्त्यः, शशमे देवतातये। यो नूनम् मित्रावरुणौ, अभिष्टये आचक्रे हव्यदातये॥87॥

मन्त्रार्थ- इत्था इस प्रकार स वह ऋधक् समृद्धिशाली मर्त्यः मरणशील (मनुष्य ने), देवतातये देवत्व के लिए शशमे कूर्दन (तीव्र, कठिन प्रयास) किया। यो जो नूनम् निश्चय ही मित्रावरुणौ मित्र-वरुण ने अभिष्टये अभीष्ट के लिए हव्यदातये हव्यदाता के लिए आचक्रे किया॥ 87॥

भावार्थ - हम जीव या मनुष्य के रूप में मरणशील तो हैं, परन्तु परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण समृद्धिशाली भी हैं। हमे कूद कर अर्थात् अपनी सम्पूर्ण शक्ति से ऊपर उठने का प्रयास कर देवत्व को प्राप्त करना है। मित्र-वरुण अर्थात् हमारे मित्र वरण किये गये परिजन हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तथ हव्य अर्थत् देय के दाता के लिए हमारी सहायता कार्य करते हैं।

विशेष - ऋध् (ऋध्नोति) धातु का अर्थ समृद्धि होना, ऐश्वर्य होना होता है। अतः ऋधक् का अर्थ समृद्धि, ऐश्वर्य होता है। ऋधक् पद में सम् उपसर्ग होने पर समृधक् पद बनता है। ऋ धातु भी बहुत महत्वपूर्ण तथा बहुत अर्थ वाली है। ऋध का अर्थ हआ ऋ को धारण करने वाला। यही तो समृद्धि है। वेद में ऋधक्, ऋद्धि, समृद्धि को व्यापक अर्थ में लिया गया है। इसे सीमित अर्थ में नहीं लेना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इत्था (अव्यय), स (सर्वनाम), ऋधक् (ऋध् -समृद्धि होना, ऐश्वर्य होना) मर्त्यः (मृ - मरना), देवतातये **(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना),** शशमे (शश् - कूर्दन करना, कूदना, उछलना, कूदते हुए चलना)। यो (सर्वनाम) नूनम् (अव्यय) मित्रावरुणौ **(मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, प्रीति करना, नरम होना, मृदुल होना**, **वृ - वरण करना, आच्छादन करना),** अभिष्टये (अभि-इष्, इष् - इच्छा करना) हव्यदातये **(हु - दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना, दा - दान करना, देना)** आचक्रे (कृ - करना)॥ 87॥

148. आ यातम् उप भूषतम्, मध्वः पिबतम् अश्विना। दुग्धम् पयो वृषणा जेन्यावसू, मा नो मर्धिष्टम् आ गतम्॥ 88॥

मन्त्रार्थ - अश्विना हे अश्विन् युगल, तीव्र गति से उप समीप आ यातम् आयें, भूषतम् भूषित हों, मध्वः मधुरता का पिबतम् पान करें। दुग्धम् दुग्ध (दोहन किया हुआ) पयो ज्ञान, रक्षण वृषणा बरसाओ, जेन्यावसू जेन्य वसु वाले, नो हमारे आ गतम् आये हुए को मा नहीं मर्धिष्टम् हिंसित करो॥ 88॥

भावार्थ - हम परमात्मा के साथ ही उपासक, देवजन आदि सज्जनों का भी आह्वान करते हैं, तथा उन सभी के लिए स्वागत-सत्कार की भी व्यवस्था करते हैं। वे हमारे लिए ज्ञान, संरक्षण प्रदान करते हैं। परमात्मा से तथा अन्य सभी से प्रार्थना है कि हमारे जो भी आगन्तुक अतिथि हैं, उनके साथ हिंसा न करें। अधिक लोगों के समागम-सम्मेलन में साधारण मतभेद होना स्वाभाविक है, परन्तु हमको हिंसा से बचना चाहिए।

विशेष - अश्विना पद का अर्थ अश्विन् द्वारा है। अशु धातु का अर्थ तीव्र, द्रुत गति करना है, अतः अश्विन् का अर्थ तीव्रगामी, द्रुतगामी है। वैदिक प्रयोग में अश्विना पद अश्विन् का द्विवचन भी होता है। अतः अश्विन् का अर्थ दो अश्विन् या अश्विन् युगल भी होता है। पय् धातु का अर्थ गति, रक्षण करना है।

गति अर्थ में ज्ञान, गमन, प्राप्ति का योग होने से पय का अर्थ रक्षण के साथ ही ज्ञान भी है। जिन धातु का अर्थ मिलाना तथा अलग करना है। जि धातु का अर्थ जीतना है। जेन्या का अर्थ मिलाने योग्य, अलग करने योग्य, जीतने योग्य होगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अश्विना (**अश्-अशु - व्याप्त होना, फैलना, तीव्रता से पहुँचना**), उप (उपसर्ग) आ यातम् (आ-या - आना, या - जाना), भूषतम् (भूष् - भूषित होना, सजाना), मध्वः (**मध - मधुर होना, मीठा होना**), पिबतम् (पी-पिब् - पीना, पान करना)। दुग्धम् (दुह् - दोहन करना) पयो (पय् - गति करना, रक्षण करना, ज्ञान, गमन, प्राप्ति करना, **पि - जाना, जानना, पाना, पा- पालन करना, रक्षा करना, पी**-पिब् **-पीना - पान करना**)। वृषणा (वृष् - वर्षा होना, बरसना, बरसना), जेन्यावसू (जिन - मिलाना, अलग करना, जि - जीतना), नो (सर्वनाम) आ गतम् (आ-गम् - आना, गम् - जाना) मा (अव्यय) मर्धिष्टम् (मृध् - दबाना, हिंसा करना, मार डालना, दुःख देना, गीला करना)॥ 88॥

149. प्र एतु ब्रह्मणः पतिः,
प्र देवी एतु सूनृता।
अच्छा वीरम् नर्य्यम् पङ्क्तिराधसम्,
देवा यज्ञम् नयन्तु नः॥ 89॥

मन्त्रार्थ :- ब्रह्मणः ब्रह्मा का **पतिः** पालक, रक्षक, स्वामी **प्र एतु** आयें, **सूनृता** सुनृता **देवी** देवी **प्र एतु** आयें। **अच्छा** अच्छे **वीरम्** वीर, **नर्यम्** नर्य, **पंक्तिराधसम्** पंक्तिराधन में समर्थ **देवा** देवगण **नः** हमको **यज्ञम्** यज्ञ में **नयन्तु** ले चलें। ॥ 89॥

भावार्थ :- गुणवान् तथा समर्थ नर-नारी यजन को सफल बनायें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्र एतु (प्र = प्रकृष्ट, प्रमुख, अधिक (उपसर्ग), आ + इतु, इ - जाना, जानना, पाना)। ब्रह्मणः (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। देवी (दिव्, देव् = चमकना, जानना)। सूनृता (सु - उत्तम, अच्छा (उपसर्ग), नृ = ले जाना)। अच्छा (अच्छ् - अच्छा होना, निर्मल करना)। वीरम्

(वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। नर्यम् (नृ = ले जाना)। पंक्तिराधसम् (पचि (पञ्च्) - फैलाना, पसारना, राध - सिद्ध होना, बढ़ना)। देवा (देव, दिव् = खेलना, तेजस्वी होना, चमकना, यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। यज्ञम् (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। नयन्तु (नय - जाना, हिलना, पहुँचना, संरक्षण करना)। नः(सर्वनाम)॥ 89॥

(38) सूक्त 22

150. चन्द्रमा अप्सु अन्तः,
आ सुपर्णो धावते दिवि।
रयिम् पिशङ्गम् बहुलम् पुरुस्पृहम्,
हरिः एति कनि-क्रदत्॥ 90॥

मन्त्रार्थ- चन्द्रमा आनन्ददायक सुपर्णो सुन्दर पर्ण वाला, अच्छी तरह हरा करने वाला अप्सु पालन-कर्मों में दिवि दिव्यता में अन्तः भीतर आ धावते दौड़ता है। हरिः हरि (दुःखों का हरण करने वाला परमात्मा) रयिम् विद्या, पिशङ्गम् प्रकाशगामी बहुलम् बहुत पुरुस्पृहम् अग्रगामी के लिए स्पृहा (इच्छा, लिप्सा) कनि-क्रदत् प्रकाश करते हुए एति जाता है॥ 90॥

भावार्थ - परमात्मा आनन्ददायक है, हमको हरा-भरा करने वाला है, वह पालन-कर्मों में तथा दिव्यता अर्थात् दिव्य, श्रेष्ठ कर्मों में भीतर दौड़ता है। इसका भाव है कि यदि हम इ गुणों को धारण करते हैं तो परमात्मा की कृपा, चेतना, प्रकाश स्वयम् हमारे भीतर दौड़ने लगता है। वह हरि अर्थात् हमारे दुःखों को हरण करने वाला है। उसकी कृपा से हमें जो विद्या, प्रकाश प्राप्त होता है, उससे तो बहुत से अग्रगामी अर्थात् उच्चस्तरीय प्रमुख लोग भी स्पृहा अर्थात् इच्छा, कामना करते हैं, पाने के लिए लिप्सा रखते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - चन्द्रमा (**चन्द् - चमकना, आनन्द होना, प्रकाश होना, सन्तोष होना**) सुपर्णो (**सु - सुन्दर, अच्छा, पर्ण - हरा करना, हरा होना**), अप्सु (**अप्** - पालन करना) दिवि (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), अन्तः (उपसर्ग) आ (सर्वनाम), धावते

(धाव् - दौड़ना)। हरिः (**ह्र - हरण करना, ले जाना, नाश करना, पाप काटना**), रयिम् (**रय्-रि, जाना, जानना,पाना, री-रै - शब्द करना**), पिशङ्गम् (**पिश् - जाना, प्रकाश होना, चीरना, टुकड़े करना**)।बहुलम् (**पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना,** कनि-क्रदत् प्रकाश करते हुए (कन् - व्याप्त होना, प्रकाश करना, प्रीति करना, जाना, जानना, पाना) एति (इ - जाना)।। 90 ।।

151. देवम् देवम् वो अवसे, देवम् देवम् अभिष्टये।
देवम् देवम् हुवेम वाजसातये, गृणन्तो देव्या धिया।। 91 ।।

मन्त्रार्थ - वो तुम लोगों के लिए देवम् देवम् देव-देव को (प्रत्येक देव को) अवसे रक्षा के लिए, देवम् देवम् देव-देव को (प्रत्येक देव को) अभिष्टये अभीष्ट के लिए, देवम् देवम् देव-देव को (प्रत्येक देव को) वाजसातये वाजसातये विद्यावान् (परमात्मा तथा उपासक देवजन) के लिए गृणन्तो जानते हुए, अभिसिंचन करते हुए देव्या दिव्य धिया धारणा (बुद्धि) द्वारा हुवेम आह्वान करते हैं।। 91।।

भावार्थ - हम सभी की हितकामना करते हैं। इसके लिए सभी देवजनों का आह्वान करते हैं क्योंकि सामूहिक प्रयासों से ही समाज का हित सम्भव हो पाता है।

विशेष - हु धातु का अर्थ दान करना, आदान-प्रदान करना होता है। इस प्रकार हुवेम पद का अर्थ दान करते हैं होना चाहिए। इसमें विद्वानों ने बहुधा आह्वान करना अर्थ ही ग्रहण किया है। ह्वे धातु का अर्थ आह्वान करना, बुलाना, पुकारना होता है। वेद में व्याकरण नियमों की कठोरता नहीं है। अतः इस तरह के प्रयोग सम्भव हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - वो (सर्वनाम) देवम् (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), अवसे (अव्- रक्षा करना), अभिष्टये (अभि-इष्, इष् - इच्छा करना), वाजसातये (**वाज् - गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना, साद् - चलना, बैठना, सूखना, चढ़ाई करना, साध् - निर्णय करना, पूर्ण करना, सिद्ध करना, जीतना, यशस्वी होना, साधना करना**), गृणन्तो (**गृ - सिञ्चन करना, घर्षण करना,**

जानना, समझना, निगलना, बहिर्गमन करना, गृ - शब्द करना), देव्या (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), धिया (**धी - धारण करना, बुद्धि होना**)। हुवेम (ह्वे - आह्वान करना)।। 91।।

152. दिवि पृष्टो अरोचत,
अग्निः वैश्वानरो बृहत्।
क्षमया वृधान ओजसा चनोहितो,
ज्योतिषा बाधते तमः।। 92 ।।

मन्त्रार्थ- दिवि दिव्यता में पृष्टो अभिसिञ्चित अरोचत **प्रसन्न, उत्साहित, प्रकाशित,** अग्निः अग्रणी (परमात्मा, उपासक, प्रमुख जन) वैश्वानरो सबको ले जाने वाला, विश्वनर, वैश्विक भावना वाला नर बृहत् बड़ा प्रकाशित हुआ। क्षमया क्षमा से वृधान बढ़ते हुए ओजसा ओज से चनोहितो वाणी, विश्वास द्वारा हितकारी, ज्योतिषा प्रकाश द्वारा तमः अन्धकार को बाधते बाधित करता है।। 92 ।।

भावार्थ - अग्निः का अर्थ है अग्रणी। इसका भावार्थ सामान्यतः परमात्मा ही है। लौकिक अर्थ में उपासक, प्रमुख जन भी माने जा सकते हैं। वैश्वानर अर्थात् सबको ले जाने वाला परमात्मा तो है ही, इसके साथ ही विश्व को अपना मानने वाला उदारमना वैश्विक भावना वाला नर भी ग्रह्य है।

विशेष - नृ धातु का अर्थ ले जाना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - दिवि (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), पृष्टो (**पृष् - जाना, सरल होना, अभिसिञ्चन करना**) अरोचत (**रुच् - रुचना, प्रीति होना, प्रसन्न होना, उत्साह होना, प्रकाशित होना**) अग्निः (**अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना**) वैश्वानरो (विश्व - सब, **नृ - चलना, ले जाना, विनय होना**) बृहत् (**बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना**)। क्षमया (**क्षम् - क्षमा करना, सहन करना, समर्थ होना, क्षि - निवास करना, जाना, जानना, पाना**)। वृधान

(वृध् – वृद्धि होना, बढ़ना) ओजसा (**ओज - शक्तिमान होना, बढ़ना, जीना**) चनोहितो (**चन् - स्मरण करना, शब्द करना, विश्वास करना, मिलाना, अलग करना, हिंसा करना**) ज्योतिषा (**ज्युत् - प्रकाशित होना, चमकना**) तमः (**तम् - इच्छा होना, दुःखी होना, अन्धाकर होना**) बाधते (**बाध् - बाधित करना, बाधा देना, रोकना, दुःख देना**)॥ 92॥

153. इन्द्राग्नी अपात् इयम्,
पूर्वा आ अगात् पद्वतीभ्यः।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदत्,
चरत् त्रिंशत् पदा नि अक्रमीत्॥ 93॥

मन्त्रार्थ - इन्द्राग्नी हे इन्द्र – अग्नि, अपात् पदहीन, रक्षा की इयम् यह पद्वतीभ्यः पदयुक्त से पूर्वा पहले आ अगात् आ गयी। शिरो शिर को हित्वी बढ़ाकर जिह्वया जिह्वा से वावदत् बोलती हुई, चरत् चलती हुई त्रिंशत् तीस पदा पद नि अक्रमीत् बढ़ गयी॥ 93॥

भावार्थ - इयम् अर्थात् यह पद (शब्द) सर्वनाम है। इससे किसका संकेत समझा जाये, यह विचारणीय है। इन्द्र – अग्नि अर्थात् ऐश्वर्यवान् अग्रणी परमात्मा तथा उसकी इन्द्र तथा अग्नि जैसी दिव्य शक्तियों को सम्बोधित किया गया है। इसका अर्थ है कि इयम् (यह) परमात्मा की दिव्य शक्ति अथवा हमारे लिए कोई महत्वपूर्ण अनुदान है। इसका भावार्थ वाणी बहुधा किया गया है। वेदवाणी ही परमात्मा का वह महत्वपूर्ण अनुदान है जो इस मन्त्र में वर्णित प्रतीत होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्राग्नी (**इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना,** जानना, पाना, अग्रणी होना, **आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना**), अपात् (**पद् - चलना, भूषित होना, पत् - ऐश्वर्य होना, रक्षा करना, नीचे जाना, गिरना**) इयम् (सर्वनाम)। पद्वतीभ्यः (**पद् - चलना, भूषित होना**), पूर्वा (सर्वनाम)। आ अगात् (आ-गम् – आना, गम् – जाना)। शिरो (**शिर् - शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना, शृ -सुनना, जाना, जानना, पाना**) हित्वी (**हि - जाना, गति, वृद्धि, प्रेरणा करना**) जिह्वया (**जिह् - जाना, चलना, जानना, पाना**) वावदत् (वद् – बोलना), चरत् (चर् – चलना) त्रिंशत् (संख्या) पदा (**पद् - चलना, भूषित होना**) नि (उपसर्ग), अक्रमीत् (**क्रम् - चलना, निर्भयता से जाना, रक्षा करना**)॥ 93॥

154. देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो,
विश्वे साकम् सरातयः।
ते नो अद्य ते अपरम् तुचे,
तु नो भवन्तु वरिवोविदः॥ 94॥

मन्त्रार्थ - देवासो देवगण हि ही मनवे मनन के लिए समन्यवो साथ मनन करने वाले विश्वे सभी साकम् साथ सरातयः समान दान वाले ष्मा थे। अद्य आज ते वे ते वे नो हमारे लिए अपरम् अन्य को तुचे तुज (प्रकाश) करते हैं। नो हमारे लिए तु तो वरिवोविदः इच्छा को जानने वाले भवन्तु हों॥ 94॥

भावार्थ - देवगण अर्थात् दिव्यगुण युक्त श्रेष्ठ जनों का चिन्तन-मनन तथा दान आदि शुभ कर्म साथ होते हैं। वे हमारे लिए विचारों का प्रकाश करते हैं तथा हमारी इच्छा को जानते हैं।

विशेष - तु धातु का अर्थ गति, वृद्धि, हिंसा करना है तथा तुज् धातु का अर्थ बल, दान, निवास, प्रकाश करना है। तुचे का अर्थ इन सबके लिए हो सकता है। तुज् का तुच् होना अर्थात् ज का च हो जाना जैसे ध्वनि परिवर्तन संस्कृत भाषा में प्रचलित हैं। इसे सन्धि-विकार कहा जाता है। सन्धि नियमों सहित लौकिक व्याकरण के नियम वेद में कठोरता से मान्य नहीं हैं। वर धातु का अर्थ इच्छा करना, आशा करना है। विद् धातु का अर्थ जानना है। वरिवोविदः का अर्थ इच्छा को जानने वाले है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - देवासो (**दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना**), हि (अव्यय) मनवे (मन् – मनन करना। विचार करना) समन्यवो (मन् – मनन करना, विचार करना) विश्वे (सर्वनाम) साकम् (अव्यय) सरातयः (रा – दान करना) ष्मा (अस् – होना)। अद्य (अव्यय) ते

(सर्वनाम) नो (सर्वनाम) अपरम् (सर्वनाम) तुचे (तु - गति, वृद्धि, हिंसा करना, तुज् - बल, दान, निवास, प्रकाश करना)। नो (सर्वनाम) तु (अव्यय) वरिवोविदः (वर् - इच्छा करना, आशा करना है, विद् - जानना) भवन्तु (भू - होना)॥94॥

(39) सूक्त 23

155. अप अधमत् अभि शस्तीः अशस्तिहा,
अथ इन्द्रो द्युम्नी आ अभवत्।
देवाः त इन्द्र सख्याय येमिरे,
बृहद्भानो मरुद्गण॥ 95॥

मन्त्रार्थ- अभि शस्तीः हिंसक अशस्तिहा अहिंसकों को मारने वाला अप अधमत् आग लगायी, धमन किया। अथ इसके अनन्तर इन्द्रो ऐश्वर्यवान् (परमात्मा) द्युम्नी अभिगमन करने वाला, आक्रामक आ अभवत् हुआ। इन्द्र हे इन्द्र, बृहद्भानो हे बड़े प्रकाशयुक्त, मरुद्गण हे मरुत् समूह, देवाः देवगणों ने ते तुम्हारी सख्याय मित्रता के लिए येमिरे यमन किया॥ 95॥

भावार्थ - अहिंसकों के प्रति हिंसा करने वाले जब समाज में आग लगाने लगते हैं तो परमात्मा उनको दण्ड देता है। ऐसे परमात्मा की मित्रता के लिए देवगण यमन करते हैं, अर्थात् स्वनियमन तथा आत्मसंयम करते हैं।

विशेष - धम् धातु का अर्थ आग लगाना, आग को फूंकना, बढ़ाना, तीव्र करना होता है। वाद्य बजाने के अर्थ में भी धम् धातु का प्रयोग होता है। द्यु धातु का अर्थ अभिगमन करना, आगे जाना, सम्मुख जाना, आक्रमण करना होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अभि (उपसर्ग), शस्तीः (शस् - हिंसा करना) अशस्तिहा (अ - नहीं, शस् - हिंसा करना, हन् - मारना) अप (उपसर्ग), अधमत् (धम् - आग लगाना, आग को फूंकना, बढ़ाना, तीव्र करना)। अथ (अव्यय), इन्द्रो **(इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)** द्युम्नी **(द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना)** आ (उपसर्ग) अभवत् (भू - होना)। इन्द्र **(इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)** बृहद्भानो **(बृह - वृद्धि होना,**

बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना, भा - प्रकश होना) मरुद्गण (मृ - मरना, गण् - गिनना, समूह बनाना), देवाः **(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना),** ते (सर्वनाम) सख्याय **(सख - मित्र होना)**। येमिरे **(यम - आवरण करना, पोषण करना, नियमन करना)**॥ 95॥

156. प्र व इन्द्राय बृहते, मरुतो ब्रह्म अर्चत।
वृत्रम् हनति वृत्रहा शतक्रतुः, वज्रेण शतपर्वणा॥ 96॥

मन्त्रार्थ - मरुतो हे मरुतों, वः तुम्हारे बृहते बृहत् इन्द्राय इन्द्र (ऐश्वर्यवान्) के लिए ब्रह्म ब्रह्म (परमात्मा) का प्र अर्चत अर्चन करो। वृत्रहा वृत्र (हिंसक) को मारने वाला शतक्रतुः शतकर्मा (सैकड़ों कर्म वाला) शतपर्वणा शत पर्व वाले वज्रेण वज्र से वृत्रम् हिंसक को हनति मारता है॥ 96॥

भावार्थ - इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् होने के लिए मरुत् अर्थात् मरणशील प्राणी मनुष्य ब्रह्म अर्थात् परमात्मा का अर्चन करे। वह परमात्मा शतक्रतु है अर्थात् सैकड़ों या अनेक कर्मों से हमारे कार्यों का साधक है। वह वृत्र अर्थात् हिसक को मारने वाला है, अतः हिंसा न करें। शत पर्व वाले वज्र अर्थ अनेक पूर्णताओं युक्त ज्ञान है। लौकिक अर्थ में वज्र को शस्त्र कह सकते हैं।

विशेष - पर्व का अर्थ है पूर्ण करना, भरना। वज धातु का अर्थ गति, ज्ञान, प्राप्ति करना तथा शस्त्र बनाना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मरुतो (मृ - मरना), वः (सर्वनाम) बृहते **(बृह - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना),** इन्द्राय **(इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)** ब्रह्म **(बृह् - वृद्धि होना, बढ़ना, उठाना, उद्योग करना, बोलना, शब्द करना, ध्वनि करना),** प्र (उपसर्ग), अर्चत **(अर्च -पूजा करना, मान करना),** वृत्रहा **(वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना,** हन् - हनन करना, मारना), शतक्रतुः (शत - सौ, कृ - करना) शतपर्वणा (शत - सौ, **पर्व् - पूर्ण करना, विभाग करना)** वज्रेण (वज् - जाना, जानना, पाना, सिद्ध करना, शस्त्र-निर्माण करना) वृत्रम् **(वृत् - वर्तना, वर्तमान होना वरण**

करना, सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना), हनति (हन् - हनन करना, मारना)।। 96।।

157. अस्य इत् इन्द्रो वावृधे वृष्ण्यम्,
शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तम् अस्य महिमानम्,
आयवो अनु स्तुवन्ति पूर्वथा।।
इमा उ त्वा यस्य अयम्,
अयम् सहस्रम्, ऊर्ध्वम् ऊ षु णः।। 97।।

मन्त्रार्थ - इन्द्रो इन्द्र (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) अस्य इसका इत् ही वृष्ण्यम् सिञ्चन, शवो ज्ञान, सुतस्य सुत के मदे आनन्द में विष्णवि व्यापकता में वावृधे बढ़ाता है। अद्या आज तम् उसको अस्य इसकी महिमानम् महिमा को, आयवो आयुवान् अनु स्तुवन्ति स्तुति करते हैं पूर्वथा पूर्व की भाँति।। इमा ये उ ही त्वा तुमको यस्य जिसकी अयम् यह, अयम् यह सहस्रम् सहस्र (हजारों, अनन्त), ऊर्ध्वम् ऊपर ऊ ही षु अच्छा णः हमारा।। 97।।

भावार्थ - परमात्मा की कृपा से हमारी अभिवृद्धि होती है। हम परमात्मा तथा उसकी महिमा की स्तुति करते हैं।

विशेष - शव् धातु का अर्थ गति, ज्ञान, प्राप्ति तथा विकार होना है। शव शब्द का अर्थ बल भी किया गया है। णः पद नः का वैदिक रूप है। न का ण में परिवर्तन बहुधा हो जाता है, लौकिक संस्कृत में भी ऐसा होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - इन्द्रो **(इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)** अस्य (सर्वनाम) इत् (अव्यय) वृष्ण्यम् **(वृष् - बरसना, सींचना, पराक्रमी होना)।** शवो (शव - जाना, जानना, पाना), सुतस्य **(सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना)** मदे **(मद् - मद होना, हर्ष होना, तृप्त होना, थकना)।** विष्णवि **(विष् -विविष् - अलग करना, अभिषेक करना, सींचना, व्याप्त होना)।** वावृधे **(वृध् - वृद्धि होना, बढ़ना)।** अद्या (अव्यय) तम् (सर्वनाम) अस्य (सर्वनाम) महिमानम् **(मह् - पूजा करना, पूज्य होना, महत्व होना,**

सम्मान करना, सत्कार करना), आयवो **(अय् - जाना, चलना, जानना, पाना,ऐ-आय् - शब्द करना, शासन करना)** अनु (उपसर्ग) स्तुवन्ति (स्तु - स्तुति करना) पूर्वथा पूर्व की भाँति (अव्यय)। इमा (सर्वनाम) उ (निपात, अव्यय) त्वा (सर्वनाम) यस्य (सर्वनाम) अयम् (सर्वनाम), सहस्रम् (हजारों, अनन्त), ऊर्ध्वम् (सर्वनाम) ऊ (अव्यय) षु (सु - उत्तम, उपसर्ग) णः (नः) (सर्वनाम)।। 97।।

इति चतुर्थः अध्यायः

ॐ

पञ्चमः अध्यायः

शिव-संकल्पोपनिषद्

सूक्त - 1 (शिवसंकल्पसूक्त)

158. यत् जाग्रतो दूरम् उत् एति दैवम्,
तत् उ सुप्तस्य तथा एव एति।
दूरम् गमम् ज्योतिषाम् ज्योतिः एकम्,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु॥ 1॥

मन्त्रार्थ- यत् जो **दैवम्** देव (अर्थात् दिव्य मन) **जाग्रतो** जगते हुए **दूरम् उत्** दूर तक **(दु, दू - जाना) एति** जाता है, **तत्** वह **सुप्तस्य** सोते हुए **उ** भी **तथा एव** उसी प्रकार **एति** जाता है (अर्थात् दूर तक विचरण करता है)। **दूरम् गमम्** दूरगामी (मन) **ज्योतिषाम्** ज्योतियों में **ज्योतिः एकम्** एक ज्योति (अर्थात् सभी ज्योतियों में विशिष्य तथा प्रमुख ज्योति है)। **तत्** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शिव-सङ्कल्प वाला (शुभ विचारों तथा कामनाओं वाला) **अस्तु** हो।

भावार्थ-मन को देव कहा गया है। दैव अर्थात् दिव्यता से युक्त, दिव्य विचारों भावनाओं से सम्बन्धित। मन दिव्य वेद मन्त्रों से युक्त है, स्वतः ओतप्रोत है। सकारात्मक श्रेष्ठता, उत्कृष्टता को ही दिव्यता कहा जाता है। अतः सर्वश्रेष्ठ देव तो परमात्मा है, वेद है। वेद के विद्वानों को भी देव कहा जाता है। विद्वांसो हि देवः अर्थात् विद्वान् ही देव हैं (शतपथ ब्राह्मण)। दूरम् शब्द अव्यय के रूप में भी मान्य है। दु तथा दू धातुओं का अर्थ जाना होता है। इससे भी दूरम् का अर्थ गया हुआ अर्थात् दूर हो गया मान सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यत् (सर्वनाम)। जाग्रतो (जागृ - जगना, नींद न लेना)। दूरम् (अव्यय)। उत् (अव्यय)। एति (इ - जाना)। दैवम् (दिव्

= तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। तत् (सर्वनाम)। उ (अव्यय, निपात)। सुप्तस्य (सुप् - स्वप् = सोना)। तथा (अव्यय)। एव (अव्यय)। दूरम् (अव्यय)। गमम् (गम् = जाना)। ज्योतिषाम् (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। एकम् (एक = एक, एक - विचार करना)। मे (सर्वनाम)। मनः (मन् - मनन करना, जानना)। शिव (शिव् = कल्याण करना)। संकल्पम् (कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। अस्तु - हो॥ 1॥

159. येन कर्माणि अपसो मनीषिणो,
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यत् अपूर्वम् यक्षम् अन्तः प्रजानाम्,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु॥ 2॥

मन्त्रार्थ - येन जिसके द्वारा **कर्माणि** कर्म **अपसो** पालनकर्ता **मनीषिणो** मनीषी (या मेधावी) **धीराः** धैर्यशाली **यज्ञे** यज्ञ में, देवपूजा, संगतिकरण तथा दान में (तथा) **विदथेषु** ज्ञान प्राप्ति में (अथवा ज्ञानियों में) **कृण्वन्ति** करते हैं, **यत्** जो **अपूर्वम्** अपूर्व (अद्वितीय या विलक्षण) **प्रजानाम्** प्रजाओं के **अन्तः** भीतर **यक्षम्** पूजनीय (है), **तत** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शुभ सङ्कल्प वाला **अस्तु** हो ।

भावार्थ - महान् गुणवान् लोकहितकारी व्यक्ति मन की शक्ति से श्रेष्ठ कार्य करते हैं। यदि मन ही निर्बल तथा दूषित हो तो उत्कृष्ट कार्य सम्भव नहीं हैं। अपः शब्द का अर्थ पालनकर्ता है। जल को जीवन का प्रमुख आधार मानकर अपः को सामान्यतः जल भी कहते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - येन (सर्वनाम)। कर्माणि (कृ - करना)। अपसो (अप = पालन करना)। मनीषिणो (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। यज्ञे (यज - देवपूजा करना, देना, संगति करना)। कृण्वन्ति (कृ - करना)। विदथेषु (विद्= जानना)। धीराः (धी

- धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना)। यत् (सर्वनाम)। अपूर्वम् (अ - नहीं, पूर्व - पहले)। यक्षम् (यक्ष = पूजा करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। प्रजानाम् (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। तत् (सर्वनाम)। मे (सर्वनाम)। मनः (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। शिव (शिव् = कल्याण करना)। संकल्पम् (कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। अस्तु (अस् - होना)॥ 2॥

160. यत् प्रज्ञानम् उत चेतो धृतिः च,
यत् ज्योतिः अन्तः अमृतम् प्रजासु।
यस्मात् न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु॥॥ 3॥

मन्त्रार्थ - यत् जो **प्रज्ञानम्** प्रज्ञान, **चेतो** चेतना प्रदान करने वाला, सचेत करने वाला **च** और **धृतिः** धैर्य धारण कराने वाला (है), **यत्** जो **प्रजासु** प्रजाओं के **अन्तः** भीतर **अमृतम्** अमृत, शाश्वत् (है), **यस्मात्** जिसके **ऋते** विना **किञ्चन** कोई **कर्म** कार्य **न** नहीं **क्रियते** किया जाता है, **तत्** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शुभ सङ्कल्प वाला **अस्तु** हो।

भावार्थ - यहाँ मन को अमृत ज्योति कहा गया है जो प्राणियों में स्थित है। मन के विना कोई कार्य सम्भव नहीं है। वह चेतन भी है। स्पष्ट है कि ये ही गुण तथा लक्षण आत्मा के भी माने जाते हैं। आत्मा प्राणियों में व्याप्त परमात्मा की चेतन शक्ति है तथा परमात्मा के उस चेतन आवेषण से कार्य करने वाली शक्ति मन ही है जो कर्मो के लिए उत्तरदायी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यत् (सर्वनाम)। प्रज्ञानम् (ज्ञा - जानना, समझना)। उत (अव्यय, निपात)। चेतो (चित = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना)। धृतिः (धृ - रहना, स्थिर रहना, धारण करना, पास रखना, युक्त होना)। च (अव्यय)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। अमृतम् (अ - नहीं, मृ = मरना)। प्रजासु (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। यस्मात् (सर्वनाम)। न (अव्यय)। ऋते (अव्यय)।

किञ्चन (किम् + चन)। कर्म (कृ - करना)। क्रियते (कृ - करना)। तत् (सर्वनाम)। मे (सर्वनाम)। मनः (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। शिव (शिव् = कल्याण करना)। संकल्पम् (कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। अस्तु (अस् - होना)॥ 3॥

161. येन इदम् भूतम् भुवनम् भविष्यत्,
परिगृहीतम् अमृतेन सर्वम्।
येन यज्ञः तायते सप्तहोता,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु॥ 4॥

मन्त्रार्थ- येन जिससे **इदम्** यह **अमृतेन** अमृत (मन) द्वारा **भूतम्** भूत, **भुवनम्** वर्तमान **भविष्यत्** भविष्य **परिगृहीतम्** परिगृहीत हैं अर्थात् अधिगत किये गये हैं, **येन** जिसके द्वारा **सप्तहोता** सप्तहोता **यज्ञः** यज्ञ **तायते** विस्तार पाते हैं अर्थात् सम्पन्न होते हैं, **तत्** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शुभ सङ्कल्प वाला **अस्तु** हो।

भावार्थ - मन ही भूत, वर्तमान तथा भविष्य को परिग्रहीत किये हुए है, पकड़े या नियन्त्रित किये हुए है। तीनों काल- विभागों के कार्य तथा परिणाम मन पर निर्भर हैं। आत्मा- परमात्मा को कर्म तथा फल से परे माना गया है। यज्ञ का विस्तार करने वाला मन है तो उसका फल भी उसी पर निर्भर है तथा उसी के लिए हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- येन (सर्वनाम)। इदम् (सर्वनाम)। भूतम् (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। भुवनम् (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। भविष्यत् (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। परिगृहीतम् (गृह - लेना, स्वीकार करना)। अमृतेन (अ - नहीं, मृ = मरना, देहत्याग करना)। सर्वम् (सर्वनाम)। यज्ञः (यज् = देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। तायते (ताय -संरक्षण करना, फैलाना, लम्बा करना)। सप्तहोता (सप्त - सात, हु - दान करना, तृप्त करना, आदान-प्रदान करना, खाना, भक्षण करना, लेना, ग्रहण करना, हु-ह्वे

= शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। तत् (सर्वनाम)। मे (सर्वनाम)। मनः (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। शिव (शिव् = कल्याण करना)। संकल्पम् (कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। अस्तु (अस् - होना)॥ 4॥

162. यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि यस्मिन्,
प्रतिष्ठिता रथनाभौ इव अराः।
यस्मिन् चित्तम् सर्वम् ओतम् प्रजानाम्,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु॥ 5॥

मन्त्रार्थ - यस्मिन् जिसमें **ऋचः** ऋचायें, **साम** साम, **यजूंषि** यजुष् **रथनाभौ** रथ की नाभि या केन्द्र में **अराः** अरों की **इव** भाँति **प्रतिष्ठिता** प्रतिष्ठित (हैं), **यस्मिन्** जिसमें **सर्वम्** सभी **प्रजानाम** प्राणियों का **चित्तम्** चित्त अर्थात् चेतना या ज्ञान **ओतम्** ओत- प्रोत (है), **तत्** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शुभ सङ्कल्पवाला **अस्तु** हो।

भावार्थ - सभी वेद मन्त्र मन में प्रतिष्ठित हैं। चित्त या चेतना शक्ति भी मन में ओत- प्रोत है। हमें साधना द्वारा उस शक्ति को जाग्रत करना है। वेद मन्त्रों को मन में प्रतिष्ठित करने के साथ साधना करें तो मन चेतन शक्ति से ओत- प्रोत हो ही जायेगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यस्मिन् (सर्वनाम)। ऋचः (ऋच - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)। यजूंषि (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। प्रतिष्ठिता (तिष्ठ-स्था - स्थित होना, ठहरना, मार्ग प्रतीक्षा करना)। रथ (रथ = जाना, ले जाना)। नाभौ (नभ = मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। इव (अव्यय)। अराः (**अर्-ऋ - गति करना,** जाना, जानना, पाना, शब्द करना, **व्याप्त होना, महत्व दिखाना, हिंसा करना**)। चित्तम् (चित - विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। सर्वम् (सर्वनाम)। ओतम् (स्थित या व्याप्त)। प्रजानाम् (जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। तत् (सर्वनाम)। मे (सर्वनाम)। मनः (मन - जानना, समझना, विचार करना, मानना)। शिव (शिव् = कल्याण करना)। संकल्पम्

(सम् - सम्यक् रूप से, कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। अस्तु (अस् - होना)॥ 5॥

163. सुषारथिः अश्वान् इव यत् मनुष्यान्,
नेनीयते अभीशुभिः वाजिनः इव।
हृत् प्रतिष्ठम् यत् अजिरम् जविष्ठम्,
तत् मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु॥ 6॥

मन्त्रार्थ - सुषारथिः अच्छा सारथी **इव** के समान **वाजिनः** वेगवान् **अश्वान्** घोड़ों को **अभीशुभिः** शासन-शक्ति, अधिकार द्वारा (रस्सियों या लगाम द्वारा) **नेनीयते** ले जाता है, **इव** उसी तरह **यत्** जो **मनुष्यान्** मनुष्यों को **नेनीयते** ले जाता है, **यत्** जो **हृत्** हृदय में **प्रतिष्ठम्** प्रतिष्ठित **अजिरम्** गतिशील, जरा रहित **जविष्ठम्** अत्यन्त वेगवान् (है), **तत्** वह **मे** मेरा **मनः** मन **शिव-संकल्पम्** शुभ सङ्कल्पवाला **अस्तु** हो।

भावार्थ - कुशल सारथी के समान मन ही जीवन रूपी रथ का सञ्चालन करता है। अतः परमात्मा से एक ही प्रार्थना है कि मेरा मन शिव-सङ्कल्पवान् हो। यदि मन में शिव अर्थात् कल्याणकारी सङ्कल्प होंगे तो हमारा जीवन श्रेष्ठ होगा, समाज सुखी होगा तथा मानवता की उन्नति होगी।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सुषारथि (सु - अच्छा, स - सहित, साथ, रथ् = जाना, ले जाना)। अश्वान् (अश- पहुँचना, पाना, व्याप्त होना)। इव (अव्यय)। यत् (सर्वनाम)। मनुष्यान् (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। नेनीयते (नी - पहुँचाना, प्राप्त होना, मार्ग दिखाना, पाना, मिलना, ले जाना)। अभीशुभिः (ईश- शासन करना, अधिकार होना)। वाजिनः (वाज् - गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना)। हृत् (हृ - ले जाना, पहुँचाना, लेना, ग्रहण करना)। प्रतिष्ठिम् (तिष्ठ-स्था - स्थित होना, ठहरना, मार्ग प्रतीक्षा करना)। अजिरम् (अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना, जृ - जीर्ण होना, वृद्ध होना)। जविष्ठम् (जु - जाना, वेग से जाना, दौड़ना, जल्दी जाना, भागना)। तत् (सर्वनाम)। मे

(सर्वनाम)। मनः (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। शिव (शिव् = कल्याण करना)। संकल्पम् (सम् - सम्यक् रूप से, कल्प - शक्तिमान होना, समर्थ होना, कल्पना करना, विचार करना)। अस्तु (अस् - होना)॥ 6॥

सूक्त - 2

164. पितुम् नु स्तोषम् महो, धर्माणम् तविषीम्। यस्य त्रितो वि ओजसा, वृत्रम् विपर्वम् अर्दयत् ॥ 7॥

मन्त्रार्थ- महो महान् **धर्माणम्** धारणकर्ता **तविषीम्** प्रकाशमान को, **पितुम्** पितु (गति-कारक, पालक) की **स्तोषम्** स्तुति करते हैं। **यस्य** जिसके **वि** विशेष **त्रिता** त्रित **ओजसा** ओज से **विपर्वम्** विपर्व **वृत्रम्** वृत्र को **अर्दयत्** अर्दित किया।

भावार्थ- तविषीम् का भावार्थ विद्वानों ने बल किया है। तु धातु का अर्थ गति, वृद्धि, हिंसा करना है जो बल से ही सम्भव है। पितुम् शब्द पि धातु (गति करना) तथा पा धातु (पालन करना) से निष्पन्न होता है। पितुम् का भावार्थ अन्न किया गया है। गति का कारक तथा पालन कर्ता अन्न तो होता ही है। अर्द धातु का गति, याचना, हिंसा करना है। हिंसा में वध करना, मार डालना भी समाहित है। विपर्व वृत्र की हिंसा की गयी है। वृत धातु (वृत्यते) का अर्थ हिंसा करना है, अतः वृत्र का अर्थ हिंसा करने वाला हुआ। वह विपर्व है अर्थात् सामाजिक पर्वों या सन्धियो-बन्धनों को नहीं मानता है। ऐसे असामाजिक हिंसक को मारना उचित ही है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- पितुम् (पि - गति करना, पा - पालन करना, रक्षण करना)। नु (निपात, अव्यय)। स्तोषम् (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। महो (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। धर्माणम् (धृ = धारण करना)। तविषीम् (त्विष - प्रकाशित होना, चमकना)। यस्य (सर्वनाम)। त्रितो (तीन)। वि (उपसर्ग)। ओजसा (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। वृत्रम् (वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, पसन्द करना, ठहराना, निश्चित करना,

सेवा करना, चमकना, बोलना, हिंसा करना)। विपर्वम् (वि = विशेष, विना, विलोम, पर्व - पूरा करना, भरना, सन्धि-विभाग होना)। अर्दयत् (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, अर्द — मारना, वध करना, दुःख देना, सताना)॥ 7॥

165. अनु इत् अनुमते त्वम्, मन्यासै शम् च नः कृधि। क्रत्वे दक्षाय नो हिनु, प्र ण आयूंषि तारिषः॥ 8॥

मन्त्रार्थ- अनुमते हे अनुमते, **त्वम्** तुम **अनु इत् मन्यासै** अनुमति दो, **च** और **नः** हमारे लिए **शम्** कल्याण **कृधि** करो। **क्रत्वे** कृतित्व, **दक्षाय** दक्षता के लिए **नो** हमको **हिनु** गतिशील करो, **ण** (नः) हमारी **आयूंषि** आयु को **तारिषः** तार दो (सार्थक करो, बढ़ाओ)।

भावार्थ- अनुकूल मति वालों से अनुमति लेकर कार्य करना चाहिए। वे हमारे लिए कल्याणकारी हैं। उनसे कर्तव्य-प्रेरणा तथा दक्षता प्राप्त कर हम जीवन को सफल-सार्थक बना सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अनु (उपसर्ग)। इत् (अव्यय)। अनुमते (अनु = पश्चात्, पीछे, मन् =मनन करना, विचार करना)। त्वम् (सर्वनाम)। मन्यासै (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना, बन्द करना)। शम् (शम = प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, कल्याण करना)। च (अव्यय)। नः (सर्वनाम)। कृधि (कृ = करना)। क्रत्वे (कृ = करना)। दक्षाय (दक्ष - जाना, मार डालना)। नो (सर्वनाम)। हिनु (हि - जाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)। प्र (उपसर्ग)। ण (नः) (सर्वनाम)। आयूंषि (अय = जान, आयुस् - जीवनम्)। तारिषः (तृष - प्यास लगना, इच्छा करना, उत्कण्ठित होना, चाहना)॥ 8॥

166. अनु नो अद्य अनुमतिः,
यज्ञम् देवेषु मन्यताम्।
अग्निः च हव्यवाहनो,
भवतम् दाशुषे मयः॥ 9॥

मन्त्रार्थ - नो हमको **अनुमतिः** अनुमति **अद्य** आज **देवेषु** देवों में **यज्ञम्**

यजन को **मन्यताम्** मान्य करे, **च** और **हव्यवाहनो** हव्यवाहन **अग्निः** अग्नि **दाशुषे** दानी के लिए **मयः** मय (गति, ज्ञान) **भवतम्** हो।

भावार्थ- हमारी मति अनुकूल हो, सभी की अनुमति प्राप्त हो, इस प्रकार यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान जैसे सत्कर्म देवों में अनुमन्य हों। यजन जैसे उत्तम कर्म भी इस प्रकार न किये जायें जिसमें देवों की अनुमति न हो। यदि दुर्भावना से मात्र दिखावे के लिए अथवा अहंकार-पोषण के लिए यजन किया जाये तो उसे भी देव-शक्तियों की अनुमति नहीं होती है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : अनु (उपसर्ग)। नो (सर्वनाम)। अद्य (अव्यय)। अनुमतिः (अनु = पश्चात्, पीछे, अन् = चेतन होना, जीवन होना, सामर्थ्य होना, मन् - मनन करना, विचार करना)। यज्ञम् (यज - देवपूजा करना, देना, संगति करना)। देवेषु (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। मन्यताम् (मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना)। अग्निः (अग् = ऊर्ध्वगति करना)। च (अव्यय)। हव्यवाहनो (हु = आदान-प्रदान करना, देना, वह् - वहन करना, ले जाना)। भवतम् (भू = होना)। दाशुषे (दा = देना)। मयः (मय् - जाना, जानना, पाना)॥ 9॥

167. सिनीवालि पृथुष्टुके, या देवानाम् असि स्वसा। जुषस्व हव्यम् आहुतम्, प्रजाम् देवि दिदिड्ढि नः॥ 10॥

मन्त्रार्थ - पृथुष्टुके विस्तृत स्तुति वाली **सिनीवालि** सिनीवालि, **या** जो **देवानाम्** देवों की **स्वसा** स्वसा **असि** हो, **आहुतम्** आहुत **हव्यम्** हव्य को **जुषस्व** सेवन करो। **देवि** हे देवि, **नः** हमारे **प्रजाम्** प्रजा को **दिदिड्ढि** प्रदान करो।

भावार्थ - सिनीवालि शब्द सि धातु से बनता है जिसका अर्थ बाँधना, गूँथना है। अतः इसका अर्थ हुआ बाँधने - गूँथने वाली शक्ति। यह देवों की स्वसा है। समाज को एकता के सूत्र में बाँधे रखना, माला में मोतियों की तरह समाज को गूँथकर रखना ही देवों का स्वभाव है। यही स्वसा होना है। स्व का अर्थ अपना है तथा सु धातु का अर्थ उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना है। देवों का स्वत्व, अपनत्व तथा सृजन-ऐश्वर्य होना ही स्वसा होना है। हू धातु का अर्थ दान करना तथा आदान - प्रदान करना होता है। जो कुछ आहुत है, अर्थात् दान किया गया

है अथवा समाज के लिए आदान-प्रदान - वितरण के लिए अर्पण किया गया है, उसका सेवन करने के लिए देवजन अधिकृत हैं। वे उसका उचित उपयोग, सेवन कर सकते हैं, उनसे प्रार्थना है कि हमारे प्रजा अर्थात् परिजनों को यथायोग्य प्रदान करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सिनीवालि (सि - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। पृथुष्टुके (पृथु = विस्तार होना, प्रेरणा करना, स्तु- स्तुति करना, प्रशंसा करना)। या (सर्वनाम)। देवानाम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। असि (अस् - होना)। स्वसा (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। जुषस्व (जुष् = विचार करना, सेवा करना, सन्तुष्ट करना)। हव्यम् (हु = आदान-प्रदान करना, देना)। आहुतम् (हु = देना, आदान-प्रदान करना)। प्रजाम् (प्र - बहुत, प्रकृष्ट, जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। देवि (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। दिदिड्ढि (दा = देना, सौपना, प्रदान करना)। नः (सर्वनाम)॥ 10॥

168. पञ्च नद्यः सरस्वतीम्, अपि यन्ति सस्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा, सो देशे अभवत् सरित्॥ 11॥

मन्त्रार्थ- पञ्च पाँच **नद्यः** नदियाँ **सस्रोतसः** स्रोतों सहित **सरस्वतीम्** सरस्वती में **यन्ति** जाती हैं। **सो** वह **सरस्वती** सरस्वती **तु** तो **देशे** देश में **पञ्चधा** पाँच प्रकार की **सरित्** सरिता **अभवत्** हो जाती है।

भावार्थ- सरस्वती जैसी प्रमुख नदी में पाँच सहायक नदियाँ मिल जाती हैं। समुद्र में मिलने से पूर्व सरस्वती नदी भी पाँच धाराओं में विभाजित हो जाती है। साधारण अर्थ में हम समझ सकते हैं कि यह तो सामान्य भौगोलिक तथ्य है जो सरस्वती जैसी सभी नदियों के लिए सत्य है कि प्रमुख नदियों में अनेक सहायक नदियाँ मिलती हैं तथा समुद्र में मिलने से पूर्व नदियाँ अनेक धाराओं में विभाजित हो जाती है। इस प्रतीक के साथ बताया गया है कि सरस्वती

अर्थात् प्रसारण-क्षमता युक्त विद्या भी अनेक स्रोतों से प्राप्त कर विद्वान् उसे अत्मसात् कर लेते हैं तथा अनेक धाराओं में प्रवाहित-प्रसारित कर समाज में उसका विस्तार करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- पञ्च (संख्या)। नद्यः (नद् - शब्द करना, झंकार करना, चमकना)। सरस्वतीम् (सृ - बहना, जाना, सरकना)। अपि (अव्यय)। यन्ति (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना, जानना)। सस्रोतसः (स - साथ, सहित, स्रु = जाना, जानना, पाना, बहना)। सरस्वती (सृ - बहना, जाना, सरकना)। तु (निपात, अव्यय)। पञ्चधा (पञ्च = पाँच, धा - धारण करना)। सो (सर्वनाम)। देशे (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना)। अभवत् (भू- होना)। सरित् (सृ - जाना, सरकना)॥ 11॥

सूक्त - 3

169. त्वम् अग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिः,
देवो देवानाम् अभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मना अपसो,
अजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः॥ 12॥

मन्त्रार्थ - अग्ने हे अग्नि, **त्वम्** तुम **प्रथमो** प्रथम **अङ्गिरा** अंगिरा **ऋषिः** ऋषि **देवानाम्** देवों के **देवो** देव **शिवः** कल्याणकारी **सखा** सखा **अभवः** हो गये। **अपसो** अपः को **विद्मना** जानने वाले **कवयो** कविगणों ने **तव** तुम्हारे **व्रते** व्रत में **भ्राजदृष्टयः** भ्राजदृष्टि **मरुतो** मरुतों को **अजायन्त** उत्पन्न किया।

भावार्थ - अग्नि का भावार्थ अग्रणी परमात्मा है। वही देवों के देव हैं, सबमें प्रथम हैं, शिव अर्थात् कल्याणकारी सखा या मित्र हैं। भ्राजदृष्टि अर्थात् प्रकाशमय दृष्टिकोण वाले। मरुत् का अर्थात् है मरणशील, इसका भावार्थ सामान्यतः प्राणी तथा विशेष रूप से मनुष्य लिया जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - त्वम् (सर्वनाम)। अग्ने (अग् = ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे जाना)। प्रथमो (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। अंगिरा (अंग् = चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। ऋषिः (ऋष् = जाना,

जानना, पाना, अन्तर्गमन करना, अन्तर्दृष्टि होना)। देवो (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। देवानाम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। अभवः (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। शिवः (शिव् = कल्याण करना)। सखा (सख् = मित्र होना)। तव (सर्वनाम)। व्रते (वृ = वरण करना)। कवयो (कु, कव् = शब्द करना)। विद्मना (विद्= जानना)। अपसो (अप = पालन करना)। अजायन्त (जन् = उत्पन्न होना या करना)। मरुतो (मृ = मरना)। भ्राजदृष्टया (भ्राज् = चमकना, प्रकाशित होना, दृश्-पश्य -देखना)12॥

170. त्वम् नो अग्ने तव देव पायुभिः,
मघोनो रक्ष तन्वः च वन्द्य।
त्राता तोकस्य तनये गवाम् असि,
अनिमेषम् रक्षमाणः तव व्रते॥ 13॥

मन्त्रार्थ- अग्ने हे अग्नि **देव** देव, **तव** तुम्हारे **तन्वः** तन्व **वन्द्य** वन्द्य (हैं), **च** और **त्वम्** तुम **पायुभिः** रक्षणों द्वारा **मघोनो** मघ (ऐश्वर्य) की **रक्ष** रक्षा करो। **तव** तुम्हारे **व्रते** व्रत में **अनिमेषम्** अनिमेष **रक्षमाणः** रक्षा करते हुए **तोकस्य** तोक के **तनये** तन के लिए **गवाम्** गो के **त्राता** त्राता, रक्षक हो।

भावार्थ- परमात्मा की उपासना करते रहें, परमात्मा ही प्रतिपल हमारी रक्षा करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- त्वम् (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अग्ने (अग् = ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे जाना)। तव (सर्वनाम)। देव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। पायुभिः (पा = पालन करना, बचाना, रक्षा करना)। मघोनो (मघ् = ऐश्वर्य होना)। रक्ष (रक्ष = रक्षा करना, बचाना)। तन्वः (तनु = विस्तार करना)। च (अव्यय)। वन्द्यः (वन्द् = स्तुति करना, प्रणाम करना, वन्दना करना, प्रशंसा करना)। त्राता (त्रै = पालन करना, रक्षा करना, पोषण करना)। तोकस्य (तु - गति, वृद्धि, हिंसा करना, तुज् - बल होना, दान करना, निवास करना, ग्रहण करना, चमकना)। तनये (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना)। गवाम् (गु - अस्पष्ट

बोलना, शब्द करना)। असि (अस् - होना)। अनिमेषम् (अ = नहीं, मिष् - सींचना, प्रोक्षण करना, निमेष् - आँख बन्द करना)। रक्षमाणः (रक्ष = रक्षा करना, बचाना)। व्रते (वृ - नियोजित करना, आच्छादित करना, वरण करना)13 ॥

171. उत्तानायाम् अव भरा चिकित्वान्,
सद्यः प्रवीता वृषणम् जजान।
अरुषस्तूपो रुशद् अस्य पाज,
इडायाः पुत्रो वयुने अजनिष्ट ॥ 14 ॥

मन्त्रार्थ- चिकित्वान् विद्वान्, **उत्तानायाम्** उत्तान में, उत्तम विस्तार में **अव भरा** भरो। **सद्यः** सद्य, अभी, शीघ्र ही **प्रवीता** प्रवीत, प्राप्त हुए **वृषणम्** वृषण को, वर्षा करने वाले को **जजान** उत्पन्न किया। **अस्य** इसके **अरुषस्तूपो** अहिंसक स्तूप वाले, क्रोधहीन स्तुति पालक **रुशद्** रुशद् **पाज** पाज, पालन, रक्षा करने वाला **इडायाः** इडा के **पुत्रो** पुत्र ने **वयुने** वयन (उड्डयन) में **अजनिष्ट** उत्पन्न किया ॥ 14 ॥

भावार्थ- उत्तान का अर्थ है उत्तम विस्तार। सद्य प्रवीत अर्थात् अभी प्राप्त हुए वृषण अर्थात् वर्षा करने वाले को विद्वान ने उत्पन्न किया है। इसका भाव है कि समाज में विद्या, सद्भावना, सद्गुणों की वर्षा करने वाले सत्पुरुषों को प्रेरणा तथा मार्गदर्शन देकर विद्वान् ही कर्तव्यपथ पर सक्रिय करते हैं, यही भाव है कि वे ऐसे कार्यकर्ता सत्पुरुष उत्पन्न करते हैं। रुशत् या रुशद् पद का अर्थ विद्वानों ने प्रकाशमान किया है। रुंश धातु का अर्थ प्रकाश करना, चमकना होता है। परन्तु रुश धातु का अर्थ तो हिंसा करना है। पाज शब्द को पा धातु से उत्पन्न मानने पर पालन करने के अर्थ में ही मानना चाहिए। पालन-रक्षण को जन्म देना, उत्पन्न करना बलकारक हो सकता है। सम्भवतः इसी विचार से पाज शब्द का अर्थ बल भी किया जाता रहा है।॥14 ॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- उत्तानायाम् (तन् = विस्तार, फैलाना, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना)। अव (अव् = रक्षा करना)। भरा (भृ = धारण, पोषण करना, पूर्ण करना)। चिकित्वान् (कित् - जानना)। सद्यः (सद् - जाना,

चलना, शक्तिहीन होना, म्लान होना, सूखना, मुर्झाना, भग्न करना, नष्ट करना)। प्रवीता (वी = जाना, व्याप्त होना, कान्ति होना)। वृषणम् (वृष - विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, प्रजोत्पत्ति में समर्थ होना, गर्भवती होना) जजान (जन- उत्पन्न करना)। अरुषस्तूपो (अ - नहीं, रुष - रोष करना, क्रोध करना, हिंसा करना, स्तु - स्तुति करना, स्तुप - राशि करना, ढेर करना, एकत्र करना)। रुशद् (रुश - हिंसा करना, रुंश - चमकना, प्रकाशित होना, बोलना) अस्य (सर्वनाम)। पाज (पा - रक्षा करना, पालन करना)। इडायाः (ईड् = स्तुति करना)। पुत्रो (पा - रक्षा करना, पालन करना)। वयुने (वय = जाना, जानना, पाना, उड़ना)। अजनिष्ट (जन - उत्पन्न करना)।॥14 ॥

172. इडायाः त्वा पदे वयम्, नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो नि धीमहि, अग्ने हव्याय वोढवे ॥ 15 ॥

मन्त्रार्थ- त्वा तुम्हारे **इडायाः** इडा (स्तुति) के **पदे** पद में **वयम्** हम **नाभा** नभ (और) **पृथिव्या** पृथिवी को **अधि** अधिगत किये हुए **जातवेदो** जातवेद को **धीमहि** धारण करते हैं। **अग्ने** हे अग्नि, **हव्याय** हव्य के लिए **वोढवे** वहन करते हैं।

भावार्थ- जातवेद अर्थात् जिसने वेद को उत्पन्न किया है तथा वेद को जानने वाला है। वह नभ और पृथिवी को अधिगत किये हुए है। परमात्मा तथा उपासना द्वारा उससे एकाकार हो चुके ऋषि उपासक में ही ऐसे गुण हो सकते हैं। परमात्मा की स्तुति में उसको धारण करना आवश्यक है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इडायाः (ईड् = स्तुति करना)। त्वा (सर्वनाम)। पदे (पद् — जाना) वयम् (सर्वनाम)। नाभा (नभ - मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। पृथिव्या (पृथ् = व्याप्त होना, फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना)। अधि (उपसग)। जातवेदो (जन् = उत्पन्न होना, विद् = जानना)। नि (अव्यय)। धीमहि (धी - धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना)। अग्ने (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। हव्याय (हु = देना, आदान-प्रदान करना)। वोढवे (वह - बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)।॥15 ॥

सूक्त - 4

173. प्र मन्महे शवसानाय शूषम्,
आङ्गूषम् गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्।
सुवृक्तिभिः स्तुवते ऋग्मियाय,
अर्चाम अर्कम् नरे विश्रुताय॥ 16॥

मन्त्रार्थ- शवसानाय गति-सामर्थ्य के लिए **शूषम्** उत्पत्ति कर्ता को, **अङ्गिरस्वत्** अंगिरा के समान **गिर्वणसे** वाणीयुक्त **आङ्गूषम्** आंगूष को **प्र मन्महे** प्रकृष्ट रूप से मानता हूँ। **सुवृक्तिभिः** सुवृक्तियों द्वारा **स्तुवते** स्तुत्य, **ऋग्मियाय** ऋग्मय, **नरे** नर में **विश्रुताय** विश्रुत के लिए **अर्कम्** अर्क की **अर्चाम** अर्चना करते हैं।

भावार्थ- शव धातु का अर्थ गति करना है। शवसान का अर्थ गति की इच्छायुक्त माना गया है। सान प्रत्यय को इच्छा करने के अर्थ में प्रयोग करते हैं। अंग धातु का अर्थ गति करना, अंगभूत होना है। अतः आंगूष का अर्थ गति तथा अंगभूत होने की कामना करने वाला होगा। इसका भावार्थ स्तुति भी किया गया है। स्तुति-उपासना का भाव सांसारिकता से परमात्मा की ओर चलना तथा परमात्मा का अंगभूत होने की सर्वोच्च कामना ही है। सुवृक्ति अर्थात् सुन्दर तथा अच्छी वृक्ति। वृ धातु का अर्थ वरण करना, सेवा करना आदि हैं तथा वृक् धातु का अर्थ ग्रहण करना, आदान करना है। परमात्मा की अर्चना के लिए अच्छाई का वरण, सेवा-भावना के साथ ही अच्छाई का ग्रहण करना भी महत्वपूर्ण है। ऋग्मिय का अर्थ ऋग्मय अर्थात् ऋचाओं से युक्त है। उपासना में ऋचाओं अर्थात् वेदमन्त्रों का महत्व सर्वोपरि है। अर्क धातु का अर्थ स्तुति करना, प्रकाश करना, ग्रहण करना है। परमात्मा ही प्रकाश करने वाला है, वही स्तुति तथा ग्रहण करने योग्य है, हम उसकी ही अर्चना करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्र (उपसर्ग)। मन्महे (मन - जानना, समझना, विचार करना, मानना)। शवसानाय (शव - जाना, समीप जाना या आना, बलना, फिरना, बदले में देना)। शूषम् (शूष - जनना, उत्पन्न करना,

प्रसूत होना)। आंगूषम् (अङ्ग् = चलना, समीप जाना, जानना, पाना, अंकुरित होना, अंग-अवयव होना)। गिर्वणसे (गृ - समझना, जानना, जाना, वन - शब्द करना)। अंगिरस्वत् (अङ्ग् = चलना, समीप जाना, जानना, पाना, अंकुरित होना, अंग-अवयव होना)। सुवृक्तिभिः (वृक - लेना, मान्य करना, स्वीकार करना)। स्तुवते (स्तु = स्तुति, पूजा, सेवा करना)। ऋग्मियाय (ऋच - प्रशंसा करना, स्तुति करना, आच्छादित करना, ढकना, चमकना)। अर्चाम् (अर्च - पूजा करना, मान करना, सेवा करना)। अर्कम् (अर्क - प्रशंसा करना, स्तुति करना, ग्रहण करना)। नरे (नृ = ले जाना)। विश्रुताय (वि - विशेष, श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)।।16।।

174. प्र वो महे महि नमो भरध्वम्,
आंगूष्यम् शवसानाय साम।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा,
अर्चन्तो अंगिरसो गा अविन्दन्॥ 17॥

मन्त्रार्थ- महे हे महान्, **वो** तुम्हारा **महि** पूजन, **नमो** नमन (करते हैं)। **शवसानाय** गति-सामर्थ्य की कामना करने वालों के लिए **आंगूष्यम्** आंगूष्य **साम** साम का **भरध्वम्** पूर्ण करो, भरण करो, **येना** जिससे **नः** हमारे **पदज्ञा** पदज्ञाता, **पूर्वे** पूर्व **पितरः** पितरों ने **अर्चन्तो** अर्चन करते हुए **अंगिरसो** अंगिरस् का **गा** गान, गति को **अविन्दन्** प्राप्त किया।

भावार्थ- स्तुति, पूजन, उपासना से हम सभी मनोकामना की पूर्ति कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्र (उपसर्ग)। वः (सर्वनाम)। महे (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। महि (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। नमो (नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। भरध्वम् (भृ = पूर्ण करना, भरना)। आंगूष्यम् (अङ्ग् = चलना, समीप जाना, जानना, पाना, अंकुरित होना, अंग-अवयव होना)। शवसानाय (शव - जाना, समीप जाना या आना, प्रतिदान देना)। साम (साम - शान्त करना, समाधान करना, सान्त्वना देना)।

येन (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। नः (सर्वनाम)। पूर्वे (पूर्व - पूर्ण करना, भरना)। पितरः (पा = पालन करना)। पदज्ञा (पद्- जाना, ज्ञा - जानना)। अर्चन्तो (अर्च - पूजा करना, मान करना, सेवा करना)। अंगिरसो (अंग् = चलना, समीप जाना)। गा (गा - गायन करना, जाना, गमन करना)। अविन्दन् (विन्द् = लाभ होना, प्राप्त करना, पाना)।|17 ||

175. इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः,
सुन्वन्ति सोमम् दधति प्रयांसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिम् जनानाम्,
इन्द्र त्वत् आ कश्चन हि प्र केतः ॥ 18 ॥

मन्त्रार्थ- त्वा तुमको **सोम्यासः** सोम्य **सखायः** सखा **इच्छन्ति** चाहते हैं। **इन्द्र** हे इन्द्र, **त्वत्** तुमसे **आ कश्चन** कोई **प्र केतः** प्रकृष्ट ज्ञानी **हि** ही **सोमम्** सोम का **सुन्वन्ति** सवन करते हैं, **प्रयांसि** प्रयाः **दधति** धारण करते हैं, **जनानाम्** लोगों की **अभिशस्तिम्** अभिशस्ति (निन्दा) **तितिक्षन्ते** सहन करते हैं।

भावार्थ- सोम अर्थात् दिव्य ऐश्वर्य का सवन प्रकृष्ट ज्ञानी ही कर सकते हैं। सवन का अर्थ है रस निकालना, जैसे वनस्पतियों से रस को निचोड़कर या उबालकर निकालते हैं। इसका भाव यह है कि जिस प्रकार वनस्पतियों से रस निकालने के लिए उचित ज्ञान-कौशल की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार परमात्मा से आध्यात्मिक ऐश्वर्य सोम का आसवन करने के लिए भी अनुशासित प्रयास की आवश्यकता होती है। समाज के दुष्ट, स्वार्थी तथा इसका महत्व न समझ पाने वाले साधारण लोग स्वाभाविक रूप से निन्दा करते हैं, साधक को उसे सहन करना पड़ता है। विचलित हुए विना धैर्यपूर्वक साधना - उपासना करते रहने से लाभ मिलता ही है, यह विश्वास रखना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इच्छन्ति (इषु - इच्छा करना, चाहना)। त्वा (सर्वनाम)। सोम्यासः (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। सखायः (सख् = मित्र होना)। सुन्वन्ति (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना,

दबाना, हिलाना)। सोमम् (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। दधति (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। प्रयांसि (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, या - जाना, जानना, पाना, प्री = प्रेम करना, तृप्त करना, सन्तुष्ट करना, कामना करना)। तितिक्षन्ते (तितिक्षा - सहन करना, क्षमा करना)। अभिशस्तिम् (शस् = हिंसा करना, निन्दा करना, शंस् = चाहना, स्तुति करना)। जनानाम् (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना)। इन्द्र (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। त्वत् (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। कश्चन (अव्यय)। हि (अव्यय)। प्र (उपसर्ग)। केतः (केत - निवास करना, आमन्त्रित करना, परामर्श देना)।|18 ||

176. न ते दूरे परमा चित् रजांसि,
आ तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम्।
स्थिराय वृष्णे सवना कृता इमा,
युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥ 19 ॥

मन्त्रार्थ- परमा चित् परम **रजांसि** रजः **ते** तुमसे **दूरे** दूर **न** नहीं है। **हरिवो** हे हरिवान्, **हरिभ्याम्** हरियुगल के लिए **याहि** आयें। **स्थिराय** स्थिर **वृष्णे** बल-वर्षा करने वाले के लिए **समिधाने** सम्यक् प्रकाशित **अग्नौ** अग्नि में **ग्रावाणः** ग्रावाण (स्तुति) **युक्ता** युक्त **इमा** यह **सवना** सवन **कृता** किया गया है।

भावार्थ - परमात्मा से कुछ भी दूर नहीं है। परमात्मा को हरि कहते हैं, यहाँ हरिवान् अर्थात् हरियुक्त कहा गया है। परमात्मा हरि है, हरिवान् है और हरियुगल के लिए आता है। हरि का अर्थ है हरण करने वाला। परमात्मा हमारे दुःख-कष्टों तथा दोष-दुर्गुणों का भी हरण करता है। इसी लिए वह हरि है, ऐसी शक्तियों से युक्त होने से हरिवान् है। वह आता है हरियुगल के लिए। हमको भी परमात्मा की तरह हरि होना चाहिए, दूसरों के दुःखों-कष्टों का निवारण करने का प्रयास करना चाहिए। अकेले नहीं, किसी को साथ लेकर ऐसा प्रयास करना चाहिए। युगल का भावार्थ परिवार में दम्पति, समाज में गुरु-शिष्य आदि ले सकते हैं। मिलकर प्रयास करने से ही सफलता मिलती है, एकाकी प्रयास में कठिनाई अधिक होती है।

विशेष - चित् निपात अर्थात् अव्यय है। इसका प्रयोग इसके साथ आये शब्द पर बल देने के लिए होता है। इस प्रकार इसका अर्थ ही, भी के रूप में किया जाता है। चित् धातु का अर्थ चेतन होना, चेतना होना होता है। परमा चित् का अर्थ परम चेतना ले सकते हैं। दूरम् शब्द अव्यय के रूप में भी मान्य है। दु तथा दू धातुओं का अर्थ जाना होता है। इससे भी दूरम् का अर्थ गया हुआ अर्थात् दूर हो गया मान सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- न (अव्यय)। ते (सर्वनाम)। दूरे (दु, दू - जाना)। परमा (सर्वनाम)। चित् (चित = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। रजांसि (रज - रज होना, सूक्ष्म होना)। आ (उपसर्ग)। तु (निपात, अव्यय)। प्र (उपसर्ग)। याहि (या- जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। हरिवो (ह्व = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना)। हरिभ्याम् (ह्व = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। स्थिराय (स्था - ठहरना, स्थिर होाना)। वृष्णे (वृष् = उच्च पराक्रम् करना, वर्षा होना, सींचना)। सवना (सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न करना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना)। कृता (कृ = करना)। इमा = यह, इसको (सर्वनाम)। युक्ता (युज् -योग करना, मिलाप करना, मिलाना)। ग्रावाणः (गृ = सींचना, समझना, जानना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझाना, बताना)। समिधाने (सम् + इत् + आ, सम् + इधा, इन्ध् - प्रकाशित होना)। अग्नौ (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)।।19।।

177. अषाढम् युत्सु पृतनासु पप्रिम्,
स्वर्षाम् अप्साम् वृजनस्य गोपाम्।
भरेषुजाम् सुक्षितिम् सुश्रवसम्,
जयन्तम् त्वाम् अनु मदेम सोम॥ 20॥

मन्त्रार्थ- सोम हे सोम, **युत्सु** - प्रकाशों में, **अषाढम्** - असहनीय या दीप्तिमान्, **पृतनासु** व्यापक, बलों में **पप्रिम्** पोषक, **स्वर्षाम्** स्वः (ऐश्वर्य), **अप्साम्** अपः का, **वृजनस्य** वृजन का **गोपाम्** पालन-रक्षण करने वाले, **भरेषुजाम्** भरण-

पोषण करने वालों में उत्पन्न होने वाले, **सुक्षितिम्** सुन्दर निवास वाले, **सुश्रवसम्** सुन्दर श्रवण वाले, **जयन्तम्** जीतने वाले **त्वाम्** तुमको (हम) **मदेम** आनन्दित करते हैं।

भावार्थ- सोम अर्थात् सृष्टिकर्ता, ऐश्वर्यवान् परमात्मा के विभिन्न गुणों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि हम ऐसे परमात्मा को आनन्दित करें। इसका भावार्थ यही है कि जो गुण परमात्मा में बताये गये हैं, यदि हम भी उनको अपनायेंगे तो परमात्मा को प्रसन्नता होगी। सभी अपने समान गुणों वालों को चाहते हैं। परमात्मा को प्रसन्न करने का उपाय उसके गुणों को यथा सम्भव धारण करना ही है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - अषाढम् (सह - सहन करना, अस् - फेंकना, उड़ाना, चमकना, प्रकाश करना)। युत्सु (युत् - चमकना, प्रकाशित होना)। पृतनासु (पृत - व्याप्त होना, बलपूर्वक निकालना)। पप्रिम् (पृ = पालन करना, पोषण करना)। स्वर्षाम् (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। अप्साम् (अप् = पालन करना)। वृजनस्य (वृज् = छोड़ना, वर्जित करना)। गोपाम् (गुप् = रक्षा करना, चमकना, बोलना)। भरेषुजाम् (भृ = धारण, पोषण करना, पूर्ण करना, जन - उत्पन्न होना)। सुक्षितिम् (सु - अच्चा, सुन्दर, क्षि = निवास करना, रहना)। सुश्रवसम् (शृ- सुनना, श्रवण करना। जयन्तम् (जि - जीतना)। त्वाम् (सर्वनाम)। अनु (उपसर्ग)। मदेम (मद – हर्षित होना, हर्षित करना)। सोम (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)।।20।।

178. सोमो धेनुम् सोमो अर्वन्तम्,
आशुम् सोमो वीरम् कर्मण्यम् ददाति।
सादन्यम् विदथ्यम् सभेयम्,
पितृश्रवणम् यो ददाशत् अस्मै॥ 21॥

मन्त्रार्थ- सोमो सोम **धेनुम्** धेनु को, **सोमो** सोम **अर्वन्तम्** अर्वन्त को, **सोमो** सोम **आशुम्** आशु **वीरम्** वीर **कर्मण्यम्** कर्मण्य को **ददाति** देता है। **यो** जिसने **सादन्यम्** सादन्य, **विदथ्यम्** विदथ्य, **सभेयम्** सभेय, **पितृश्रवणम्** पितृश्रवण

को **अस्मै** हमको **ददाशत्** देता है।

भावार्थ- सोम अर्थात् परमात्मा सुपात्र को ही देता है। उसका अनुदान पाने के लिए हमें भी सुपात्र बनना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सोमः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। धेनुम् (धिनु - प्रेम करना, सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, धी - बुद्धि होना, धे - पालना, पीना)। अर्वन्तम् (ऋ — जाना, फैलाना, अर्व - पद-प्रहार करना, हिंसा करना)। आशुम् (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। वीरम् (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। कर्मण्यम् (कृ = करना)। ददाति (दद - दान करना, देना)। सादन्यम् (साद् = जाना, ले जाना, स्थापित करना, होना)। विदथ्यम् (विद् = जानना)। सभेयम् (स - सहित, साथ, भा - प्रकाश करना)। पितृश्रवणम् (पा = पालन करना, श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। यो (सर्वनाम)। अस्मै (सर्वनाम)। ददाशत् (दद - दान करना, देना, त्याग करना)।21।।

179. त्वम् इमा ओषधीः सोम विश्वाः,
त्वम् अपो अजनयः त्वम् गाः।
त्वम् आ ततन्थ उरु अन्तरिक्षम्,
त्वम् ज्योतिषा वि तमो ववर्थ।। 22 ।।

मन्त्रार्थ- सोम हे सोम, **त्वम्** तुमने **इमा** इन **विश्वाः** सभी **ओषधीः** ओषधियों को, **त्वम्** तुमने **अपो** अपः, **त्वम्** तुमने **गाः** गाः को **अजनयः** उत्पन्न किया है। **त्वम्** तुमने **उरु** उरु **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को **ततन्थ** ताना है, विस्तृत किया है, **त्वम्** तुमने **ज्योतिषा** ज्योति से **तमो** तम को **ववर्थ** नष्ट किया।

भावार्थ- परमात्मा ने ही सभी कुछ उत्पन्न किया है, हमें इसका स्मरण रखना चाहिए। तम धातु का अर्थ इच्छा करना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना है। तमस् तथा तमिस्र शब्द रात्रि तथा अन्धकार के अर्थ में प्रचलित हैं। इच्छा, कामना, चाहना, दुःख होना ही अन्धकार है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- त्वम् (सर्वनाम)। इमा (सर्वनाम)। ओषधीः

(उषध् - चिकित्सा करना, रोग मुक्त करना)। सोम (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। विश्वाः (विश् = भीतर जाना, सभी ओर फैलना)। त्वम् (सर्वनाम)। अपो (अप् = पालन करना)। अजनयः (जन् = उत्पन्न करना)। त्वम् (सर्वनाम)। गाः (गा - गाना, गायन करना, जाना, गमन करना)। त्वम् (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। ततन्थ (तन् = विस्तार, फैलाना, शब्द करना)। उरु (उर् = जाना, चलना)। अन्तरिक्षम् **(अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)**। त्वम् (सर्वनाम)। ज्योतिषा (ज्युत = चमकना, प्रकाशित होना)। वि (उपसर्ग)। तमो (तम = इच्छा करना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। ववर्थ (वृ = त्याग करना, हटाना, आच्छादित करना)।22।।

180. देवेन नो मनसा देव सोम,
रायो भागम् सहसावन् अभि युध्य।
मा त्वा तनत् ईशिषे वीर्यस्य,
उभयेभ्यः प्र चिकित्स गविष्टौ।। 23 ।।

मन्त्रार्थ - देव हे देव **सोम** सोम, **नो** हमारे **देवेन** दिव्य **मनसा** मन से **रायो भागम्** राय-भाग **सहसावन्** सहसावन् को **अभि युध्य** योधित करो। **वीर्यस्य** बल का **तनत्** विस्तार करो। **त्वा** तुम्हारा **मा** नहीं **ईशिषे** शासन कर सकता। **गविष्टौ** गविष्ट में **उभयेभ्यः** दोनो के लिए **चिकित्स** जानो।

भावार्थ- देव सोम अर्थात् परमात्मा सर्वोपरि है। किसी बल का कितना भी विस्तार क्यों न हो जाये, वह परमात्मा की असीम शक्ति की तुलना में कुछ भी नहीं होगा। अतः उस पर शासन नहीं किया जा सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- देवेन **(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)**। नो (सर्वनाम)। मनसा (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। देव **(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)**। सोम (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, सू = प्रेरणा देना)। रायो (रय् = जाना, जानना, पाना, पहुंचना)। भागम् (भज् = सेवा करना, दान करना, भोजन पकाना)। सहसावन्

(सह = शक्तिमान् करना, सहन करना, प्रतिरोध करना)। अभि (उपसर्ग)। युध्य (युध - युद्ध करना)। मा (मा - माम्)। त्वा (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। तनत् (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना)। ईशिषे (ईश = ऐश्वर्य-अधिकार होना)। वीर्यस्य (वीर् = पराक्रम करना)। उभयेभ्यः (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। प्र (उपसर्ग)। चिकित्स (चिकित्- जानना)। गविष्टौ (गु = शब्द करना, गम्, गा = जाना, इष् - इच्छा करना, एक-एक कर चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना)।|23 ||

सूक्त - 5

181. अष्टौ वि अख्यत् ककुभः पृथिव्याः,
त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगात्,
दधत् रत्ना दाशुषे वार्याणि || 24 ||

मन्त्रार्थ- सप्त सिन्धून् सप्त सिन्धुओं की **त्री धन्व** त्रि-धन्व **योजना** योजना वाली **पृथिव्याः** पृथिवी की **अष्टौ** आठ **ककुभः** ककुभ को **वि अख्यत्** प्रकाशित करते हुए **हिरण्याक्षः** हिरण्याक्ष **सविता** सविता **देव** देव **दाशुषे** दानी के लिए **वार्याणि** वरणीय **रत्ना** रत्न **दधत्** देते हुए **आगात्** आये हैं।

भावार्थ - हिरण धातु का अर्थ शब्द करना, दीप्त होना है। इस प्रकार हिरण्य का अर्थ शब्द तथा प्रकाश के योग्य है। प्रकाश जिनके अक्षों में है, ऐसे हिरण्याक्ष देव परमात्मा को ही कहा गया है। अक्ष धातु का अर्थ व्याप्त होना है, अतः हिरण्याक्ष का अर्थ होगा प्रकाश को व्याप्त करने वाला।

विशेष :- इस मन्त्र में पृथ्वी के आठ ककुभ, त्रि धन्व, सप्त सिन्धु का उल्लेख है। ककुभ शब्द को कक अथवा कुभ धातु से निष्पन्न माना जा सकता है। कक धातु का अर्थ गर्व करना, चञ्चल होना, प्यासा होना है तथा कुभ धातु का अर्थ धारण करना, घर्षण करना है। अतः ककुभ शब्द का अर्थ गर्व, चंचलता, प्यास, धारण, घर्षण किया जा सकता है। आठ ककुभों को विख्यात करने का उल्लेख किया गया है। विख्यात करने का भावार्थ विद्वाों ने प्रकाशित

करना भी किया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अष्टौ (संख्या)। वि (उपसर्ग)। अख्यत् (ख्या - प्रसिद्ध करना, प्रख्यात करना)। ककुभः (कक - गर्व करना, चञ्चल होना, प्यासा होना, कुभ - धारण करना, घर्षण करना)। पृथिव्याः (पृथृ - व्याप्त होना, प्रकट होना)। त्री (संख्या)। धन्व (धन्व - जाना, जानना, पाना, धन - गति करना, उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना)। योजना (युज- मिलना, मिलाना, चित्त स्थिर रखना, बांधना एकत्र करना)। सप्त (संख्या)। सिन्धून (सम् - सम्यक् रूप से, सम - परिणाम होना, रूपान्तर होना, समान होना, समान विभाग होना)। हिरण्याक्षः **(हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना, अक्ष् - खेलना, देखना, व्याप्त होना, एकत्र होना)**। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। देव **(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)**। आगात् (आ - सम्यक्, गम् - जाना, आ-गम् - आना, अग = जाना, घूमना, ऊर्ध्वगति करना)। दधत् (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। रत्ना (रम् - रमना, रत् = प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना)। दाशुषे (दाश = देना)। वार्याणि (वृ = वरण करना)।|24 ||

182. हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिः,
उभे द्यावापृथिवी अन्तः ईयते।
अप अमीवाम् बाधते वेति सूर्यम्,
अभि कृष्णेन रजसा द्याम् ऋणोति || 25 ||

मन्त्रार्थ- हिरण्यपाणिः हिरण्यपाणि **विचर्षणिः** विचर्षणी **सविता** सविता **द्यावापृथिवी** द्यावा-पृथिवी **उभे** दोनो **अन्तः** भीतर **ईयते** गतिमान है। **अमीवाम्** रोगों को **अप बाधते** अपबाधित करता है, **सूर्यम्** सूर्य को **वेति** उत्पन्न, प्रकाशित, व्याप्त करता है, **कृष्णेन** कृष्ण **रजसा** रजस् से **द्याम्** द्यु को **ऋणोति** जाता है (अथवा व्याप्त करता है)।

भावार्थ- हिरण धातु का अर्थ शब्द करना, दीप्त होना है। इस प्रकार

हिरण्य का अर्थ शब्द तथा प्रकाश के योग्य है। प्रकाश जिनके हाथों में है, ऐसे हिरण्यपाणि परमात्मा को ही कहा गया है। सविता का अर्थ है उत्पन्न करने वाला, परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाला है, वह सूर्य को भी उत्पन्न करता है। वी धातु का अर्थ उत्पन्न करना, प्रकाश करना, व्याप्त करना हैं, अतः वेति में ये सभी अर्थ समाहित हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- हिरण्यपाणिः **(हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना,** हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना, पण् = स्तुति करना, व्यवहार करना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। विचर्षणिः (चर - संशय होना, विचार करना, संशय रहित होना)। उभे (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। द्यावापृथिवी (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। ईयते (ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना)। अप (उपसर्ग)। अमीवाम् (अम- रोग ग्रस्त होना)। बाधते (बाध - रोकना, अटकाव करना, बाधा देना, दुःख देना)। वेति (वे = बुनना, वी-वे = जाना, जानना, व्यापना)। सूर्यम् (सुर - पराक्रम होना, चमकना)। अभि (उपसर्ग)। कृष्णेन (कृष् = खींचना)। रजसा (रज - रज होना, सूक्ष्म होना, रंग देना, रंगना)। द्याम् (द्यु = अभिगमन करना, आक्रमण करना, आगे जाना, समीप जाना, द्युत् - प्रकाश होना, द्यै = तिरस्कार करना)। ऋणोति (ऋणु - जाना, गमन करना)।|25 ||

183. हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः,
सुमृडीकः स्ववान् यातु अर्वाङ्।
अप सेधन् रक्षसो यातुधानान्,
अस्थात् देवः प्रतिदोषम् गृणानः ।। 26 ।।

मन्त्रार्थ- हिरण्यहस्तो हिरण्यहस्त, **असुरः** असुर, **सुनीथः** सुनीथ, **सुमृडीकः** सुमृडीक, **स्ववान्** स्ववान् **अर्वाङ** अभिमुख **यातु** जायें। **रक्षसो** रक्षस्, **यातुधानान्** यातुधान, **प्रतिदोषम्** प्रत्येक दोष का **अप सेधन्** अपसेधन करते हुए **गृणानः** गृणान **देवः** देव **अस्थात्** स्थित हैं।

भावार्थ - हिरण धातु का अर्थ शब्द करना, दीप्त होना है। इस प्रकार हिरण्य का अर्थ शब्द तथा प्रकाश के योग्य है। प्रकाश जिनके हाथों में है, ऐसे हिरण्यहस्त देव परमात्मा को ही कहा गया है। असुर सहित सभी विशेषण परमात्मा के हैं। अस धातु का अर्थ प्रकाश तथा गति करना है। इसी का भावार्थ प्राण किया गया है। शब्दार्थ की दृष्टि से असुर का अर्थ प्रकाश तथा गति प्रदान करने वाला होना चाहिए। विद्वानों ने असु का अर्थ प्राण मानकर रा धातु का अर्थ दान करना लेते हुए असुर का अर्थ प्राणदाता भी किया है। नी धातु का अर्थ ले जाना है। इससे नीथा का अर्थ ले जाने वाला, नेतृत्व करने वाला होना चाहिए। नीथ धातु का अर्थ स्तुति करना मानते हुए नीथा का अर्थ स्तुति किया गया है। यातुधान शब्द में यत धातु तो स्पष्ट है। यत - यतते का अर्थ प्रयास करना, उद्योग करना है। यत - यातयति, यातयते का अर्थ दुःख देना, मारना भी है। अतः यातुधान शब्द का प्रयोग उद्योगी-कर्मशील के साथ ही दुष्टों के लिए भी होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - हिरण्यहस्तो (हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना)। असुरः **(अस् - होना, रहना, फेकना, बिखेरना, उड़ाना, प्रकाश करना, चमकाना, जाना, जानना, पाना)।** सुनीथः (नी = ले जाना, नीथ - स्तुति करना, प्रशंसा करना)। सुमृडीकः (सु - अच्छा, सुन्दर, मृड - सुख देना, प्रसन्न करना, सुखी होना, प्रसन्न होना)। स्ववान् (स्व = अपना)। यातु (या- जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। अर्वाङ् (अव्यय)। अप (उपसर्ग)। सेधन् (सिध् = जाना, सिद्ध होना, जीत होना, पूर्ण होना)। रक्षसो (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। यातुधानान् (यत - प्रयास करना, उद्योग करना, दुःख पहुँचना, धा = धारण करना)। अस्थात् (स्था- स्थित होना, ठहरना)। देवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। प्रतिदोषम् (दुष् - दुष्टाचरण करना, दुष्ट रीति से वर्तना, दूषित होना, दुहना)। गृणानः (गृ-गृण् = शब्द करना)।|26 ||

184. ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो,
अरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।
तेभिः नो अद्य पथिभिः सुगेभि,

रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव॥ 27॥

मन्त्रार्थ- सवितः सविता ने **ये** जो **ते** तुम्हारे **पन्थाः** मार्ग **पूर्व्यासो** पूर्व **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्ष में **अरेणवः** रेणु-हीन **सुकृता** किये गये हैं, **तेभिः** उन **सुगेभि** सुगम **पथिभिः** मार्गों से ही **अद्य** आज **नो** हमारी **रक्षा** रक्षा करो **च** और **देव** हे देव, **नो** हमें **अधि ब्रूहि** अधिकृत कहो।

भावार्थ- परमात्मा ने हमारे जीवन-पथ को सुगम बनाया है, हम भी दूसरों के जीवन को सुन्दर बनाने में सहयोग करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- ये (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। पन्थाः (पथ - जाना, फेंकना, त्यागना)। सवितः (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। पूर्व्यासो (पूर्व - पूर्ण करना, भरना)। अरेणवः (ऋ = जाना, पाना, मिलाना)। सुकृता (कृ = करना)। अन्तरिक्षे **(अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)**। तेभिः (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। अद्य (अव्यय)। पथिभिः (पथ - जाना, घूमना)। सुगेभि (सु = अच्छा, सुन्दर, गम् = जाना)। रक्षा (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। च (अव्यय)। अधि (उपसर्ग)। ब्रूहि (ब्रू = कहना, बोलना)। देव (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)॥ 27॥

सूक्त - 6

185. उभा पिबतम् अश्विना,
उभा नः शर्म यच्छतम्।
अविद्रियाभिः ऊतिभिः॥ 28॥

मन्त्रार्थ - उभा दोनो **अश्विना** अश्विन् **पिबतम्** पान करें, **उभा** दोनो **नः** हमें **अविद्रियाभिः** अविद्रिय (अखण्ड) **ऊतिभिः** ऊतियों (वाणियों अथवा रक्षाओं) द्वारा **शर्म** सुख **यच्छतम्** प्रदान करें।

भावार्थ - अशु धातु का अर्थ व्यापक होना तथा शीघ्र गति करना है। व्यापक परमात्मा तथा व्यापक भावना वाले उपासक हमें सुख प्रदान करते हैं। अविद्रिय अर्थात् जो विदीर्ण करने योग्य न हो, ऐसे ऊतियों अर्थात् रक्षा-साधनों

से हमें सुख-आश्रय प्राप्त होता है।

पदार्थ - उभा (उभय - दोनो, उभ् - पूर्ण करना, भरना)। पिबतम् (पिब् - पीना, प्राशन करना, संरक्षण करना)। अश्विना (अशु = व्यापक होना)। नः (सर्वनाम)। शर्म (शर्म = सुख होना)। यच्छतम् (यच्छ = देना)। अविद्रियाभिः (अ - नहीं, वि = विशेष, दृ - विदीर्ण करना, खण्डित करना)। ऊतिभिः (ऊ - शब्द करना, अव - रक्षा करना)।28॥

186. अप्नस्वतीम् अश्विना वाचम् अस्मे,
कृतम् नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्ये अवसे नि ह्वये वाम्,
वृधे च नो भवतम् वाजसातौ॥ 29॥

मन्त्रार्थ- अश्विना हे अश्विन् युगल, **अस्मे** हमारी **वाचम्** वाणी को **अप्नस्वतीम्** अप्नस्वती, **नो** हमारी **मनीषाम्** मनीषा को **दस्रा** दस्रा, **वृषणा** वृषणा **कृतम्** करो। **अद्यूत्ये** अद्यूत (तथा) **अवसे** रक्षा के लिए **वाम्** तुम दोनो का **नि ह्वये** आह्वान करते हैं। **च** और **नो** हमारे लिए **वाजसातौ** वाजसात में **वृधे** वृद्धिकारी **भवतम्** हो।

भावार्थ- अप धातु का अर्थ पालन करना है, अप्नस्वती का अर्थ हुआ पालन करने के भाव या गुण से युक्त। वाणी ऐसी हो जो हमारा तथा सुनने वाले का पालन-रक्षण करे, किसी को कष्ट न दे। दस धातु का अर्थ रक्षण, पालन, स्थापन तथा देखना आदि है। दस्रा का अर्थ रक्षक, दर्शनीय आदि होगा। वृष धातु का अर्थ वर्षा करना है, वृषणा का अर्थ वर्षा करने वाला ही सामान्यतः विद्वानों ने किया भी है। द्यु धातु का अर्थ प्रकाश करना है, अतः अद्यूत्ये का अर्थ प्रकाश रहित अथवा अन्धकार में, ऐसा होगा। अन्धकार में ही रक्षा की आवश्यकता होती है, अन्धकार से ही रक्षा आवश्यक है। वाज् धातु का अर्थ गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना है। वा धातु का अर्थ गति करना है। अतः वाजसातौ का अर्थ गतिमय, विद्वान्, बलवान् होगा। हम जीवन में गतिशील-सक्रिय रहकर वृद्धि करें यही कामना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अप्नस्वतीम् (आप् = व्याप्त होना, पाना, अप् = फैलना)। अश्विना (अशु = व्यापक होना)। वाचम् (वच - बोलना, कहना, समझाना)। अस्मे (सर्वनाम)। कृतम् (कृ = करना)। नो (सर्वनाम)। दस्रा (दस - रक्षण, पालन, स्थापन, देखना, नष्ट होना, नष्ट करना)। वृषणा (वृष् = उच्च पराक्रम करना, वर्षा होना, सींचना)। मनीषाम् (मन - मनन करना, विचार करना, जानना, समझना, स्वीकार करना)। अद्यूत्ये (द्युत् = प्रकाश होना)। अवसे (अव् = रक्षा करना)। नि (उपसर्ग)। ह्वये (ह्वे = पुकारना, आह्वान करना)। वाम् (सर्वनाम)। वृधे (वृध - बढ़ना, अधिक होना)। च (अव्यय)। नो (सर्वनाम)। भवतम् (भू = होना)। वाजसातौ (वाज् = जानना, जाना, पहुँचना, पाना, तैयार करना)।।29।।

187. द्युभिः अक्तुभिः परिपातम् अस्मान्,
अरिष्टेभिः अश्विना सौभगेभिः।
तत् नो मित्रो वरुणो माम् अहन्ताम्,
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।। 30 ।।

मन्त्रार्थ- अश्विना हे अश्विन् युगल, **अरिष्टेभिः** अहिंसित **सौभगेभिः** सौभाग्य, **द्युभिः** प्रकाश, **अक्तुभिः** गति से **अस्मान्** हमारी **परिपातम्** रक्षा, पालन करो। **तत्** वह **नो** हमारा **मित्रो** मित्र, **वरुणो** वरुण, **अदितिः** अदिति, **सिन्धुः** सिन्धु, **पृथिवी** पृथिवी और **द्यौः** द्यौ **माम्** मुझे **अहन्ताम्** व्यापकता प्रदान करे।

भावार्थ- दिव्य सौभाग्य, संरक्षण आदि अहिंसित रूप से पाने की कामना है। स्पष्ट है कि अहिंसक लोगों को ही दिव्य अनुदान प्राप्त होते हैं। समस्त दिव्य शक्तियाँ ऐसे उपासक को सम्मान प्रदान करती हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - द्युभिः (द्युत् = प्रकाश होना)। अक्तुभिः (अक् - जाना, टेढ़ा जाना)। परि (उपसर्ग)। पातम् (पा = रक्षा करना)। अस्मान् (सर्वनाम)। अरिष्टेभिः (रिष् = हिंसा करना)। अश्विना (अशु = व्यापक होना)। सौभगेभिः (सु - अच्छा, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, सींचना, **भग् -भज्**

- सेवा करना, सेवन करना**, दान करना, अलग करना**)। तम् (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। मित्रो (मिद - प्रीति करना, मृदुल होना)। वरुणो (वृ = वरण करना, पालन करना)। माम् (सर्वनाम)। अहन्ताम् (अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना, अर्पण करना, समर्पण करना)। अदितिः (अ - नहीं, + दी = नष्ट होना)। सिन्धुः (सिध् - पूर्ण होना, दीक्षा देना, अध्ययन करना, जाना, सि - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। पृथिवी (पृथ् = विस्तार होना, फेंकना, प्रेरणा करना)। उत (निपात, अव्यय)। द्यौः (द्यु = आगे जाना, द्युत् - प्रकाश होना) ।। 30 ।।

188. आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो,
निवेशयन् अमृतम् मर्त्यम् च।
हिरण्ययेन सविता रथेना,
देवो याति भुवनानि पश्यन्।। 31 ।।

मन्त्रार्थ - सविता **सविता (उत्पन्न कर्ता, ऐश्वर्यवान्)** देवो **देव (परमात्मा)** रजसा **रजस्, सूक्ष्मता से** आ कृष्णेन **आकर्षण से** वर्तमानो **वर्तमान,** अमृतम् **अमृत को** च **और** मर्त्यम् **मरणशील को** निवेशयन् **निवेश करते हुए** भुवनानि **भुवनों को** पश्यन् **देखते हुए** हिरण्ययेन **हिरण्य** रथेन **रथ द्वारा** आ याति **आता है**।। 43 ।।

भावार्थ - सविता देव परमात्मा सूक्ष्म आकर्षण से सर्वत्र वर्तमान है। सविता अर्थात् सृष्टिकर्ता परमात्मा की यह अनन्त सृष्टि परस्पर आकर्षण शक्ति से वर्तमान है। अमृत अविनाशी तो परमात्मा तथा उसकी चेतना शक्ति ही है। अमृत तत्व ऋत आदि तथा नाशवान् जड़-चेतन जगत् में वह निवास करता है। व्यावहारिक रूप से मूल प्राकृतिक उपादन या तत्व तुलनात्मक रूप से दीर्घकालिक होने से अमृत कहे जा सकते हैं। विश् धातु का अर्थ है भीतर जाना, प्रवेश करना, अन्तर्गमन करना। अतः यहाँ निवेश का अर्थ स्पष्ट है कि परमात्मा के सर्वव्यापी होने का ही भाव है। सबमें परमात्मा निवेश अर्थात् प्रविष्ट है। वह सभी भुवनों अर्थात् जो कुछ भी हो रहा है, सबको देखता है। वह सभी भुवनों को देखता है। भुवन अर्थात् जो कुछ भी होता है, सबको देखता है। भुवन का

अर्थ लोक-लोकान्तर भी माना जाता है, वह सभी लोक-लोकान्तरों को देखता है अर्थात् उसकी दृष्टि से कोई बच नहीं सकता है। हिरण्य रथ अर्थात् प्रकाशरूपी वाहन। सर्वव्यापी परमात्मा का स्थानान्तरण सम्भव नहीं है। प्रकाश ज्ञान का ही प्रतीक है। यही वाहन साधन प्रतीक रूप में कहा गया है।

विशेष - लोक व्यवहार में सविता तथा सूर्य शब्द आकाश में प्रकाश तथा ऊर्जा के स्रोत नक्षत्र या तारे सूर्य के लिए भी प्रयोग होता है। इस मन्त्र का लौकिक दृष्टि से भावार्थ उस सूर्य के सूक्ष्म आकर्षण शक्ति से परिभ्रमण करते हुए वर्तमान होने से भी लिया जाता है। वेदार्थ की परम्परा तथा धातुज अर्थ के सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार सविता तथा सूर्य का मूल वैदिक अर्थ उत्पन्न करने वाला ऐश्वर्यवान् परमात्मा ही किया जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ कृष्णेन (आ - समन्तात्, उपसर्ग, कृष् = आकर्षण करना, खींचना)। रजसा (रज - रज होना, सूक्ष्म होना)। वर्तमानो (वृत - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना)। निवेशयन् (नि - निश्चित उपसर्ग, विश - घुसना, भीतर जाना, धंसना)। अमृतम् (अ - नहीं, + मृ = मरना)। मर्त्यम् (मृ = मरना)। च (अव्यय)। हिरण्ययेन (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना, हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। रथेन (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। आ (उपसर्ग)। देवो (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, आनन्द करना आदि)। याति (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। भुवनानि (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। पश्यन् (पश्-दृश् = देखना)।। 31।।

189. आ रात्रि पार्थिवम् रजः,
पितुः अप्रायि धामभिः।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस,
आ त्वेषम् वर्त्तते तमः।। 32।।

मन्त्रार्थ- आ रात्रि रात्रि भर **पार्थिवम्** पार्थिव **रजः** रज (सूक्ष्म कण, वर्ण), **पितुः** पितु का **धामभिः** धामों के साथ **अप्रायि** व्याप्त किया है। **दिवः** दिव **बृहती** बृहत् **सदांसि** स्थानों पर **वि तिष्ठस** प्रतिष्ठित है। **त्वेषम्** त्वेष में **तमः** तम **वर्त्तते** वर्तमान है।

भावार्थ- पार्थिव रज अर्थात् पृथिवी का सूक्ष्म कण, वर्ण या रंग। रात्रि में सर्वत्र पृथिवी का धूसर वर्ण ही व्याप्त होता है। अन्धकार के कारण रंगों को स्पष्ट करना कठिन होता है। पितु शब्द पि धातु से बनता है जिसका अर्थ गति करना है। गति अर्थ वाली धातुएं ज्ञान, गमन, प्राप्ति अर्थ में मानी जाती हैं। पितु का अर्थ यही है। भावार्थ है कि रात्रि ने सब कुछ स्वयम् में समाहित कर लिया है। अन्धकार के कारण ज्ञान, गमन, प्राप्ति बाधित है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- आ (उपसर्ग)। रात्रि (रा - देना, मिल जाना)। पार्थिवम् (पृथ - फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्याप्त होना, प्रकट होना)। रजः (रज - रज होना, सूक्ष्म होना, रंगना)। पितुः (पि = गति करना, जाना, जानना, पाना)। अप्रायि (प्रा = पूर्ण होना, पूर्ण करना व्याप्त होना)। धामभिः (धा = धारण करना, पोषण करना)। दिवः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना आदि)। सदांसि (सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। बृहती (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। वि (उपसर्ग)। तिष्ठसे (तिष्ठ् = ठहरना)। आ (उपसर्ग)। त्वेषम् (त्विष - प्रकाशित होना, चमकना)। वर्त्तते (वृत = वर्तनान होना)। तमः (तम - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)।। 32।।

190. उषः तत् चित्रम् आ भर,
अस्मभ्यम् वाजिनीवति।
येन तोकम् च तनयम् च धामहे।। 33।।

मन्त्रार्थ- वाजिनीवति हे वाजिनीवती **उषः** उषः, **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **तत्** उस **चित्रम्** चित्र को **आ भर** भरो (पूर्ण करो) **येन** जिससे **तोकम्** तोक **च** और **तनयम्** तनय को **धामहे** धारण करें।

भावार्थ - हमारे जीवन का चित्र खाली न रहे, सादा, अपूर्ण, अधूरा न

रह जाये, वह पूर्ण हो जाये, उसमें सफलता के रंग भर जायें। इससे हम परिजनों का समुचित पालन-पोषण कर सकें। तोक और तनय का अर्थ पुत्र-पौत्रादि परिजन है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- उषः (उषस् - प्रभात होना)। तत् (सर्वनाम)। चित्रम् (चित्र् = चित्र बनाना, आश्चर्य करना, चित् = चेतन होना, विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना)। आ (उपसर्ग)। भर (भृ = धारण-पोषण करना, पूर्ण करना)। अस्मभ्यम् (सर्वनाम)। वाजिनीवति (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना)। येन (सर्वनाम)। तोकम् (तु - जाना, बढ़ना, दुःख देना, पूर्ण करना)। च (अव्यय)। तनयम् (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना)। च (अव्यय)। धामहे (धा = धारण करना)॥ 33॥

सूक्त - 7

191. प्रातः अग्निम् प्रातः इन्द्रम् हवामहे,
प्रातः मित्रवरुणा प्रातः अश्विना।
प्रातः भगम् पूषणम् ब्रह्मणः पतिम्,
प्रातः सोमम् उत् रुद्रम् हुवेम॥ 34॥

मन्त्रार्थ- प्रातः प्रातः **अग्निम्** अग्नि का, **प्रातः** प्रातः **इन्द्रम्** इन्द्र, **प्रातः** प्रातः **मित्रवरुणा** मित्र-वरुण, **प्रातः** प्रातः **अश्विना** अश्विना का **हवामहे** आह्वान करते हैं। **प्रातः** प्रातः **भगम्** भग, **पूषणम्** पूषण, **ब्रह्मणः पतिम्** ब्रह्मणस्पति, **प्रातः** प्रातः **सोमम्** सोम, **प्रातः** प्रातः **रुद्रम्** रुद्र का **हुवेम** आह्वान करते हैं।

भावार्थ- भग्-भज् धातु का अर्थ देना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना आदि हैं। भगवन्त होने का शाब्दिक अर्थ इन गुणों क्षमताओं से युक्त होना है। वेद तथा अन्य अध्यात्म साहित्य में इसका भावार्थ आध्यात्मिक गुणों से युक्त होना लिया जाता है। प्रातःकाल विभिन्न देवशक्तियों का स्मरण, आह्वान करने का सन्देश है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्रातः (अव्यय)। अग्निम् (अग् - अगि = गति

करना, आगे जाना)। इन्द्रम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना) हवामहे (हु = देना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना)। मित्रवरुणा (मित्र + वरुण, मिद् = प्रीत होना, वृ = वरण करना, अपनाना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। अश्विना (अश = व्यापक होना)। भगम् (भग्-भज् = देना, दान करना, पकाना, अलग करना, भजन करना)। पूषणम् (पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना, पालन करना)। ब्रह्मणः (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। पतिम् (पत् = ऐश्वर्य होना)। सोमम् (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना)। उत् (अव्यय)। रुद्रम् (रुद् - रोना, रोते-रोते कहना)। हुवेम (ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करते हैं)॥34॥

192. प्रातः जितम् भगम् उग्रम् हुवेम,
वयम् पुत्रम् अदितेः यो विधर्त्ता।
आध्रः चित् यम् मन्यमानः तुरः चित्,
राजा चित् यम् भगम् भक्षि इति आह॥ 35॥

मन्त्रार्थ- वयम् हम **प्रातः** प्रातः काल **जितम्** जीतने वाले **अदितेः** अदिति के **पुत्रम्** पुत्र **भगम्** भग का **हुवेम** आह्वान करते हैं **यो** जो **विधर्त्ता** विधर्ता (है)। **यम्** जिसको **मन्यमानः** मानते हुए **आध्रः** आध्र **चित्** भी, **तुरः** तुर (शीघ्रगामी) **चित्** भी, **राजा** राजा **चित्** भी **यम्** जिस **भगम्** भग को **भक्षि** भक्षि **इति** ऐसा **आह** कहते हैं।

भावार्थ- भग्-भज् धातु का अर्थ देना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना आदि हैं। भगवन्त होने का शाब्दिक अर्थ इन गुणों क्षमताओं से युक्त होना है। वेद तथा अन्य अध्यात्म साहित्य में इसका भावार्थ आध्यात्मिक गुणों से युक्त होना लिया जाता है। इस अर्थ में ही वेद में भग परमात्मा का वाचक है। भग विधर्ता अर्थात् विशेष रूप से धारण करने वाला है। आध्र का अर्थ भी धारण करने वाला है। आध्र, तुर, राजा भी कहने का भाव है कि सक्षम समर्थ लोग भी जिस भग अर्थात् परमात्मा को मानते हैं। भक्षि शब्द भी भग के समान भग-भज धातु का ही क्रिया रूप है। इसका अर्थ भग प्रदान करो, ऐसा होना

चाहिए। विद्वानों ने भक्षि का भावार्थ उदय करो, ऐसा भी किया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्रातः (अव्यय)। जितम् (जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। भगम् (भग्-भज् = देना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना)। उग्रम् (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना)। हुवेम (ह्वे = शब्द करना, बुलाना)। वयम् (सर्वनाम)। पुत्रम् (पु - रक्षा करना, श्वास लेना)। अदितेः (अद् = खाना, अ - नहीं, दी = नष्ट होना)। यो (सर्वनाम)। विधर्त्ता (धृ = धारण करना)। आध्रः (ध्रै - तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। चित् (अव्यय)। यम् (सर्वनाम)। मन्यमानः {मन् = जानना, समझना, मानना, विचार करना} तुरः {तुर् = शीघ्रता करना}। राजा (राज - दीप्त होना, शोभित होना)। भगम् (भग्-भज् = देना, दान करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। भक्षि (भक्ष - खाना, ग्रहण करना, भग्-भज् = देना, दान करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। इति (अव्यय)। आह (अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना।)।35।।

193. भग प्रणेतः भग सत्यराधो,
भग इमाम् धियम् उत् अव आ ददत् नः।
भग प्र नो जनय गोभिः अश्वैः,
भग प्र नृभिः नृवन्तः स्याम।। 36 ।।

मन्त्रार्थ- भग भग **प्रणेतः** प्रणेता (है), **भग** भग **सत्यराधो** सत्यराध (है)। **भग** हे भग, **नः** हमको **ददत्** देते हुए **इमाम्** इस **धियम्** बुद्धि को **अव** रक्षित करो, बढ़ाओ। **भग** हे भग, **नो** हमको **गोभिः** गो (तथा) **अश्वैः** अश्वों द्वारा **जनय** उत्पन्न करो। **भग** हे भग, (हम) **नृभिः** नरों द्वारा (नरों के साथ) **नृवन्तः** नृवन्त (नरों से युक्त) **स्याम** हों।

भावार्थ- भग्-भज् धातु का अर्थ देना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना आदि हैं। भगवन्त होने का शाब्दिक अर्थ इन गुणों क्षमताओं से

युक्त होना है। वेद तथा अन्य अध्यात्म साहित्य में इसका भावार्थ आध्यात्मिक गुणों से युक्त होना लिया जाता है। इस अर्थ में ही वेद में भग परमात्मा का वाचक है। नरों के साथ रहते हुए नृवन्त होने की भावना में सामाजिकता का सन्देश है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- भग (भग्-भज् = देना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। प्रणेतः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, नी = ले जाना, पहुँचाना)। सत्यराधो (सत् = सत्य होना, अस्तित्व होना, राध - सिद्ध होना, बढ़ना, निर्णय करना)। इमाम् (सर्वनाम)। धियम् (धी = बुद्धि, (प्रज्ञा) होना, धि = धारण करना)। उत् (अव्यय)। अव (अव् = रक्षा करना)। आ (उपसर्ग)। ददत् (दद - दान करना, देना, त्याग करना)। नः (सर्वनाम)। प्र (उपसर्ग)। जनय (जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना)। गोभिः (गु - अस्पष्ट बोलना, शब्द करना, मनन करना, गा-गम् - जाना, गमन करना)। अश्वैः (अश - फैलाना, व्यापना, पहुँचना, पाना, प्राप्त करना, संग्रह करना, बटोरना, राशि करना, ढेर करना)। नृभिः(नृ - ले जाना)। नृवन्तः (नृ- ले जाना)। स्याम (अस् - होना)।36।।

194. उत इदानीम् भगवन्तः स्याम,
उत प्रपित्वे उत मध्ये अह्नाम्,
उत उदिता मघवन् सूर्यस्य,
वयम् देवानाम् सुमतौ स्याम।। 37 ।।

मन्त्रार्थ- उत इदानीम् अब **भगवन्तः** भगवन्त **स्याम** हों। **मघवन्** हे मघवन्, **वयम्** हम **अह्नाम्** दिन के **प्रपित्वे** जाने पर (सायंकाल या रात्रि), **उत** भी, **मध्ये** मध्य में, **उत** भी, **सूर्यस्य** सूर्य के **उदिता** उदय में (प्रातःकाल) **उत** भी **देवानाम्** देवों की **सुमतौ** सुमति में **स्याम** रहें।

भावार्थ - इस मन्त्र में भावना है कि हम सर्वदा - सर्वकाल में देवों की सुमति में रहें, दिव्य गुणों के अनुसार आचरण करें। सायंकाल, प्रातः काल तथा

मध्य दिवस में देवों में सुमति में रहने की भावना से त्रिकाल सन्ध्या का सन्देश ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। भग्-भज् धातु का अर्थ देना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना आदि हैं। भगवन्त होने का शाब्दिक अर्थ इन गुणों क्षमताओं से युक्त होना है। वेद तथा अन्य अध्यात्म साहित्य में इसका भावार्थ आध्यात्मिक गुणों से युक्त होना लिया जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- उत (निपात, अव्यय)। इदानीम् (सर्वनाम)। भगवन्तः (भग्-भज = देना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। स्याम (अस् - होना)। प्रपित्वे (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, पि = जाना, जानना, पाना)। उत् (अव्यय)। मध्ये (सर्वनाम)। अह्नाम् (अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना)। उदिता (उत् - ऊपर, इ = जाना)। मघवन् (मघ् = ऐश्वर्य होना)। सूर्यस्य (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। वयम् (सर्वनाम)। देवानाम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। सुमतौ (सु - अच्छा, मन् - मनन करना, विचार करना)। स्याम (अस् - होना)।।37।।

195. भग एव भगवान् अस्तु देवाः,
तेन वयम् भगवन्तः स्याम।
तम् त्वा भग सर्व इत् जोहवीति,
स नो भग पुर एता भव इह।। 38।।

मन्त्रार्थ- भग भग (सेवनीय, सेवायोग्य) **एव** ही **भगवान्** भगवान् **अस्तु** हो, **तेन** उससे **वयम्** हम **देवाः** देव **भगवन्तः** भगवन्त **स्याम** हो जायें। **भग** हे भग, **तम्** उस **त्वा** तुमको **सर्व** सब **इत्** ही **जोहवीति** आह्वान करते हैं, **स** वह **भग** भग **नो** हमारे लिए **इह** यहाँ **पुर** आगे **एता** जाने वाले **भव** हो।।38।।

भावार्थ - भग-भज धातु का अर्थ सेवा करना है, अतः भग का अर्थ सेवा तथा सेवायोग्य होता है। इस अर्थ में भग ईश्वर को कहा गया है, भगवान् शब्द भी इसी प्रकार बनता है। सभी उपासक उसका ही आह्वान करते हैं।।38।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- भग (भग्-भज् = सेवा करना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। एव (अव्यय)। भगवान् (भग्-भज् – सेवा करना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। अस्तु (अस् - होना)। देवाः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। तेन (सर्वनाम)। वयम् (सर्वनाम)। भगवन्तः (भग्-भज् = सेवा करना, देना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। स्याम (अस् - होना)। तम् (सर्वनाम)। त्वा (सर्वनाम)। सर्व (सर्वनाम)। इत् (अव्यय)। जोहवीति (हू = आदान-प्रदान करना)। स (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। पुर (पुर - अग्रभाग में जाना, आगे जाना, मुख्य होना, अग्रसर होना)। एता (अ + इत्, इ - जाना)। भव (भू = होना)। इह (इस जीवन में, इस संसार में)।।38।।

सूक्त - 8

196. समध्वराय उषसो नमन्त,
दधिक्रावा इव शुचये पदाय।
अर्वाचीनम् वसुविदम् भगम् नो,
रथम् इव अश्वा वाजिन आ वहन्तु।। 39।।

मन्त्रार्थ - शुचये पवित्र **पदाय** पद के लिए **दधिक्रावा** दधिक्रावा के **इव** समान **समध्वराय** सम्यक् अध्वर के लिये **उषसो** उषायें **नमन्त** नमन करें। हमारे लिए **अर्वाचीनम्** अर्वाचीन **वसुविदम्** वसुविद् **भगम्** भग को **वाजिन** वाजिन **अश्वा** अश्व **रथम्** रथ के **इव** समान **आ वहन्तु** वहन करें।

भावार्थ - संसार के लिए मंगलकामना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सम् (उपसर्ग)। अध्वराय (अ - नहीं, ध्वृ-ध्वर् = हिंसा करना, टेढ़ा करना, झुकाना, मार डालना, वर्णन करना)। उषसो

(उषस् - प्रभात होना, पौ फटना)। नमन्त (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। दधि (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। क्रावा (क्रमु - निर्भयता से जाना, रक्षण करना, बढ़ना, वृद्धिंगत होना)। इव (अव्यय)। शुचये (शुच - शुद्ध होना, पवित्र होना)। पदाय (पद - स्थानान्तर करना)। अर्वाचीनम् (अर्व - मार डालना, दुःख देना, सताना)। वसुविदम् (वसु = निश्चल, सीधा होना, वस् = आच्छादन, दया-प्रीति-हिंसा-अपहरण करना)। भगम् (भग्-भज् = देना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। नो (सर्वनाम)। रथम् (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। अश्व (अश - फैलाना, व्यापना, पहुँचना, पाना, प्राप्त करना)। वाजिन (वाज् = बल होना, गति करना, जानना, पाना)। आ (उपसर्ग)। वहन्तु (वह - बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)।|39 ||

197. अश्वावतीः गोमतीः नः उषासो,
वीरवतीः सदम् उच्छन्तु भद्राः।
घृतम् दुहाना विश्वतः प्रपीता,
यूयम् पात स्वस्तिभिः सदा नः ।। 40 ।।

मन्त्रार्थ- उषासो उषा **नः** हमारे लिए **अश्वावतीः** अश्वयुक्त, **गोमतीः** गोयुक्त, **वीरवतीः** वीरयुक्त, **भद्राः** भद्र **सदम्** सदन **उच्छन्तु** प्रदान करें (पूरा करें)। तुम **घृतम्** घृत को **दुहाना** दुहने वाले, **विश्वतः** विश्व से **प्रपीता** पान किये गये **यूयम्** तुम **सदा** सदा **स्वस्तिभिः** स्वस्तियों द्वारा **नः** हमारा **पात** पालन करो।

भावार्थ- शुभ प्रभात की कामना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अश्वावतीः (अश - फैलाना, व्यापना, पहुँचना, पाना, प्राप्त करना, संग्रह करना, बटोरना, राशि करना, ढेर करना)। गोमतीः (गोम - लीपना, पोतना)। नः (सर्वनाम)। उषासो (उषस् = प्रभात होना)। वीरवतीः (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। सदम्

(सद् = बैठना, स्थित होना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। उच्छन्तु (उच्छ - पूरा करना)। भद्राः (भदि-भन्द - शुभ कर्म करना, सुखी होना)। घृतम् (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। दुहाना (दुह - दूध निकालना, दोहना, रिक्त करना, लेना, खेंचना)। विश्वतः (सर्वनाम)। प्रपीता (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, पी- पीना, प्राशन करना)। यूयम् (सर्वनाम)। पात (पा = रक्षा करना, पालन करना)। स्वस्तिभिः (स्वस्ति = कल्याण)। सदा (अव्यय)।। 40 ।।

198. पूषन् तव व्रते वयम्, न रिष्येम कदा चन।
स्तोतारः ते इह स्मसि ।। 41 ।।

मन्त्रार्थ- पूषन् हे पूषा, **तव** तुम्हारे **व्रते** व्रत में **वयम्** हम **कदा चन** कभी **रिष्येम** विनष्ट **न** नहीं हों। **ते** तुम्हारे **स्तोतारः** स्तुतिकर्ता **इह** यहाँ **स्मसि** हैं।|41 ||

भावार्थ- पूषा अर्थात् पोषण करने वाले परमात्मा की उपासना में कभी विनष्ट न हों। हम व्रत का विनाश न होने दें, परमात्मा हमारा विनाश नहीं होने देगा। स्तुतिकर्ता उपासक इसी संसार में, समाज में हैं, हमें उनका सहयोग, मार्गदर्शन मिलता रहता है।। 41।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - पूषन् (पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना, पालन करना)। तव (सर्वनाम)। व्रते (वृ = वरण करना)। वयम् (सर्वनाम)। न (अव्यय)। रिष्येम (रिष - हिंसा करना, मार डालना या दुःख देना, मारने का यत्न करना)। कदाचन् (सर्वनाम)। स्तोतारः (स्तु = स्तुति, पूजा, सेवा करना)। ते (सर्वनाम)। इह (सर्वनाम)। स्मसि (अस् - होना)।।

199. पथः पथः परिपतिम् वचस्या,
कामेन कृतो अभि आनट् अर्कम्।
स नो रासत् शुरुधः चन्द्राग्रा,
धियम् धियम् सीषधाति प्र पूषा ।। 42 ।।

मन्त्रार्थ- पथः पथः पथ-पथ पर **परिपतिम्** अधिपति **अर्कम्** अर्क को **वचस्या** वचन (और) **कामेन** कामना से **अभि आनट्** प्राणवान् **कृतो** किया। **स**

वह **नो** हमको **शुरुधः** शूरवीरों को धारण करने वाले **चन्द्राग्रा** चन्द्राग्र **रासत्** प्रदान करे। **पूषा** पूषा **धियम् धियम्** बुद्धि-बुद्धि को **सीषधाति** संसिद्ध करता है।

भावार्थ- पग-पग पर अधिपति परमात्मा को वचन तथा कामना से व्याप्त कर प्रखर प्राणवान् बनें। परमात्मा तो सर्वव्यापी है ही, हमको अपने जीवन में उसे प्रतिपल तथा प्रत्येक कार्य में व्याप्त अनुभव करना है अर्थात् सबकुछ उसे समर्पित करते हुए ही जीवन बिताना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- पथः (पथ - जाना, फेंकना, त्यागना)। परि (उपसर्ग)। पतिम् (पत् = ऐश्वर्य होना)। वचस्या (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। कामेन (कमु - चाहना, इच्छा करना)। कृतो (कृ = करना)। अभि (उपसर्ग)। आनट् (अन- चेतन होना, प्रण होना)। अर्कम् (अर्क - प्रशंसा करना, स्तुति करना, तपाना, गरम करना)। स (सर्वनाम)। नो (सर्वनाम)। रासत् (रा- देना, लेना, ग्रहण करना)। शुरुधः (शूर - वीरता दिखाना, वीर होना, धा - धारण करना)। चन्द्राग्रा (चन्द - चमकना, आनन्द पाना)। धियम् (धी = बुद्धि, (प्रज्ञा) होना, धि = धारण करना)। सीषधाति (साध - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जय पाना, जीतना, यशस्वी होना, साधना करना)। प्र (उपसर्ग)। पूषा (पूष - बढ़ना, अधिक होना, पोषण करना, पालन करना)।।42।।

200. त्रीणि पदा वि चक्रमे,
विष्णुः गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन्।। 43।।

मन्त्रार्थ - अदाभ्यः अदाभ्य, जिसे आज्ञा देना सम्भव नहीं, अहिंसनीय **गोपा** रक्षक **विष्णुः** विष्णु ने **त्रीणि** तीन **पदा** पद से **वि चक्रमे** पराक्रम किया। **अतो** इससे **धर्माणि** धर्म को **धारयन्** धारण किया।

भावार्थ - विष्णु का अर्थ है व्यापक अर्थात् सर्वव्यापी परमात्मा। उसका पराक्रम तीन लोक, तीन काल में सर्वदा होता रहता है। इससे ही धर्म प्रतिष्ठित रहता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- त्रीणि (त्रि - तीन)। पदा (पद - स्थानान्तर

करना)। वि (उपसर्ग)। चक्रमे (कृ - करना, चक - तृप्त होना, सन्तुष्ट होना)। विष्णुः (विष् = व्याप्त होना)। गोपा (गुप् = रक्षा करना, चमकना, बोलना)। अदाभ्यः (दभ - हिंसा करना, आज्ञा देना)। अतो (अव्यय)। धर्माणि (धृ = धारण करना)। धारयन् (धृ-धा = धारण करना)।।43।।

201. तत् विप्रासो विपन्यवो,
जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोः यत् परमम् पदम्।। 44।।

मन्त्रार्थ - विष्णोः विष्णु का **यत्** जो **परमम्** परम **पदम्** पद (है), **तत्** उसको **विप्रासो** विशेष पूर्ण **विपन्यवो** विशेष व्यवहार, स्तुति करने वाले **जागृवांसः** जाग्रत रहकर **समिन्धते** प्रकाशित करते हैं।

भावार्थ - विपन्यवः का अर्थ है विशेष व्यवहार, स्तुति करने वाले जन। वि उपसर्ग का अर्थ विशेष के साथ ही विलोम अथवा विपरीत भी होता है। इस प्रकार इसका अर्थ लोक व्यवहार से मुक्त अर्थात् सांसारिकता से विरत निष्काम उपासक भी हो सकता है। दोनो ही अर्थ स्वीकार्य हैं। वि उपसर्ग के साथ पन-पण धातु से यह शब्द बना है। इस धातु का अर्थ लोक-व्यवहार के साथ ही स्तुति करना भी होता है। सामान्यतः व्यापार के अर्थ में इसका प्रयोग होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - तत् (सर्वनाम)। विप्रासो (वि + प्रा - पूर्ण करना, पूर्ण होना, तृप्त करना)। विपन्यवो (पन - व्यवहार करना, प्रशंसा करना, स्तुति करना)। जागृवांसः (जागृ - जगना, नींद न लेना)। समिन्धते (इन्ध् = प्रकाश होना)। विष्णोः (विष् = व्यापक होना)। यत् (सर्वनाम)। परमम् (अव्यय)। पदम् (पद - चलना, स्थानान्तर करना)।।44।।

सूक्त - 9

202.घृतवती भुवनानाम् अभि श्रिया,
उर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा,
विष्कभिते अजरे भूरि रेतसा।। 45।।

मन्त्रार्थ - घृतवती घृतवती, **भुवनानाम्** भुवनों की **अभि श्रिया** अभिश्रिया, **विष्कभिते** विस्तृत **पृथ्वी** पृथ्वी **मधुदुघे** मधु का दोहन करने वाली **उर्वी** सहनशील, समर्थ **सुपेशसा** सुन्दर गति वाली (है)। **द्यावापृथिवी** द्यावा-पृथिवी **वरुणस्य** वरुण के **धर्मणा** धर्म से **अजरे** अजर (और) **भूरि** बहु **रेतसा** रेतस् है।

भावार्थ - पृथ्वी तथा द्यावा-पृथिवी हमारे जीवन का आश्रय हैं। पृथ्वी पर तो हमारा प्रत्यक्षतः निवास है ही, द्यावा-पृथिवी अर्थात् सूर्य आदि नक्षत्र तथा पृथिवी जैसे निवास योग्य ग्रह मिलकर ही जीवन को उत्पन्न तथा संरक्षण करने में सक्षम हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - घृतवती (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। भुवनानाम् (भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। अभि (उपसर्ग)। श्रिया (श्रि - सेवा करना)। उर्वी (उर्वी - सहना, समर्थ होना, मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। पृथ्वी (पृथ - फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना)। मधुदुघे (मध = मीठा होना, मधुर होना, दुह - दुहना)। सुपेशसा (सु - सुन्दर, पेश - जाना, भरना)। द्यावापृथिवी (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। वरुणस्य (वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। धर्मणा (धृ = धारण करना)। विष्कभिते (विष - व्यापना, फैलना, प्रसृत होना)। अजरे (अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना, अ - नहीं, जृ - जीर्ण होना)। भूरि (अव्यय, सर्वनाम)। रेतसा (रि = जाना, जानना, पाना)।।45।।

203. ये नः सपत्ना अप ते भवन्तु,
इन्द्राग्निभ्याम् अव बाधामहे तान्।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरि स्पृशम्,
मा उग्रम् चेत्तारम् अधिराजम् अक्रन्।। 46 ।।

मन्त्रार्थ- ये जो **नः** हमारे **सपत्ना** सपत्न हैं, **ते** वे **अप** दूर **भवन्तु** हों। **इन्द्राग्निभ्याम्** इन्द्राग्नी द्वारा **तान्** उनको **अव बाधामहे** बाधित करते हैं। **वसवो** वसु, **रुद्रा** रुद्र, **आदित्या** आदित्य **मा** मुझको **उपरि** ऊपर **स्पृशम्** स्पर्श करने

वाला, **उग्रम्** उग्र, **चेत्तारम्** ज्ञानवान्, **अधिराजम्** अधिराज **अक्रन्** बनायें।

भावार्थ- सपत्न का अर्थ विद्वानों ने शत्रु किया है। पत् धातु का अर्थ गिरना, पतन होना भी होता है। इससे सपत्न का शाब्दिक अर्थ पतनयुक्त हो सकता है। पतन के कारक को शत्रु कहा गया है। इन्द्राग्नी अर्थात् इन्द्र और अग्नि आदि दिव्य शक्तियों द्वारा उनको दूर कर सकते हैं। देवशक्तियाँ हमको सफलता के शिखर पर प्रतिष्ठित करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- ये (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। सपत्ना (स - सहित, साथ, पत् - पतन होना, गिरना, ऐश्वर्य होना, सप - पूर्ण ज्ञान होना, पूरा समझना, पूर्णतया जानना, संसक्त होना, संलग्न होना, मिलाप होना)। अप (उपसर्ग)। ते (सर्वनाम)। भवन्तु (भू = होना)। इन्द्राग्निभ्याम् (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। अव (अव् = रक्षा करना)। बाधामहे (बाध - रोकना, अटकाव करना, बाधा देना, दुःख देना)। तान् (सर्वनाम)। वसवो (वस् = निवास करना, स्नेह करना)। रुद्राः (रुद् = रुदन करना, रुलाना)। आदित्या (अ - नहीं, दी = क्षय होना, नष्ट होना, अद् = खाना)। उपरि (अव्यय)। स्पृशम् (स्पृश - स्पर्श करना, छूना, संयोग करना हाथ से लेना)। मा (मा - नहीं, मा-माम् - मुझको)। उग्रम् (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना)। चेत्तारम् (चित्, चेत् = विचार करना, चिन्तन करना)। अधिराजम् (राज - चमकना, शोभित होना)। अक्रन् (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, कृ = करना)।।46।।

204. आ नासत्या त्रिभिः एकादशैः इह,
देवेभिः यातम् मधुपेयम् अश्विना।
प्र आयुः तारिष्टम् नी रपांसि मृक्षतम्,
सेधतम् द्वेषो भवतम् सचाभुवा।। 47 ।।

मन्त्रार्थ - अश्विना अश्विन् **आ नासत्या** नासत्य **इह** यहाँ **त्रिभिः एकादशैः** त्रिक-एकादश **देवेभिः** देवों द्वारा **मधुपेयम्** मधुपेय **यातम्** प्राप्त करें। **प्र आयुः** आयु **तारिष्टम्** बढ़ायें, **रपांसि** रपों (स्पष्ट वाणियों) को **नी मृक्षतम्** एकत्र करें, **द्वेषो** द्वेष **सेधतम्** मिटायें, **सचाभुवा** सहयोगी **भवतम्** बनें।

भावार्थ - अश्विन् का अर्थ है व्यापक, नासत्य का अर्थ है असत्य सहित, त्रिक-एकादश अर्थात् तैंतीस। दिव्यगुणों के माधुर्य का पान करें, दीर्घ आयु पायें, पाप तथा द्वेष से बचें तथा सहयोगी बनें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - आ (उपसर्ग)। नासत्या (नास - श्वास लेना, श्वास-ध्वनि करना, खुर्राटा मारना)। त्रिभिः (त्रि = तीन)। एकादशैः (एकादश = ग्यारह)। इह (सर्वनाम)। देवेभिः **(दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)**। यातम् (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। मधुपेयम् (मध = मीठा)। अश्विना (अशु = व्यापक होना)। प्र (उपसर्ग)। आयुः (अय - जाना)। तारिष्टम् (तृष - प्यास लगना, इच्छा करना, उत्कण्ठित होना, चाहना)। निः (उपसर्ग)। रपांसि (रप - स्पष्ट बोलना)। मृक्षतम् (मृक्ष - एकत्र करना)। सेधतम् (सिध् = जाना, सिद्ध होना, जीत होना, पूर्ण होना)। द्वेषो (द्विष - मत्सर करना, द्वेष करना, शत्रुता करना)। भवतम् (भू = होना)। सचाभुवा (सच - पूरा समझना, अच्छी तरह जानना, सम्बन्धी होना, संसर्गी होना)।।47।।

205. एष वः स्तोमो मरुत इयम् गीः,
मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
आ इषा यासीष्ट तन्वे वयाम् विद्याम,
इषम् वृजनम् जीरदानुम्।। 48 ।।

मन्त्रार्थ- मरुत हे मरुत्, **एष** यह **वः** तुम्हारी **स्तोमो** स्तुति (है)। **इयम्** यह **गीः** वाणी **मान्दार्यस्य** मान्दार्य **मान्यस्य** मान्य **कारोः** कारु की (है)। **आ इषा** ज्ञान **यासीष्ट** प्राप्त हो, **तन्वे** शरीर के लिए **वयाम्** आयु **विद्याम** जानें। **इषम्** गति **वृजनम्** वृजन **जीरदानुम्** जीरदानु को (प्राप्त हों)।

भावार्थ- स्तुति तथा ज्ञान से आयु और सफलता प्राप्त होती है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- वः (सर्वनाम)। स्तोमो (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। मरुत (मृ = मरना)। इयम् (सर्वनाम)। गीः (गु = शब्द करना, गम्, गा = जाना)। मान्दार्यस्य (मन्द - स्तुति करना, आनन्द करना, इच्छा करना)। मान्यस्य (मन् - जानना, समझना, विचार करना, मान - ज्ञान-

प्राप्ति की इच्छा करना, शोध करना)। कारोः (कृ = करना)। एषा (सर्वनाम)। यासीष्ट (या - जाना, प्राप्त होना, पहुँचना)। तन्वे (तनु - भरोसा करना, आश्रय देना, सहाय करना, शब्द करना)। वयाम् (वय - जाना, स्थानान्तर करना, वे -बुनना)। विद्याम (विद - जानना, पाना)। इषम् (इष - चाहना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना)। वृजनम् (वृज - छोड़ना, वर्जित करना)। जीरदानुम् (जृ - जीर्ण होना, वृद्ध होना, दा = देना)।।48।।

206. सह स्तोमाः सह छन्दस आवृतः,
सह प्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः।
पूर्वेषाम् पन्थाम् अनुदृश्य धीरा,
अनु आ लेभिरे रथ्यो न रश्मीन्।। 49 ।।

मन्त्रार्थ - स्तोमाः स्तोम के **सह** साथ, **छन्दस** छन्दस् के **सह** साथ, **प्रमा** प्रमा के **सह** साथ **सप्त** सात **दैव्याः** दिव्य **ऋषयः** ऋषि **आवृतः** आवृत (हैं)। **धीरा** धीर जनों ने **पूर्वेषाम्** पूर्व **पन्थाम्** पन्थ को **अनुदृश्य** देखकर **रथ्यो** रथी **न** के समान **रश्मीन्** रश्मियों को **आ लेभिरे** प्राप्त किया।

भावार्थ - वेद मन्त्र, स्तुतियाँ, प्रमाण, ये तीनो ही पक्ष महत्वपूर्ण हैं। इनके साथ अथवा इनसे युक्त दिव्य ऋषि आवृत हैं, अर्थात् परिपूर्ण हैं। वेद मन्त्रों का ज्ञान आवश्यक है, स्तुति करना भी आवश्यक है तथा प्रमाण भी आवश्यक है। ज्ञान, उपासना, विवेक का समन्वय कर ही पन्थ को पहले देखा या समझा जा सकता है तथा सफलता प्राप्त हो सकती है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - सह (सर्वनाम)। स्तोमाः (स्तोम - प्रशंसा करना, स्तुति करना)। छन्दस (छन्द् - ढकना, आच्छादन करना, लपेटना)। आवृतः (वृत् = रहना, होना, वर्ताव करना, वरण करना, चमकना, बोलना)। प्रमा (मा - मान करना)। ऋषयः (ऋष = जाना, जानना, पाना, अन्तर्दष्टि होना)। सप्त = सात। दैव्याः (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। पूर्वेषाम् (पूर्व - पहले, पूर्व् - रहना, आश्चर्य करना, बुलाना)। पन्थाम् (पन्थ - जाना, घूमना)। अनुदृश्य (अनु - पश्चात्, पीछे,

उपसर्ग, दृश्- देखना)। धीरा (धी = धारण करना, आधार होना)। अनु (उपसर्ग)। आ (उपसर्ग)। लेभिरे (लभ् - पाना, प्राप्त करना, ली = प्राप्त होना, मिलना)। रथ्यो (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, आवेष्टित करना, क्रीडा करना, खेलना)। न (अव्यय)। रश्मीन् (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)।49।।

207. आयुष्यम् वर्चस्यम्,
रायस्पोषम् औद्भिदम्।
इदम् हिरण्यम् वर्चस्वत्,
जैत्राय आ विशतात् उ माम्।। 50।।

मन्त्रार्थ- आयुष्यम् आयुष्य, **वर्चस्यम्** वर्चस्य, **रायस्पोषम्** रायस्पोष, **औद्भिदम्** औद्भिद्, **इदम** यह **हिरण्यम्** हिरण्य, **वर्चस्वत्** वर्चस्वत्, **जैत्राय** जैत्र (जीत, विजय) के लिए **उ माम्** मुझमें **आ विशतात्** प्रविष्ट हो।

भावार्थ- जीवन में सफलता के लिए सद्गुणों तथा सामर्थ्य की कामना की गयी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- आयुष्यम् (अय् = गति करना)। वर्चस्यम् (वर्च = प्रकाशित होना)। रायस्पोषम् (रा-देना, रय् = जाना, जानना, पाना, रै = शब्द करना, पुष् = पालन-पोषण करना, धारण करना)। औद्भिदम् (भिद् - भाग करना, चीरना, तोड़ना)। इदम् (सर्वनाम)। हिरण्यम् (हि = गति करना, रण् = शब्द करना, जाना)। वर्चस्वत् (वर्च - प्रकाशित होना, चमकना)। जैत्राय (जि - सर्वोत्कर्ष से रहना, सब से बढ़ के होना, जीतना, पराभव करना)। आ (उपसर्ग)। विशतात् (विश - घुसना, भीतर जाना, धंसना, चारों ओर फैलना)। उ (निपात)। माम् (सर्वनाम)।50।।

सूक्त - 10

208. न तद् रक्षांसि न पिशाचाः तरन्ति,
देवानाम् ओजः प्रथमजम् हि एतत्।

यो बिभर्ति दाक्षायणम् हिरण्यम्,
स देवेषु कृणुते दीर्घम् आयुः।
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घम् आयुः।। 51।।

मन्त्रार्थ - तत् वह, उसे **न** नहीं **रक्षांसि** रक्ष, **न** नहीं **पिशाचाः** पिशाच **तरन्ति** पार करते हैं, **देवानाम्** देवों का **एतत्** यह **ओजः** ओज **हि** ही **प्रथमजम्** प्रथम (है)। **यो** जो **दाक्षायणम्** दाक्षायण **हिरण्यम्** हिरण्य को **बिभर्ति** भरण करता है, **स** वह **देवेषु** देवों में **दीर्घम्** दीर्घ **आयुः** आयु **कृणुते** करता है। **स** वह **मनुष्येषु** मनुष्यों में **दीर्घम्** दीर्घ **आयुः** आयु **कृणुते** करता है।51।।

भावार्थ - देवों का ओज ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। देवत्व का भरण-पोषण करने वाला दीर्घायु प्राप्त करता है। रक्ष धातुका अर्थ रक्षा करना है। रक्षा करने में समर्थ को रक्षः या रक्षस् कहा जाता है। वे केवल अपनी रक्षा करते रहें या समाज के रक्षक बनें, इससे उनका महत्व समझा जाता है। पिश धातु का अर्थ टुकड़े टुकड़े करना, चीरना, व्यवस्था करना है। इन गुणों क्षमताओं से सम्पन्न लोगों को पिशाच कह सकते हैं। ऐसे रक्षस् या पिशाच भी देवत्व के गुणों की उपेक्षा करने पर नहीं तर पाते हैं। रक्षस् तथा पिशाच क्षमतावान् तथा समर्थ होने को व्यक्त करते हैं। वे इन गुणों का सदुपयोग करें या दुरुपयोग, यह व्यक्ति विशेष के स्वभाव पर निर्भर है। परन्तु चाहे चीरने की शक्ति हो या व्यवस्था करने की क्षमता हो अथवा रक्षा करने की शक्ति हो, इन सबसे से अधिक महत्वपूर्ण है देवत्व का गुण।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - न (अव्यय)। तत् (सर्वनाम)। रक्षांसि (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। पिशाचाः (पिश - टुकड़े टुकड़े करना, चीरना, व्यवस्था करना)। तरन्ति (तृ - पार जाना)। देवानाम् (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। ओजः (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। प्रथमजम् (प्रथ् = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। हि (अव्यय)। एतत् (सर्वनाम)। यो (सर्वनाम)। विभर्ति (भृ - भरण पोषण, धारण करना)। दाक्षायणम् (दा, दद् = देना)। हिरण्यम् (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना)। स (सर्वनाम)। देवेषु (दिव्, देव् = चमकना,

जानना)। कृणुते (कृ = करना)। दीर्घम् (दृह - बढ़ना, वृद्धिगत होना)। आयुः (अय = जाना, आयुस् - जीवनम्)। मनुष्येषु (मन- मनन करना, विचार करना)। कृणुते (कृ - करना)। दीर्घम् (दृह - बढ़ना)। आयुः (अय - जाना, आयुस् - जीवनम्)।।51।।

209. यत् आ अबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यम्,
शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत् मे आ बध्नामि शतशारदाय,
आयुष्मान् जरदष्टिः यथा सम्।। 52।।

मन्त्रार्थ- सुमनस्यमानाः सुमनस्यमान **दाक्षायणा** दाक्षायणों ने **यत्** जिस **हिरण्यम्** हिरण्य को **शतानीकाय** शतानीक के लिए **आ अबध्नन्** बाँधा था, **वह** उसको **यथा** जैसे, यथायोग्य **सम् जरदष्टिः** सम्यक् जरदष्टि **आयुष्मान्** आयुष्मान् **मे** मैं **शतशारदाय** शत शरद के लिए **आ बध्नामि** बाँधता हूँ।

भावार्थ- दक्ष जनों ने हिरण्य अर्थात् प्रकाश को अच्छे मन वाले तथा शतानीक अर्थात् सैकड़ो अनीक या प्राण वाले के लिए बाँधा था। उस दिव्य ज्योति को धारण कर ही हम सौ वर्ष की आयु तक सक्रिय जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यत् (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। अबध्नन् (बध - बांधना, बद्ध करना, हिंसा करना, मारना, वध करना, घृणा करना)। दाक्षायणा (दक्ष - समृद्ध होना, दक्ष होना, शीघ्र कार्य करना)। हिरण्यम् (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना)। शतानीकाय (शतम् = सौ, अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। सुमनस्यमानाः (सु - अच्छा, सुन्दर, मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना)। तत् (सर्वनाम)। मे (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। बध्नामि (बन्ध - बांधना, बध - बांधना, बद्ध करना, हिंसा करना, मारना, वध करना, घृणा करना)। शतशारदाय (शतम् = सौ, शृ - सुनना)। आयुष्मान् (अय - जाना, आयुस् - जीवनम्)। जरदष्टि (जृ - वृद्ध होना, जीर्ण होना, अश् - व्याप्त होना, खाना, भोगना)। यथा (अव्यय)।

सम् (उपसर्ग)।।52।।

210. उत नो अहिः बुध्न्यः शृणोतु,
अज एकपात् पृथिवी समुद्रः।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः,
स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु।। 53।।

मन्त्रार्थ - अहिः अहि, **बुध्न्यः** बुध्न्य, **अज** अज, **एकपात्** एकपात्, **पृथिवी** पृथिवी, **समुद्रः** समुद्र **नो** हमको **शृणोतु** सुनें। **ऋतावृधो** ऋतावृध **हुवानाः** आह्वान किये जाते हुए, दानी, तृप्त करने वाले, **कविशस्ता** कविशस्त (कवियों से प्रशंसित) **स्तुता** स्तुत **मन्त्राः** मन्त्र **विश्वे देवा** विश्वदेव **अवन्तु** रक्षा करें।

भावार्थ - परमात्मा की दिव्य शक्तियाँ हमारी रक्षा करती हैं। कविशस्ता पद में कु-कव् धातु का अर्थ शब्द करना है। शस् धातु का अर्थ काटना, दुःख देना तथा शंस् धातु का अर्थ चाहना, प्रशंसा करना है। शस्ता में शस् धातु प्रत्यक्ष है, परन्तु अनेक विद्वान् इसमें शंस् धातु मानते रहे हैं। शंस् धातु मानकर कविशस्ता पद का अर्थ कवियों से प्रशंसित किया जाता है। शस् धातु मानने पर इसका अर्थ कवियों से ही काटा जाने वाला होगा। जिसे किसी बल से नहीं काटा जा सकता है, वह परमात्मा अथवा उपासक अथवा देव-शक्तियाँ कवि अर्थ शब्द करने वाले, मधुर-विनम्र वाणी से स्तुति करने वाले लोगों की भावना से कट जाते हैं। वे शक्ति या बल के भय से तो अपना मार्ग नहीं त्याग सकते हैं, परन्तु शालीन वचनों, स्तुतियों के समक्ष कठोर नहीं रह पाते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - उत (निपात, अव्यय)। नो (सर्वनाम)। अहिः (अह - व्याप्त होना)। बुध्न्यः (बुध् - समझना)। शृणोतु (श्रु-शृण् = सुनना)। अज (अ - नहीं, जन् - उत्पन्न होना, अज - जाना, हांकना, दौड़ाना, फेंकना)। एकपात् (एक = एक, पद् - चलना)। पृथिवी (पृथ् = विस्तार होना, फेंकना, प्रेरणा करना)। समुद्रः **(सम् - सम्यक्, उत् - उच्च, ऊपर, उत्कृष्ट, रा - दान करना, देना,** उन्द - आर्द्र होना, गीला होना)। विश्वे (सर्वनाम)। देवा

(दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। ऋतावृधो (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना, वृध - बढ़ना, अधिक होना)। हुवानाः (ह्वे = शब्द करना, बुलाना, आह्वान करना)। स्तुता (स्तु - प्रशंसा करना, स्तुति करना, पूजा करना, अर्चा करना, सेवा करना, भजन करना)। मन्त्राः (मन्त्र = मनन करना, विचार करना, गुप्त भाषण करना)। कविशस्ता (कु, कव् = शब्द करना, शस् - काटना, शंस् - चाहना, प्रशंसा करना)। अवन्तु (अव् = रक्षा करना)।।53।।

211. इमा गिरः आदितेभ्यो घृतस्नूः,
सनात् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नः,
तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः।। 54।।

मन्त्रार्थ- इमा इन **घृतस्नूः** घृतस्नू (प्रकाशमान) **गिरः** वाणियाँ को **सनात्** नित्य **राजभ्यो** राजा **आदितेभ्यो** अविनाशी, आदित्यों के लिए **जुह्वा** दान-साधनों से, आह्वानपूर्वक, **जुहोमि** दान या समर्पित करता हूँ। **मित्रो** मित्र, **अर्यमा** अर्यमा, **भगो** भग, **तुविजातो** तुविजात, **वरुणो** वरुण, **दक्षो** दक्ष, **अंशः** अंश **नः** हमको **शृणोतु** सुनें।

भावार्थ- घृतस्नू अर्थात् प्रकाशमान वाणियाँ ही आदित्य अर्थात् अविनाशी परमात्मा तथा उपासकों के लिए समर्पित करें, इसका भाव है कि मधुर वाणी ही हमारे लिए महत्वपूर्ण है। धन-सम्पदा से हम परमात्मा तथा सच्चे उपासकों को प्रभावित नहीं कर सकते हैं। सच्ची भावना तथा वाणी ही उचित साधन हैं। इसी से देव-शक्तियाँ हमारी प्रार्थना सुनती हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इमा (सर्वनाम)। गिरः (गॄ - शब्द करना)। आदितेभ्यो (अ - नहीं, दी - नष्ट होना)। घृतस्नूः (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। सनात् (सन - सेवा करना)। राजभ्यो (राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना)। जुह्वा (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - आह्वान करना)। जुहोमि (हु = दान करना, आदान-प्रदान करना)। शृणोतु (श्रु- शृण् = सुनना)। मित्रो (मिद - स्नेह करना)। अर्यमा (ऋ = जाना, पाना, मिलाना)। भगो (भग्-भज् = सेवा करना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। नः (सर्वनाम)। तुविजातो (तु - जाना, बढ़ना, दुःख देना, पूर्ण करना)। वरुणो (वृ = वरण करना, पालन करना)। दक्षो (दक्ष- समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना)। अंशः (अंश- विभाग करना, बाँटना, साथ होना)।।54।।

212. सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे,
सप्त रक्षन्ति सदम् अप्रमादम्।
सप्त आपः स्वपतो लोकम् ईयुः,
तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।। 55।।

मन्त्रार्थ- शरीरे शरीर में **सप्त** सप्त **ऋषयः** ऋषि **प्रतिहिताः** प्रतिहित (प्रतिष्ठित) हैं। **सप्त** सात **अप्रमादम्** प्रमादरहित **सदम्** सद् की **रक्षन्ति** रक्षा करते हैं। **तत्र** वहाँ **सप्त** सात **आपः** आपः (व्यापक) **जागृतो** जाग्रत, **अस्वप्नजौ** अस्वप्न, निद्रामुक्त से उत्पन्न, **सत्रसदौ** सत्रसद् **च** और **देवौ** देव **स्वपतो** स्व-पतौ (अपने ऐश्वर्य) **लोकम्** लोक को **ईयुः** प्राप्त करते हैं।

भावार्थ- सप्त ऋषि हमारे शरीर में ही हैं। ऋषि का अर्थ है मन्त्र-दृष्टा चेतना। हमें जाग्रत रहना है, सो नहीं जाना है। शरीर में प्रतिष्ठित चेतना हमें दिव्य चेतन ऐश्वर्य लोक को प्राप्त करा देगी।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सप्त = सात। ऋषयः (ऋष् = जाना, जानना)। प्रतिहिताः (प्रतिष्ठित) (हि - जाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)। शरीरे (शृ - सुनना, शीर्ण होना, फटना)। रक्षन्ति (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। सदम् (सद् = बैटना, जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। अप्रमादम् (मद् = तृप्त करना, हर्षित होना, थकना)। आपः (अपस् - जलम्)। स्वपतो (सु - उत्पन्न करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम, स्व - अपना, पत् - ऐश्वर्य होना)। लोकम् (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। ईयुः (ई =

जाना, जानना, पाना, व्यापना)। तत्र (सर्वनाम)। जागृतो (जागृ - जगना, नींद न लेना)। अस्वप्नजौ (अ - नहीं, सु - उत्पन्न करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, स्वप् - सोना, निद्रा लेना)। सत्रसदौ (सत्र - फैलाना, विस्तार करनमनन करना, विचार करना, सम्बन्ध करना, संसर्गी होना)। च (अव्यय)। देवौ (दिव्, देव् = चमकना, जानना)।55।।

213. उतिष्ठ ब्रह्मणस्पते, देवयन्तः त्वा ईमहे।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव, इन्द्र प्राशूः भव सचा।।56।।

मन्त्रार्थ- ब्रह्मणस्पते हे ब्रह्मणस्पते, **उतिष्ठ** उठो। **देवयन्तः** देव-कामना करते हुए **त्वा** तुम्हारी ओर **ईमहे** आते हैं। **मरुतः** मरुत् **सुदानव** दानी **उप** निकट **प्र यन्तु** उद्धार करें। **इन्द्र** हे इन्द्र, **प्राशूः** शीघ्रगामी **सचा** सहगामी **भव** हो।

भावार्थ- देवत्व की कामना करते हुए हम परमात्मा की उपासना, याचना करें। हम सभी मरुत् अर्थात् मरणशील हैं। इन्द्र का अर्थ है ऐश्वर्यवान्, वे दानी हो, देवत्व प्राप्त करने की साधना में हमारे सहगामी हों।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- उत्-तिष्ठ (तिष्ठ् = ठहरना)। ब्रह्मणस्पते (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना, पत् = ऐश्वर्य होना)। देवयन्तः (देव, दिव् = खेलना, तेजस्वी होना, चमकनाः, यन - उद्धार करना)। त्वा (सर्वनाम)। ईमहे (ई = जाना, जानना, पाना, व्यापना)। उप (उपसर्ग)। प्र (उपसर्ग)। यन्तु (यन - उद्धार करना)। मरुतः (मृ = मरना)। सुदानव (सु - अच्छा, सुन्दर, दा, दद् = देना)। इन्द्र (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। प्राशूः (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, प्रा - पूर्ण करना, भरना, अश - व्याप्त होना, पहुंचना, पाना)। भव (भू = होना)। सचा (सच - पूरा समझना, अच्छी तरह जानना, सम्बन्धी होना, संसर्गी होना)।56।।

214. प्र नूनम् ब्रह्मणस्पतिः,
मन्त्रम् वदति उक्थ्यम्।
यस्मिन् इन्द्रो वरुणो मित्रो,
अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे।।57।।

मन्त्रार्थ- नूनम् निश्चय ही **ब्रह्मणस्पतिः** ब्रह्मणस्पति, ऐश्वर्यवान्, स्वामी, परमात्मा, वेद **उक्थ्यम्** उक्थ्य, बोलने योग्य **मन्त्रम्** मन्त्र को **वदति** बोलता है, **यस्मिन्** जिसमें **इन्द्रो** इन्द्र, **वरुणो** वरुण, **मित्रो** मित्र, **अर्यमा** अर्यमा **देवा** देवगण **ओकांसि** निवास **चक्रिरे** करते हैं।

भावार्थ- सभी मन्त्रों में देवशक्तियों का निवास है, इसका भाव है कि मन्त्र-साधना से देव-शक्तियों को प्राप्त कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्र (उपसर्ग)। नूनम् (अव्यय)। ब्रह्मणस्पतिः (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना, पत् = ऐश्वर्य होना)। मन्त्रम् (मन् - मनन करना, मानना, विचार करना, मन्त्र = गुप्त भाषण करना)। वदति (वद - कहना, स्पष्ट कहना, समझाना)। उक्थ्यम् (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना, उच् - एकत्र होना, सम्बन्ध होना)। इन्द्रो (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। वरुणो (वर - इच्छा करना, चाहना, आशा करना, वृ - वरण करना)। मित्रो (मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, प्रीति करना)। अर्यमा (ऋ = जाना, पाना, मिलाना)। देवा (देव, दिव् = खेलना, तेजस्वी होना, चमकनाः)। ओकांसि (ओक - निवास करना)। चक्रिरे (कृ - करना)।57।।

215. ब्रह्मणस्पते त्वम् अस्य यन्ता,
सूक्तस्य बोधि तनयम् च जिन्व।
विश्वम् तत् भद्रम् यत् अवन्ति देवा,
बृहत् वदेम विदथे सुवीराः।।
य इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पिता,
अन्नपते अन्नस्य नो देहि।।58।।

मन्त्रार्थ - ब्रह्मणस्पते हे ब्रह्मण्तास्पते, **त्वम्** तुम **अस्य** इसके **यन्ता** यन्ता **च** और **सूक्तस्य** सूक्त के **बोधि** बोधि (हो), **तनयम्** तनय को **जिन्व** प्रसन्न करो। **तत्** वह **भद्रम्** भद्र **विश्वम्** विश्व **यत्** जिसकी **देवा** देवगण **अवन्ति** रक्षा करते हैं, **सुवीराः** सुवीर **बृहत्** वृहत् **विदथे** विदथ में **वदेम** कहें। **अन्नपते** हे अन्नपते, **य** जो **इमा** इस **विश्वा** विश्व में **विश्वकर्मा** विश्वकर्मा (है), **यो** जो

नः हमारा **पिता** पिता (है), **नो** हमको **अन्नस्य** अन्न का **देहि** दान दीजिये।

भावार्थ - परम पिता परमात्मा की व्यवस्था तथा अनुशासन को जानें और मानें। उसकी कृपा से हमारी आवश्यकतायें पूर्ण होती हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - ब्रह्मणस्पते (बृह = बढ़ना, बड़ा होना, जानना, पत् = ऐश्वर्य होना)। त्वम् (सर्वनाम)। अस्य (सर्वनाम)। यन्ता (यम् = रोकना, स्वाधीन रखना, पोषण करना, यन -उद्धार करना)। सूक्तस्य (सु - अच्छा, सुन्दर, उक्-वच्-वद् - कहना, बोलना)। बोधि (बुध् = जानना, समझना)। तनयम् (तन् = विस्तार, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना)। च (अव्यय)। जिन्व (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना)। विश्वम् (सर्वनाम)। तत् (सर्वनाम)। भद्रम् (भन्द-भदि - शुभ कर्म करना, सुखी होना)। यत् (सर्वनाम)। अवन्ति (अव् = रक्षा करना)। देवा (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। बृहत् (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। वदेम (वद - कहना, स्पष्ट कहना, समझाना)। विदथे (विद - समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, स्थिर रहना)। सुवीराः (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। य (सर्वनाम)। इमा (सर्वनाम)। विश्वा (सर्वनाम)। विश्वकर्मा (कृ - करना)। यो (सर्वनाम)। नः (सर्वनाम)। पिता (पा - रक्षा करना, पालन करना)। अन्नपते (अन् = प्राणवान् होना, पत् - ऐश्वर्य होना, श्रीमान् होना, शक्तिमान् होना)। अन्नस्य (अन् = प्राणवान् होना, अद - खाना, भक्षण करना, नष्ट करना)। देहि = दीजिये (दा - देना, दान करना)।।58।।

इति पञ्चमः अध्यायः

ॐ

षष्ठः अध्यायः

लोकोपनिषद्

सूक्त - 1

216. अप इतो यन्तु पणयो,
असुम्ना देवपीयवः।
अस्य लोकः सुतावतः।
द्युभिः अहोभिः अक्तुभिः व्यक्तम्,
यमो ददातु अवसानम् अस्मै ।। 1 ।।

मन्त्रार्थ :- इतो यहां से **असुम्ना** असुम्न अथवा असुखकारी **देवपीयवः** देवहिंसक **पणयो** पणि अर्थात् व्यवहारी लोगों को **अप** दूर **यन्तु** रोकें। **अस्य** इसका **सुतावतः** सुतावत, रचनाशील **लोकः** लोक (है)। **द्युभिः** प्रकाशमय **अहोभिः** दिवसों द्वारा, **अक्तुभिः** रात्रियों द्वारा **व्यक्तम्** व्यक्त **यमो** यम **अस्मै** इसके लिए **अवसानम्** अवकाश **ददातु** दे।

भावार्थ :- देवों अर्थात् विद्वानों, सज्जनों के प्रति हिंसक व्यवहार करने वाले लोगों को दूर रखना ही उचित है। सुतावतः का अर्थ **सु** - उत्पन्न करना धातु से रचनाशील लिया गया है। सु का अर्थ अमानवी पराक्रम होना, अभिसवन करना आदि भी हैं। यह लोक अर्थात् संसार कर्म क्षेत्र है, यहां पराक्रम तथा सृजन, रचनाशीलता का ही महत्व है। यम का अर्थ है नियंत्रणकर्ता जो परमात्मा ही है। वह हमें प्रकाशमान दिन-रात प्रदान करता है जिससे हम कर्म करते रहें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अप (अव्यय)। इतो (सर्वनाम)। यन्तु (यम् = रोकना, नियन्त्रण करना)। पणयो (पण् = व्यवहार करना, उद्योग करना, व्यापार करना, स्तुति करना)। असुम्ना (सु - उत्पन्न करना, पैदा करना,

जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, सु - अच्छा, सुन्दर, मन् - मनन करना, विचार करना, मान्य करना)। देवपीयवः (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, पीय- हिंसा, द्वेष करना)।अस्य (सर्वनाम)। लोकः (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)।सुतावतः (सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम)। द्युभिः (द्यु - आगे जाना, समीप जाना, द्युत् -दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना)। अहोभिः (अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना)। अक्तुभिः (अक् - जाना, टेढ़ा जाना)।व्यक्तम् (वि-अक् - व्यक्त होना, स्पष्ट करना)।यमो (यम - प्रतिबन्ध करना, रोकना, अवरोध करना)।ददातु (दद - दान करना, देना, त्याग करना)। अवसानम् (अवस् - रक्षा करना, सुख पाना, रहना)। अस्मै (सर्वनाम)।1।।

217. सविता ते शरीरेभ्यः,
पृथिव्याम् लोकम् इच्छतु।
तस्मै युज्यन्ताम् उस्त्रियाः ।। 2 ।।

मन्त्रार्थ :- **सविता** सविता **ते** तुम्हारे **शरीरेभ्यः** शरीर के लिए **पृथिव्याम्** पृथ्वी पर **लोकम्** लोक को **इच्छतु** चाहे, इच्छा करे।**तस्मै** उसके लिए **उस्त्रियाः** उस्त्रिया को **युज्यन्ताम्** नियुक्त करे।

भावार्थ :- सविता देव परमात्मा साधक के लिए पृथ्वी लोक की इच्छा करे।इसका भाव है कि हम साधना करें, उचित कर्म करें तो परमात्मा की इच्छा होगी कि हमको यहाँ संसार में समुचित स्थान प्राप्त हो, इसके लिए वह उस्त्रिया नियुक्त करे का भाव है कि हमें उचित साधन, माध्यम भी प्राप्त होगा। उस्त्रिया बैल को भी कहते हैं जो बल, कार्यक्षमता, का प्रतीक है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। ते (सर्वनाम)। शरीरेभ्यः (शृ = सुनना, शॄ - शीर्ण होना, फटना)। पृथिव्याम् (पृथु = फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्यापक होना, विस्तृत होना, मोटा होना)। लोकम् (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। इच्छतु (इच्छ = इच्छा करना)। तस्मै (सर्वनाम)। युज्यन्ताम् (युज - जुड़ना, मिलाप

करना, एकत्र करना, चित्त स्थिर करना, मन को रोकना)। उस्त्रियाः (उषस् - प्रभात होना)।। 2 ।।

218. वायुः पुनातु सविता पुनातु,
अग्नेः भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा।
वि मुच्यन्ताम् उस्त्रियाः ।। 3 ।।

मन्त्रार्थ :- **अग्नेः** अग्नि की **भ्राजसा** दीप्ति द्वारा, **सूर्यस्य** सूर्य के **वर्चसा** तेज द्वारा **वायुः** वायु **पुनातु** पवित्र करे, **सविता** सविता **पुनातु** पवित्र करे। **उस्त्रियाः** उस्त्रिया को **वि मुच्यन्ताम्** मुक्त करें।

भावार्थ :- साधक के लिए परमात्मा तेज तथा पवित्रता प्रदान करता है, साधन प्राप्त होते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- वायुः (वा = गति करना, वे = बुनना)। पुनातु (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। अग्नेः (अग् = ऊर्ध्वगति करना)। भ्राजसा (भ्राज - चमकना, प्रकाशित होना)। सूर्यस्य (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। वर्चसा (वर्च् = प्रकाशित होना)। वि (उपसर्ग)। मुच्यन्ताम् (मुच् - घर्षण करना, ऐश्वर्य होना, पूजा करना, बोलना, कहना, मुक्त करना, त्याग करना, प्रसन्न होना)। उस्त्रियाः (उषस् -प्रभात होना)।3।।

219. सविता अश्वत्थे वो निषदनम्,
पर्णे वो वसतिः कृता।
गोभाज इत् किल असथ,
यत् सनवथ पुरुषम् ।। 4 ।।

मन्त्रार्थ :- **सविता** सविता ने **अश्वत्थे** अश्वत्थ में **वो** तुम्हारा **निषदनम्** स्थान, **पर्णे** पर्ण में **वो** तुम्हारा **वसतिः** आवास **कृता** बनाया। **यत्** जो **पुरुषम्** पुरुष (परमात्मा तथा मनुष्य) की **सनवथ** सेवा करता है, **किल** निश्चय **इत्** ही **गोभाज** गोसेवी **असथ** होता है।

भावार्थ :- सविता का अर्थ ऐश्वर्यवान्, उत्पन्न करने वाला परमात्मा है।

वृक्षों तथा पर्ण में उसने हमारा आवास बनाया है अर्थात् हमारे जीवन-यापन के साधन हमको वृक्ष-वनस्पतियों से प्राप्त होते हैं, अतः उनका संरक्षण आवश्यक है। पुरुष (परमात्मा तथा मनुष्य) की सेवा करने वाला गोसेवी होता है। गो शब्द के अर्थ पृथ्वी, वाणी, इन्द्रिय, किरणों से लिया गया है। साधारण गोसेवा से पशु-पालन, संरक्षण का सन्देश भी समझा जा सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। अश्वत्थे (अश- फैलाना, व्यापना, पहुँचना, पाना, प्राप्त करना, संग्रह करना, बटोरना, राशि करना, ढेर करना)। वो (सर्वनाम)। निषदनम् (निष - प्राप्त करना, ले जाना, नि- निश्चय ही, निरन्तर, सद्-षद् - बैठना, स्थित होना, जाना)। पर्णे (पर्ण - हरा करना, हरा होना)। वसतिः (वस - वसति करना, टिकना, निवास करना)। कृता (कृ = करना)। गोभाज (गु - अस्पष्ट बोलना, शब्द करना, मनन करना, भग्-भज् = सेवा करना, देना, दान करना, पकाना, सिद्ध करना, अन्नादि तैयार करना, अलग करना, भजना, भजन करना, उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना)। इत् (अव्यय)। किल (अव्यय)। असथ (अस - होना, रहना, जाना, लेना, प्रकाश करना, चमकाना, फेकना, उड़ाना, विखेरना)। यत् (सर्वनाम)। सनवथ (सन - सेवा करना)। पुरुषम् (पुर् - अग्रसर होना, मुख्य होना, पृ - पूर्ण करना, भरना, पालन करना, रक्षा करना, तृप्त करना)।4।।

220. सविता ते शरीराणि,
मातुः उपस्थ आ वपतु।
तस्मै पृथिवी शम् भव।। 5।।

मन्त्रार्थ :- **सविता** सविता **ते** तुम्हारे **शरीराणि** शरीरों को **मातुः** माता के **उपस्थ** उपस्थ में **आ वपतु** बोये। **तस्मै** उसके लिए **पृथिवी** पृथिवी **शम्** शान्त, कल्याणकारी **भव** हो।

भावार्थ :- सविता देव परमात्मा ने माता के उपस्थ अर्थात् गर्भ में शरीर को बोया अर्थात् स्थापित किया। जिस तरह बीज बोया जाता है, उससे विकसित होकर पौधा बनता है, उसी प्रकार माता के गर्भ में शरीर का बीज भी

विकसित होकर जीव के पूर्ण विकसित शरीर के रूप में स्वरूप ग्रहण करता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। ते (सर्वनाम)। शरीराणि (शृ = सुनना, शृ - शीर्ण होना, फटना)। मातुः (मा = मान करना, मापना)। उपस्थ (उप - समीप, स्थ = स्थित)। आ (उपसर्ग)। वपतु (वप - बीज बोना, बोना, उत्पन्न करना)। तस्मै (सर्वनाम)। पृथिवी (पृथ् = विस्तार होना, फेंकना, प्रेरणा करना)। शम् (शम्- प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना)। भव (भू = होना)।5।।

221. प्रजापतौ त्वा देवतायाम्,
उपोदके लोके निदधामि असौ।
अपः न शोशुचत् अघम्।। 6।।

मन्त्रार्थ :- **त्वा** तुमको **प्रजापतौ** प्रजापति **देवतायाम्** देवता में **असौ** इस **उपोदके** उपोदक **लोके** लोक में **निदधामि** धारण करता हूँ। **अपः** अपः **न** हमारे **अघम्** अघ, पाप को **शोशुचत्** सुखा दे, अथवा पवित्र करे।

भावार्थ :- प्रजापति अर्थात् प्रजाओं के रक्षक, पालक, स्वामी परमात्मा की शरण में रहें। उपोदक अर्थात् उदक है जिसके समीप में, ऐसा लोक या स्थान। उदक का सामान्य अर्थ जल भी है। शोशुचत् का स्वाभाविक अर्थ है पवित्र करे। शुच् धातु का अर्थ पवित्र करना है। इस शब्द में शुष् - सुखाना धातु मानकर इसका अर्थ सुखा दे, ऐसा भी किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्रजापतौ (प्र + जा, जन् = उत्पन्न होना, पत् - ऐश्वर्य होना)। त्वा (सर्वनाम)। देवतायाम् (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रीति करना, प्रसन्न होना, खेलना)। उपोदके (उप - समीप, उदि-उन्द् = आद्र होना, गीला होना)। लोके (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। निदधामि (नि- निश्चित, निरन्तर, दध-धा - धारण करना)। असौ (सर्वनाम)। अपः (अव्यय)। न (सर्वनाम)। शोशुचत् (शुच् = पवित्र करना, शुष् - सुखाना)। अघम् (अघ - पाप करना, अपराध करना)।। 6।।

222. परम् मृत्यो अनु परा इहि पन्थाम्,
यः ते अन्य इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ब्रवीमि,
मा नः प्रजाम् रीरिषो, मा उत वीरान्॥ 7॥

मन्त्रार्थ :- मृत्यो हे मृत्यु, **ते** तुम्हारा **परम्** परम् **पन्थाम्** मार्ग **देवयानात्** देवयान से **इतरो** इतर, **अन्य** अन्य (है), **अनु परा इहि** अनुसरण करते हुए आयें। **चक्षुष्मते** हे चक्षुष्मती, **शृण्वते** शृण्वती, तुमसे **ब्रवीमि** कहता हूँ, **नः** हमारे **प्रजाम्** प्रजा और **वीरान्** वीरों को **मा** मत **रीरिषो** मारो।

भावार्थ :- मृत्यु का मार्ग देवयान से परे अन्य है, इसका भाव है कि देवों, दिव्य जनों के मार्ग पर चलने वालों को मृत्यु का भय नहीं होता है। परमात्मा के उपासक दिव्य जन मृत्यु के भय से मुक्त हो जाते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- परम् (अव्यय)। मृत्यो (मृ = मरना, देहत्याग करना)। अनु (उपसर्ग)। परा (अव्यय)। इहि (इ = जाना, जानना, पाना)। पन्थाम् (पन्थ - जाना, घूमना)। यः (सर्वनाम)। ते (सर्वनाम)। अन्य (अव्यय)। इतरो (अव्यय)। देवयानात् (देव् = तेजस्वी होना, चमकना, या - जाना)। चक्षुष्मते (चक्ष् = देखना, साफ करना)। शृण्वते (शृण् = सुनना)। ब्रवीमि (ब्रू - कहना)। मा (मा - माम्)। नः (सर्वनाम)। प्रजाम् (प्र + जा, जन् = उत्पन्न होना)। रीरिषो (रिष - मार डालना या दुःख देना, मारने का यत्न करना)। उत (अव्यय)। वीरान् (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)॥ 7॥

सूक्त - 2

223. शम् वातः शम् हि ते घृणिः,
शम् ते भवन्तु इष्टकाः।
शम् ते भवन्तु अग्नयः,
पार्थिवासो मा त्वा अभि शूशुचन्॥ 8॥

मन्त्रार्थ :- ते तुम्हारे लिए **वातः** वात (और) **घृणिः** घृणि **शम्** शान्तिमय

भवन्तु हो, **ते** तुम्हारे लिए **इष्टकाः** इष्टक **शम्** शान्तिमय **भवन्तु** हों। **ते** तुम्हारे लिए **अग्नयः** अग्नियाँ **शम्** शान्तिमय **भवन्तु** हों, **पार्थिवासो** पार्थिव **त्वा** तुम्हें **मा** नहीं **शूशुचन्** शोक युक्त करें, सुखायें।

भावार्थ :- वात का अर्थ वायु तथा घृणि का अर्थ किरणमय अर्थात् सूर्य माना जाता है। पार्थिव का अर्थ पृथिवी सम्बन्धी अथवा पृथिवी से उत्पन्न होता है। पार्थिव शोकयुक्त न करें, सुखायें नहीं, इसका भावार्थ होगा कि सांसारिक कष्टों से पीड़ित या दुःखी नहीं हों।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- शम् (शम- प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना)। वातः (वात - सुखी होना, आनन्द करना, सेवा करना, जाना)। हि (अव्यय)। ते (सर्वनाम)। घृणिः (घृण - शब्द करना, प्रकाश करना)। भवन्तु (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। इष्टकाः (इष - चाहना, छानना, चुनना, जाना, जानना, पाना, निरन्तर देखना, निरन्तर करना)। अग्नयः (अग् = आगे जाना, गति करना)। पार्थिवासो (पृथ् = विस्तार होना, फेंकना, प्रेरणा करना)। मा (मा - माम्)। त्वा (सर्वनाम)। अभि (उपसर्ग)। शूशुचन् (शुच् - शोक करना, शोच होना, दुःखी होना, शुष- शुष्क होना, सूखना)।8॥

224. कल्पन्ताम् ते दिशः,
तुभ्यम् आपः शिवतमाः,
तुभ्यम् भवन्तु सिन्धवः।
अन्तरिक्षम् शिवम् तुभ्यम्,
कल्पन्ताम् ते दिशः सर्वाः॥ 9॥

मन्त्रार्थ :- ते तुम्हारे लिए **दिशः** दिशा **कल्पन्ताम्** कल्पित हो, **तुभ्यम्** तुम्हारे लिए **आपः** आपः **शिवतमाः** अत्यन्त कल्याणकारी हों, **तुभ्यम्** तुम्हारे लिए **सिन्धवः** सिन्धु **भवन्तु** हों। **तुभ्यम्** तुम्हारे लिए **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष **शिवम्** कल्याणकारी (हों), **ते** तुम्हारे लिए **सर्वाः** सभी **दिशः** दिशायें **कल्पन्ताम्**

कल्पित हों।

भावार्थ :- शुभकामना है कि प्रकृति कल्याणकारी हो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- कल्पन्ताम् (कल्प् - कल्पना करना, बनाना, रचना करना, शक्तिमान होना, समर्थ होना)। ते (सर्वनाम)। दिशः (दिश - दिखाना, समझाना, आज्ञा करना, कहना, बोलना, देना, पारितोषिक देना)। तुभ्यम् (सर्वनाम)। आपः (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना, पाना, अप - पालन करना)। शिवतमाः (शिव् = कल्याण करना)। भवन्तु (भु = जाना, घर्षण करना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। सिन्धवः (सिध - सिद्ध होना, पूर्ण होना, जाना, जानना, पाना, अध्ययन करना, दीक्षा देना, शुभ कार्य करना, सिञ् - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। अन्तरिक्षम् **(अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)**। शिवम् (शिव् = कल्याण करना)। सर्वाः (सर्वनाम)॥ 9॥

225. अश्मन्वती रीयते सम् रभध्वम्,
उत् तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्र आ जहीमो अशिवा ये असन्,
शिवान् वयम् उत् तरेम अभि वाजान्॥ 10॥

मन्त्रार्थ :- **अश्मन्वती** अश्मनवती **रीयते** चलती है। **सखायः** हे मित्रों, **सम् रभध्वम्** सम्यक्, साथ आनन्दित हो, उपक्रम करो, **उत् तिष्ठत** उठो, **तरता** तैरने वाले **असन्** हो जाओ। **अत्र** यहाँ **ये** जो **अशिवा** अशिव, (उनको) **जहीमो** त्याग देते हैं। **वयम्** हम **शिवान्** शिव **अभि वाजान्** अभिवाजों को **उत् तरेम** तैरने देते हैं।

भावार्थ :- अश्मनवती का अर्थ है पत्थर युक्त। इसका भावार्थ पथरीली नदी किया गया है। इसे रूपक मानकर समझा जा सकता है। जीवन-प्रवाह पथरीली नदी के समान है अर्थात् दुर्गम है। जो अशिव है, अकल्याणकारी है,

अशान्तिकर है, उनका त्याग कर दें तथा शिव अर्थात् कल्याणकारी साधनों को अपने जीवन प्रवाह में तैरने दें, साथ रखें तो जीवन प्रवाह आनन्दमय हो सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अश्मन्वती (अश् = भोजन करना, व्यापक होना, व्याप्त होना, फैलना, फैलाना, व्यापना, पहुँचना, प्राप्त करना, संग्रह करना, राशि करना, ढेर करना, तीव्रता से पहुँचना)। रीयते (री - झरना, टपकना, गिरना, नीचे आना)। सम् (उपसर्ग)। रभध्वम् (रभ - आनन्दित होना, प्रसन्न होना)। उत् तिष्ठत (उत् = ऊपर, तिष्ठ् = ठहरना, उत् तिष्ठ् - उठना, खड़े होना)। प्र (उपसर्ग)। तरता (तृ - पार जाना, जल पर तैरना, जीतना, नौकादि साधन से जल के पार जाना)। सखायः (सख् = मित्र होना)। अत्र (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। जहीमो (जह – परित्याग करना, छोड़ना)। अशिवा (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना, अ - नहीं, शिव् = कल्याण करना)। ये (सर्वनाम)। असन् (अस् - होना)। शिवान् (शिव् = कल्याण करना)। वयम् (सर्वनाम)। उत् (अव्यय)। तरेम (तृ - पार जाना, जाना, जल पर तैरना)। अभि (सर्वनाम)। वाजान् (वाज् - गति करना, जाना, जानना, पाना, तैयार करना, बल होना)॥ 10॥

226. अप अघम् अप किल्विषम्,
अप कृत्याम् अपो रपः।
अपामार्ग त्वम् अस्मत्,
अप दुःस्वप्न्यम् सुव॥ 11॥

मन्त्रार्थ :- **अघम्** अघ को **अप** दूर करो, **किल्विषम्** किल्विष को **अप** दूर करो, **कृत्याम्** कृत्या को **अप** दूर करो, **रपः** रपः को **अपो** दूर करो। **अपामार्ग** हे अपामार्ग, **त्वम्** तुम **अस्मत्** हमसे **दुःस्वप्न्यम्** दुःस्वप्न्य को **अप** दूर **सुव** फेंक दो।

भावार्थ :- अघ का अर्थ है पाप। किल धातु का अर्थ खेलना, श्वेत होना, शीतीकरण तथा किल्ब का अर्थ अन्धकार होना है। किल्बिष शब्द इनका नकारात्मक अर्थ बोधक है, अर्थात् किल्विष का अर्थ हुआ खेल-खिलवाड़

करना तथा जीवन को, उत्साह को अन्धकार से भर देना। सामान्यतः किल्बिष का भावार्थ भी पाप या अन्धकार माना जाता है। कृत्या शब्द कृ धातु से बनता है। इसका अर्थ हिंसा, विक्षेप, वयोहानि है। इन सब नकारात्मक भावों को दूर करने की कामना है। अपामार्ग का अर्थ है वह मार्ग जिससे दूर किया जा सके। अपामार्ग वनौषधि भी है जिससे रोग दूर होते हैं। लक्षणा से अपामार्ग का भावार्थ वे सभी उपाय तथा परमात्मा के उपासक, समाज के मार्गदर्शक हो सकते हैं जो दोष-दुर्गुण दूर करने में सहायक होते हैं। इस रूप में अपामार्ग कहकर परमात्मा को भी सम्बोधित किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अप (अव्यय)। अघम् (अघ - पाप करना, अपराध करना)। किल्विषम् (किल = निश्चय ही, सचमुच, किल् - खेलना, शीत होना)। कृत्याम् (कृती - कतरना, काटना, कृ - करना)। अपो (अव्यय)। रपः (रप - स्पष्ट बोलना)। अपामार्ग (अप - दूर, मार्ग - ढूँढ़ना, स्वच्छ करना, शुद्ध करना)। त्वम् (सर्वनाम)। अस्मत् (अपादान, बहुवचन)। दुःस्वप्न्यम् (दुः = बुरा, कठिन, स्वप् - सोना, निद्रा लेना)। सुव (सू- भेजना, उड़ाना)।।11।।

227. सुमित्रिया नः आप ओषधयः सन्तु,
दुर्मित्रियाः तस्मै सन्तु।
यो अस्मान् द्वेष्टि,
यम् च वयम् द्विष्मः ।। 12 ।।

मन्त्रार्थ :- आपः आपः **ओषधयः** ओषधियाँ **नः** हमारे लिए **सुमित्रिया** अच्छे मित्र **सन्तु** हों। **तस्मै** उनके लिए **दुर्मित्रियाः** दुर्मित्र हों, **यो** जो **अस्मान्** हमसे **द्वेष्टि** द्वेष करते हैं, **च** और **यम्** जिनसे **वयम्** हम **द्विष्मः** द्वेष करते हैं।

भावार्थ :- कामना की गयी है कि प्रकृति हमारे लिए अच्छे मित्र बनकर रहे। ऐसी भावना रखने वाले हम लोगों से जो द्वेष करते हैं, और स्वाभाविक है कि ऐसे लोगों से प्रकृति संरक्षक होने के कारण हमको भी द्वेष होगा ही, ऐसे लोगों के लिए प्रकृति दुर्मित्र बनी रहेगी अर्थात् प्रकृति किसी की शत्रु तो नहीं होती है, परन्तु ऐसे लोगों के लिए प्रकृति का अच्छा मित्र बनकर रहना भी

सम्भव नहीं हो पाता है। अतः प्रकृति का संरक्षण करना महत्वपूर्ण है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सुमित्रिया (सु - अच्छा, सुन्दर, मिद - प्रीति करना, मृदुल होना)। नः (सर्वनाम)। आपः (आप् - व्याप्त होना, जाना, पाना, अवलम्ब होना)। ओषधयः (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा करना)। दुर्मित्रियाः (दु - दुःख भोगना, जलना, तप्त करना, जलाना, मिद - प्रीति करना, मृदुल होना)। तस्मै (सर्वनाम)। सन्तु (अस् - होना)। यो = जो (सर्वनाम)। अस्मान् = हमको (सर्वनाम)। द्वेष्टि (द्विष् = द्वेष करना)। यम् (सर्वनाम)। च (अव्यय)। वयम् (सर्वनाम)। द्विष्मः (द्विष् = द्वेष करना)।।12।।

228. अनड्वाहम् अनु आरभामहे,
सौरभेयम् स्वस्तये।
स न इन्द्र इव देवेभ्यो,
वह्निः सन्तरणो भव।। 13।।

मन्त्रार्थ :- अनड्वाहम् अनडवाह **सौरभेयम्** सौरभेय को **स्वस्तये** कल्याण के लिए **आरभामहे** आरम्भ करते हैं। **स** वह **वह्निः** वह्नि **न** हमारे लिए **देवेभ्यो** देवों के लिए **इन्द्र** इन्द्र के **इव** समान **सन्तरणो** पार कराने वाला **भव** हो।

भावार्थ :- देवों अर्थात् दिव्य प्राकृतिक शक्तियों तथा देवजनों के लिए इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा पार कराने वाला है। उसी प्रकार हमारे लिए वह्नि भी पार कराने वाला हो। वह धातु का अर्थ वहन करना है, अतः वह्नि का अर्थ वहन करने वाला होगा। सौरभेय का अर्थ है सुरभि का, सुरभित। अनड्वाह का अर्थ है अनड् का वहन करने वाला। अन् धातुका अर्थ है प्राण होना। अनड्वाह का अर्थ हुआ प्राणों का वहन करने वाला अर्थात् प्राणी अथवा सभी जीवों में प्राणों का वहन करने वाला परमात्मा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अनड्वाहम् (अन - चेतन होना, समर्थ होना, जाना, अ - नहीं, नड् - गिरना, पतन होना, अन् - नहीं, अड् - व्याप्त होना, उद्यम करना, प्रयत्न करना, अधिकार में लाना, वह् - वहन करना, ले जाना)। आरभामहे (आ - समन्तात्, सम्पूर्ण, रभ - आनन्दित होना, प्रसन्न होना)।

सौरभेयम् (सुर - चमकना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, सु - अच्छा, सुन्दर, रभ - आनन्दित होना, प्रसन्न होना)। स्वस्तये (सु - अच्छा, अस् - होना, स्वस्ति = कल्याण)। स (सर्वनाम)। न (अव्यय)। इन्द्र (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। इव (अव्यय)। देवेभ्यो (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। वह्निः = वह्नि (वह् = वहन करना, ले जाना)। सन्तरणो (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, तृ - पार जाना, पर तीर को जाना, पार जाना)। भव (भू = होना)।।13।।

229. उत् वयम् तमसः परि, स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवम् देवत्रा सूर्यम्, अगन्म ज्योतिः उत्तमम्।।14।।

मन्त्रार्थ :- वयम् हम **तमसः** तमस् (अन्धकार) से **परि** परे **उत्तरम्** उत्तर में **स्वः** स्वः को **पश्यन्त** देखते हैं। **देवत्रा** देवों का त्राण करने वाले **उत्तमम्** उत्तम **ज्योतिः** ज्योति **सूर्यम्** सूर्य **देवम्** देव को **अगन्म** (हम) प्राप्त हुए।

भावार्थ :- स्वः का अर्थ ऐश्वर्यवान्, सब कुछ उत्पन्न करने वाला परमात्मा के साथ स्व अर्थात् अपना वास्तविक स्व-रूप भी मान सकते हैं। अज्ञान के अन्धकार से परे वह दिव्य स्वरूप उत्तर अर्थात् श्रेष्ठतर है। उसे देख सकें तो उस उत्तर से भी बढ़कर उत्तम अर्थात् श्रेष्ठतम ज्योति को प्राप्त कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- उत् (अव्यय)। वयम् (सर्वनाम)। तमसः (तम - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। परि (उपसर्ग)। स्वः (सु = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। पश्यन्त (पश् = देखना)। उत्तरम् (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तृ, तृ = तैरना, पार जाना)। देवम् = देव को (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। देवत्रा (देव्, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना)। सूर्यम् (सुर् = ऐश्वर्य प्रकाश होना)। अगन्म (गम् = जाना, जानना, पाना)। ज्योतिः (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। उत्तमम् (उत् = ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)।।14।।

सूक्त - 3

230. इमम् जीवेभ्यः परिधिम् दधामि,
मा एषाम् नु गात्, अपरो अर्थम् एतम्।
शतम् जीवन्तु शरदः पुरूचीः,
अन्तः मृत्युम् दधताम् पर्वतेन।।15।।

मन्त्रार्थ :- इमम् इस **परिधिम्** परिधि को **जीवेभ्यः** जीवों के लिए **दधामि** धारण करता हूँ। **नु** निश्चय ही **एतम्** यह **अपरो** अन्य **अर्थम्** अर्थ के लिए **एषाम्** इसको **मा** मत **गात्** ले जाओ। **शतम्** सौ **शरदः** शरद **पुरूचीः** बहुत उपासना करते हुए **जीवन्तु** जीवित रहो। **मृत्युम्** मृत्यु को **अन्तः** भीतर **पर्वतेन** पर्वत के समान **दधताम्** धारण करो।

भावार्थ :- जीवों के लिए परमात्मा तथा प्रकृति की ओर से परिधि अर्थात् सीमा या मर्यादा स्थापित है। प्रकृति की मर्यादा का उल्लंघन करने पर रोग और मृत्यु का कष्ट स्वाभाविक है। उसका पालन करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। पुरूचीः का अर्थ बहुत स्तुति करते हुए, एकत्र करते हुए है। पुर् धातु का अर्थ मुख्य, अग्रसर होना तथा उच् धातु का अर्थ एकत्र करना है। उच्-वद् धातु का अर्थ कहना, बोलना होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इमम् (सर्वनाम)। जीवेभ्यः (जीव् = प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। परिधिम् (परि - सभी तरफ)। दधामि (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। मा (मा - माम्)। एषाम् (सर्वनाम)। नु (अव्यय)। गात् (गा = स्तुति करना, जाना, जानना)। अपरो (सर्वनाम)। अर्थम् (अर्थ - मांगना, याचना करना, चाहना)। एतम् (सर्वनाम)। शतम् (शत - सौ)। जीवन्तु (जीव् = प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। शरदः (शृ - सुनना, जाना, जानना, पाना)। पुरूचीः (पुर - मुख्य, अग्रसर होना, उच् - एकत्र करना, उच्-वद् - कहना, बोलना)। अन्तः (उपसर्ग, सर्वनाम)। मृत्युम् (मृ = मरना, देहत्याग करना)। दधताम् (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। पर्वतेन (पर्व = पूरा करना, भरना)।।15।।

231. अग्ने आयूंषि पवस,
आ सुव ऊर्जम् इषम् च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ 16॥

मन्त्रार्थ :- **अग्ने** हे अग्नि, **आयूंषि** आयु (जीवन) को **पवस** पवित्र करो। **नः** हमारे लिए **ऊर्जम्** ऊर्जा **च** और **इषम्** गति **आ सुव** उत्पन्न करो। **दुच्छुनाम्** दुष्टों को **आरे** दूर ही **बाधस्व** बाधित करो।

भावार्थ :- अग्नि परमात्मा की उपासना से जीवन पवित्र हो, उससे ऊर्जा तथा गतिशीलता, कार्यक्षमता प्राप्त हो तथा दुष्ट और दुष्टता दूर ही रहे, निकट न आने पायें, इसके लिए उपाय अवश्य करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- **अग्ने** (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। **आयूंषि** (अय् = गति करना)। **पवसे** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **आ** उपसर्ग। **सुव** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **ऊर्जम्** (ऊर्ज् = बल होना, प्राणवान् होना)। **इषम्** (इष् - इच्छा करना, चाहना, बीनना, छानना, चबाना, जाना, पाना, निरन्तर देखना)। **च** (अव्यय)। **नः** (सर्वनाम)। **आरे** (अव्यय)। **बाधस्व** (बाध - रोकना, अटकाव करना, बाधा देना, दुःख देना)। **दुच्छुनाम्** (दु = जाना, दुःख होना, तप्त करना, जलना, जलाना)॥ 16॥

232. आयुष्मान् अग्ने हविषा वृधानो,
घृतप्रतीको घृतयोनिः एधि।
घृतम् पीत्वा मधु चारु गव्यम्,
पिता इव पुत्रम् अभि रक्षतात् इमाम्॥ 17॥

मन्त्रार्थ :- **आयुष्मान्** हे आयुष्मान् **अग्ने** अग्नि, **हविषा** हविष् से, दान से **वृधानो** बढ़ने वाले, **घृतप्रतीको** घृत-प्रतीक, **घृतयोनिः** घृत-योनि **एधि** प्राप्त करता है। **घृतम्** घृत, **मधु** मधु, **चारु** चारु **गव्यम्** गव्य **पीत्वा** पीकर **पिता** पिता के **इव** समान **इमाम्** इस **पुत्रम्** पुत्र की **रक्षतात्** रक्षा करो।

भावार्थ :- अग्नि अर्थात् परमात्मा तथा तेजस्वी उपासक तो आयुष्मान्

हैं ही। वे दान से बढ़ने वाले हैं, घृत-प्रतीक हैं अर्थात् अभिसिंचन ही उनका प्रतीक है। वे घृत-योनि हैं अर्थात् अभिसिंचन ही उनका उद्गम है। मन्त्र का भाव है कि समाज के लिए सहयोग तथा अनुदान की भावना रखें तो सबका हित है। इस मन्त्र सहित कुछ मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द भी अनेक प्रकाशित संहिताओं में मिलता है। प्रतीक धार्मिक कर्मकाण्ड में मन्त्रों का प्रयोग करने पर स्वाहा, स्वधा, नमः जैसे शब्द बोले जाते हैं, जैसे वेद पाठ करते समय मन्त्रों से पूर्व ॐ का उच्चारण किया जाता है। अनेक पुस्तकों में मन्त्रों के प्रारम्भ में ॐ लिखा भी जाता है। स्वाहा शब्द का अर्थ अपनी व्यापकता, आत्मविस्तार होता है। भावना यही है कि हम जो शुभ कार्य करते हैं, वह विस्तृत हो, सभी को उसका लाभ मिले। स्वाहा शब्द की निरुक्ति- व्युत्पत्ति के अनुसार सु का अर्थ है अच्छा, सुन्दर, स्व का अर्थ है अपना, तथा अह् धातु का अर्थ है, व्यापक होना। (सु + आहा, स्व + अहा, आहा, अह् = व्यापक होना)।।17॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- आयुष्मान् (अय् = गति करना)। अग्ने (अग् = ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। हविषा (हु = दान-आदान करना, देना)। वृधानो (वृध - बढ़ना, अधिक होना)। घृतप्रतीको (घृ -गीला करना, बूंद बूंद गिरना, टपकना, क्षरित होना, सिञ्चन करना, सींचना, टपकना, क्षरण होना, झरना, चमकना, प्रकाश करना, घर्षण होना, नाश होना, शब्द होना, प्र - प्रकृष्ट, अधिक, तिक् - गति करना, चाल चलना, दुःख देने का प्रयास करना, तीक् - जाना, जानना, पाना)। घृतयोनिः (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना, यु - मिलाना, अलग करना)। एधि (इ - जाना, पाना)। घृतम् (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाशित होना)। पीत्वा (पी - पीना, प्राशन करना)। मधु (मध् = मधुर होना, मीठा होना)। चारु (चर - जाना, खाना, आचरण करना, संशय होना)। गव्यम् (गु - अस्पष्ट बोलना, शब्द करना)। पिता (पा - संरक्षण करना)। इव (अव्यय)। पुत्रम् (पू - पवित्र करना)। अभि (उपसर्ग)। रक्षतात् (रक्ष - रक्षण करना, पालन करना)। इमाम् (सर्वनाम)।।17॥

233. परि इमे गाम् अनेषत, परि अग्निम् अहृषत।
देवेषु अक्रत श्रवः, क इमाम् आ दधर्षति॥ 18॥

मन्त्रार्थ : इमे इस **गाम्** गति को **अनेषत** प्राप्त किया, **अग्निम्** अग्नि को **अहृषत** प्रसन्न किया, **देवेषु** देवों में **श्रवः** श्रवण **अक्रत** किया, **इमाम्** इसको **क** कौन **आ दधर्षति** जीत सकता है।

भावार्थ :- सक्रियता तथा उपासना अर्थात् कर्म और ईश्वर-विश्वास दोनो महत्वपूर्ण हैं। ईश्वर पर विश्वास हो, उपासना करते रहें तथा यथाशक्ति कर्म भी करें तो सफलता अवश्य मिलती है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- परि (उपसर्ग)। इमे (सर्वनाम)। गात् (गा = स्तुति करना, जाना, जानना)। अनेषत (अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, निष् - प्राप्त करना, ले जाना, पाना)। अग्निम् (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। अहृषत (हृष- प्रसन्न होना, सन्तुष्ट होना)। देवेषु (दिव्, देव् = चमकना, जानना)। अक्रत (कृ = करना)। श्रवः (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। कः (सर्वनाम)। इमाम् (सर्वनाम)। आ (उपसर्ग)। दधर्षति (धृष्-धर्ष - जीतना, गर्व करना, चतुर होना, धारण करना, कर्षण करना)।॥18॥

234. क्रव्यादम् अग्निम् प्र हिणोमि दूरम्,
यमराज्यम् गच्छतु रिप्रवाहः।
इह एव अयम् इतरो जातवेदा,
देवेभ्यो हव्यम् वहतु प्रजानन्॥ 19॥

मन्त्रार्थ :- क्रव्यादम् क्रव्याद, निर्दयता को खाने वाला, क्रव्य - करणीय को खाने वाला **अग्निम्** अग्नि को **दूरम्** दूर करते हैं, **रिप्रवाहः** रिप्रवाह **यमराज्यम्** यमराज्य को **गच्छतु** जायें। **इह** यहाँ **एव** ही **अयम्** यह **इतरो** अन्य **प्रजानन्** प्रजानन् **जातवेदा** जातवेद **देवेभ्यो** देवों के लिए **हव्यम्** हव्य को **वहतु** वहन करें।

भावार्थ :- अग्नि तो ऊर्जा है, शक्ति है। भौतिक अग्नि ही नहीं, उपासना - साधना तथा ज्ञान - विज्ञान से प्राप्त ऊर्जा भी उपयोग की दृष्टि से उपयोगी

तथा अनुपयोगी हो सकती है। जो अग्नि या ऊर्जा क्रव्याद अर्थात् करने योग्य कर्म को खाने लगे तो ऐसी ऊर्जा अथवा शक्ति-सामर्थ्य वाले लोगों को भी दूर रखना ही उचित होता है। प्रजानन् अर्थात् उत्पन्न करते हुए तथा जातवेद अर्थात् वेद से उत्पन्न अग्नि ही देवों के लिए हव्य अर्थात् अनुदान का वहन करने में समर्थ है, हम उसे ही धारण करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- क्रव्यादम् (क्रू, क्रूर् = निर्दय होना, निर्दयता करना, कृ - करना)। अग्निम् (अग् - अगि = गति करना, आगे जाना)। प्र (उपसर्ग)। हिणोमि (हि -जाना, बढ़ना, जानना, पाना)। दूरम् (अव्यय अथवा दु = जाना, दुःख पाना, दुःख देना)। यमराज्यम् (यम - स्वाधीन रखना, काबू में रखना, पोषण करना, खाने को देना)। गच्छतु (गम्, गच्छ् = जाना)। रिप्रवाहः (रि = हिंसा करना, जानना)। इह (सर्वनाम)। एव (अव्यय)। अयम् (सर्वनाम)। इतरो (सर्वनाम)। जातवेदा (जन् = उत्पन्न होना, विद् = जानना)। देवेभ्यो (दिव्, देव् = चमकना, जानना)। हव्यम् (हु = आदान-प्रदान करना, खाना)। वहतु (वह - बहना, झरना, ढोना, ढो ले जाना)। प्रजानन् (प्र + जा, जन् = उत्पन्न होना)॥ 19॥

235. वह वपाम् जातवेदः पितृभ्यो,
यत्र एनान् वेत्थ निहितान् पराके।
मेदसः कुल्या उप तान् स्रवन्तु,
सत्या एषाम् आशिषः सम् नमन्ताम्॥ 20॥

मन्त्रार्थ :- जातवेदः जातवेद **पितृभ्यो** पितरों के लिए **वपाम्** वपा को **वह** वहन करो। **यत्र** जहाँ **पराके** दूर **निहितान्** निहित **एनान्** इनको **वेत्थ** जानते हो। **तान्** उनके **उप** निकट **मेदसः** मेद की **कुल्या** कुल्या **स्रवन्तु** स्रवित हों। **एषाम्** इनके **आशिषः** आशीष **सत्या** सत्य (हैं), **सम्** सम्यक् रूप से **नमन्ताम्** नमन करें।

भावार्थ :- वप धातु का अर्थ बीज बोना है, अतः वपा का अर्थ बीज वपन अथवा कृषि-कर्म है। विद्वान् पितरों - पूर्वजों, अग्रजों के लिए कृषि का वहन

करो। जो बीज है ज्ञान का, विद्या का, विचार का, उसे बोते, उगाते रहो, जिससे वह फलता-फूलता रहे, उसका विस्तार होता रहे। ऐसे अनेक विद्वान् पितर दूर स्थानों पर होते हैं। उनके सुख-साधन की भी चिन्ता करते रहें। जीवन - यापन के साधन जल-धारा, अन्न तथा अन्य सुविधाएं भी उपलब्ध कराने का प्रयास करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- वह (वह् = ले जाना, वहन करना)। वपाम् (वप - बीज बोना, बोना, उत्पन्न करना, पैदा करना, अन्नादि काटना)। जातवेदः (जन् = उत्पन्न होना, विद् = जानना)। पितृभ्यो (पा - रक्षा करना, पालन करना)। यत्र (सर्वनाम)। एनान् (सर्वनाम)। वेत्थ (विद् = जानना)। निहितान् (नि + हितान्, हि - जाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)। पराके (अव्यय)। मेदसः (मिद - स्नेह करना)। कुल्या (कुल - बटोरना, अपने के समान वर्तना, सजातीयता से रहना, गिनना)। उप (उपसर्ग)। तान् (सर्वनाम)। स्रवन्तु (सृ- जाना, सरकना)। सत्या (सत् = सत्य होना, अस्तित्व होना)। एषाम् (सर्वनाम)। आशिषः (आ + शिष् = शेष रहना, अधिक होना, विशेषता होना)। सम् (उपसर्ग)। नमन्ताम् (नम- नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)।।20।।

236. स्योना पृथिवि नो भव,
अनृक्षरा निवेशनी।
यच्छ आ नः शर्म सप्रथाः,
अप नः शोशुचत् अघम्।। 21।।

मन्त्रार्थ :- **पृथिवि** पृथिवी **नो** हमारे लिए **स्योना** सुखकारी **अनृक्षरा** अहिंसक, **निवेशनी** निवेशनी **भव** हो। **नः** हमारे लिए **शर्म** शर्म **सप्रथाः** सप्रथा **यच्छ** प्रदान करो। **नः** हमारे **अघम्** पाप को **अप** दूर **शोशुचत्** सुखा दो।।21।।

भावार्थ :- पृथिवी को सुखकारी बनाये रखने के लिए हम भी प्रकृति संरक्षण का ध्यान रखें। प्रकृति को हानि पहुँचाने के पाप से दूर रहें, प्रकृति को नष्ट न करें।।21।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- स्योना (स्योन् = सुख होना, सुख देना)। पृथिवि (पृथ = विस्तार होना, फैलाना, फेंकना)। नो (सर्वनाम)। भव (भू = होना)। अनृक्षरा (अ - नहीं, ऋक्ष - मार डालना या दुःख देने का यत्न करना)। निवेशनी (नि = बिना, बाहर, निश्चित, निरन्तर (उपसर्ग), विश - घुसना, भीतर जाना, धंसना)। यच्छ (यच्छ = देना)। आ (उपसर्ग)। शर्म (शर्म् = सुख होना, श्रीमान् होना, सम्मानित होना)। सप्रथाः (स = सहित, साथ (उपसर्ग), प्रथ = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। अपः (अव्यय)। शोशुचत् (शुच् = पवित्र करना, शुष् - सुखाना)। अघम् (अघ - पाप करना, अपराध करना)।।21।।

237. अस्मात् त्वम् अधि जातो असि,
त्वत् अयम् जायताम् पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।। 22।।

मन्त्रार्थ :- **अस्मात्** इससे **त्वम्** तुम **अधि जातो** उत्पन्न हुए **असि** हो, **त्वत्** तुमसे **अयम्** यह **पुनः** पुनः **जायताम्** उत्पन्न हो। **असौ** यह **स्वर्गाय** स्वर्ग **लोकाय** लोक के लिए **स्वाहा** व्यापक हो।

भावार्थ :- परमात्मा, प्रकृति तथा समाज से ही हमारा अस्तित्व बनता है। जो कुछ हम समाज से तथा प्रकृति से लेते हैं, वह देना भी हमारा कर्तव्य है। गुरु से प्राप्त विद्या तथा समाज से प्राप्त सहयोग के लिए हमारा दायित्व है कि हम भी लोगों को विद्या तथा सहयोग प्रदान करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अस्मात् (सर्वनाम)। त्वम् (सर्वनाम)। अधि (उपसर्ग)। जातो (जन् = उत्पन्न होना)। असि (अस् - होना)। त्वत् (सर्वनाम)। अयम् (सर्वनाम)। जायताम् (जन् = उत्पन्न होना)। पुनः (अव्यय)। असौ (सर्वनाम)। स्वर्गाय (सू- ऐश्वर्य युक्त, पराक्रम होना, गम् - जाना)। लोकाय (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, आहा, अह् = व्यापक होना)।।22।।

इति षष्ठः अध्यायः

ॐ

सप्तमः अध्यायः

वेदोपनिषद्

सूक्त - 1

**238. ऋचम् वाचम् प्र पद्ये, मनो यजुः प्र पद्ये।
साम प्राणम् प्र पद्ये, चक्षु श्रोत्रम् प्र पद्ये।
वाक्-ओजः सह ओजो, मयि प्राणापानौ ॥ 1 ॥**

मन्त्रार्थ :- वाचम् वाणी **ऋचम्** ऋचा अर्थात् ऋक् वेद को **प्र पद्ये** प्राप्त हो, **मनो** मन **यजुः** यजुर्वेद को **प्र पद्ये** प्राप्त करे, **प्राणम्** प्राण **साम** सामवेद को **प्र पद्ये** प्राप्त हो, **चक्षु** चक्षु अर्थात् नेत्र **श्रोत्रम्** श्रोत्र (अथर्ववेद अथवा सम्पूर्ण वेद) को **प्र पद्ये** प्राप्त हो। **मयि** मेरे **प्राणापानौ** प्राण-अपान में **वाक्** वाक् का **ओजः** ओज तथा **सह** सहयोग का **ओजो** ओज (हो)।

भावार्थ :- हमारा जीवन वेदमय हो तथा इससे हमारी वाणी में प्रभाव हो तथा सहयोग का बल भी बना रहे।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- ऋचम् (ऋच - प्रशंसा करना, स्तुति करना, आच्छादित करना, ढकना, चमकना)। **वाचम्** (वच - बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **प्रपद्ये** (प्र + पद्यैः, पद - स्थानान्तर करना, प्राप्त होना)। **मनो** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना)। **यजुः** (यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। **साम** (साम - सान्त्वना देना, समाधान करना, शान्त करना)। **प्राणम्** (प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। **चक्षु** (चक्ष् - साफ बोलना, कहना, देखना)। **श्रोत्रम्** (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **वाक्** (वच- बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **ओजः** (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। **सह** (सर्वनाम)। **मयि** (सर्वनाम)। **प्राणापानौ** (प्रा - पूर्ण करना, तृप्त करना, प्र -

अधिक, प्रकृष्ट, अन् - जीवन होना, प्राण होना)॥1॥

**239. यत् मे छिद्रम् चक्षुषो,
हृदयस्य मनसो वा अति तृण्णम्,
बृहस्पति मे तत् दधातु,
शम् नो भवतु भुवनस्य यः पतिः ॥ 2 ॥**

मन्त्रार्थ :- मे मेरे **चक्षुषो** चक्षुओं का, **हृदयस्य** हृदय का **वा** अथवा **मनसो** मन का **यत्** जो **छिद्रम्** छिद्र (हो), **तत्** उसे **बृहस्पति** बृहस्पति **अति** अत्यधिक **तृण्णम्** तृण, वाणी, उपदेश कर **दधातु** धारण करे (अर्थात् परमात्मा मुझे उससे बचा ले)। **यः** जो **भुवनस्य** भुवन का **पतिः** स्वामी (है), **नो** हमारे लिए **शम्** कल्याणकारी **भवतु** हो।

भावार्थ :- हमारे दोष-दुर्गुण दूर हों, इसके लिए हम प्रयास करें तथा परमात्मा से प्रार्थना भी करें। पूरे मन से तथा सच्ची भावना से प्रयास करें तो इसमें सफलता भी अवश्य मिलेगी। दोष-दुर्गुण दूर होने पर ही हमारा कल्याण हो सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यत् (सर्वनाम)। **मे** (सर्वनाम)। **छिद्रम्** (छिद्र - छेद करना)। **चक्षुषो** (चक्ष् = देखना, साफ कहना)। **हृदयस्य** (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **मनसो** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **वा** (अव्यय)। **अति** (उपसर्ग, अव्यय)। **तृण्णम्** (तृण् - घास चरना, खाना, शब्द करना, अंकुरित होना)। **बृहस्पतिः** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **तत्** (सर्वनाम)। **दधातु** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **शम्** (शम = प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना)। **नो** (सर्वनाम)। **भवतु** (भू = होना)। **भुवनस्य** (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **यः** (सर्वनाम)। **पतिः** (पत् = ऐश्वर्य होना)॥2॥

**240. भूः भुवः स्वः, तत् सवितुः वरेण्यम्,
भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ 3 ॥**

मन्त्रार्थ :- भूः भू **भुवः** भुवः **स्वः** स्वः **सवितुः** सविता, उत्पन्न करने वाला, ऐश्वर्यवान् **देवस्य** देव के **तत्** उस **वरेण्यम्** वरेण्य **भर्गो** भर्ग को **धीमहि** धारण करते हैं, **यो** जो **नः** हमारी **धियो** बुद्धि को **प्रचोदयात्** प्रेरित करे।

भावार्थ :- हम परमात्मा की उपासना करते हैं, उसके भर्ग अर्थात् पोषण धारण करने योग्य तेज को धारण करते हैं, अपने जीवन में अपनाते हैं, तो हमको परमात्मा से सद्प्रेरणा तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

विशेष :- भूः भुवः स्वः व्याहृतियाँ कही जाती हैं। सामान्यतः इनका अर्थ प्राण स्वरूप, दुःख नाशक, सुख स्वरूप किया जाता है। भूः तथा भुवः शब्द भू धातु से ही उत्पन्न हैं जिनका अर्थ होना तथा हो चुका या होने वाला कर सकते हैं। स्वः शब्द की धातु सु होगी जिसका अर्थ उत्पन्न करना या होना तथा ऐश्वर्य होना होता है। हमारा होना प्राण रहने तक ही सम्भव है, जिसे हम चाहते हैं कि हमारे जीवन में न रहे, बीत जाये वह दुःख है, उस दुःख का न रहने का कारक होना ही दुःख नाशक होने का भाव है। उत्पन्न होना तथा ऐश्वर्य होना ही तो सुख है। जिस परमात्मा की कृपा से यह सम्भव होता है, वह भू भुवः स्वः अर्थात् प्राण स्वरूप, दुःख नाशक, सुख स्वरूप कहा जाता है। भर्ग शब्द भृज् धातु से बनता है तो इसका अर्थ भूनना, दहन करना होता है। इसका अर्थ पापों को भूनने, जलाकर नष्ट करने वाले तेज से लिया जाता है। पापों, कषाय-कल्मषों, भ्रमों को जलाने के बाद तेजोमय स्वरूप प्राप्त होता है, अतः भर्ग का भावार्थ तेज किया जाता है। भर्गो पद में भृ धातु मानने पर इसका अर्थ भरण, पोषण, धारण करने वाला होगा। भृ धातु का अर्थ भरण, पोषण, धारण करना होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- भूः (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **भुवः** (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना, मिल जाना, एकत्र करना)। **स्वः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **तत्** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **वरेण्यम्** (वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, नियमित करना, आच्छादित करना)। **भर्गो** (भृ = भरण, पोषण, धारण करना)। **देवस्य** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना)। **धीमहि**

(धी = बुद्धि , प्रज्ञा होना, धि = धारण करना)। **धियो** (धी = बुद्धि , प्रज्ञा होना, धि = धारण करना)। **यो** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **प्रचोदयात्** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, चुद् = प्रेरणा देना)॥ 3॥

241. कया नः चित्र आ भुवत्,
ऊती सदा वृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता॥ 4॥

मन्त्रार्थ :- कया किसके द्वारा (किस उपाय द्वारा) **चित्र** चित्र (अद्भुत अथवा चित्र या रूप वाला) **सदा** सदा **वृधः** वृद्धि करने वाला **ऊती** रक्षा करने वाला (परमात्मा) **नः** हमारा **सखा** सखा **आ भुवत्** हुआ, **कया** किस **शचिष्ठया** वाणी द्वारा **वृता** वर्तमान (रहता है)।

भावार्थ :- जिस उपाय से परमात्मा हमारा मित्र बन जाता है तथा जिस वाणी से वह हमारे जीवन में इस रूप में वर्तमान रहता है, उसे जानना चाहिए, वह यही वेदवाणी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- कया (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **चित्र** (चित्र - चित्र बनाना, आश्चर्य करना, आश्चर्य से देखना)। **आ** उपसर्ग। **भुवत्** (भू = होना)। **ऊती** (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना, अव - रक्षा करना)। **सदा** (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना)। **वृधः** (वृध - बढ़ना, अधिक होना)। **सखा** (सख् = मित्र होना)। **शचिष्ठया** (शच- स्पष्ट बोलना)। **वृता** (वृत- वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, पसन्द करना, होना)॥ 4॥

242. कः त्वा सत्यो मदानाम्,
मंहिष्ठो मत्सत् अन्धसः।
दृढा चित् आरुजे वसु॥ 5॥

मन्त्रार्थ :- कः क्या **सत्यो** सत्य **त्वा** तुमको **मदानाम्** मदो में **मंहिष्ठो** महानतम, सर्वाधिक प्रकाशित, सबसे बड़ा **अन्धसः** प्राणवानों के अथवा अन्धकार से **मत्सत्** आनन्दित करता है। **दृढा** दृढ़ **चित्** भी **आरुजे** आरोग्यकारी **वसु** वसु (हो)।

भावार्थ :- मद धातु का अर्थ आनन्द होना है। आनन्दों में जो महानतम तथा सत्य आनन्द है, वही वास्तव में हमें आनन्द दे सकता है, शेष क्षणिक आनन्द उसका आभास मात्र हैं। अन्धसः में अन् (प्राण होना) धातु मानकर इसका अर्थ प्राणवान् किया गया है। अन्ध् धातु मानने पर इसका अर्थ अन्धकार से होगा। इससे अन्धकार से महानतम आनन्द देने का भाव ले सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- कः (सर्वनाम)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सत्यो** (सत् = सत्य होना, अस्तित्व होना)। **मदानाम्** (मद - तृप्त करना, समाधान करना)। **मंहिष्ठो** (महि - चमकना, प्रकाशित होना, बढ़ना, बोलना, कहना)। **मत्सत्** (मद - हर्षित होना)। **अन्धसः** (अन् = प्राणवान् होना, अन्ध् - अन्धकार होना, अन्धा होना)। **दृढा** (दृढ - दृढ़ होना, धारण करना, सहना, समर्थ होना)। **चित्** (अव्यय)। **आरुजे** (रुज - रोग होना, आ-रुज - आरोग्य होना)। **वसु** (वस = निश्चल होना, निःछल होना, निवास करना, पोशाक धारण करना) **॥ 5 ॥**

243. अभी षु णः सखीनाम्,
अविता जरितृणाम् शतम् भवासि ऊतिभिः ॥ 6 ॥

मन्त्रार्थ :- णः हमारे **जरितृणाम्** जरितृ (वृद्ध या परिपक्व) **सखीनाम्** मित्रों के **अभी** सभी ओर, भलीभाँति **अविता** रक्षक (परमात्मन्), **ऊतिभिः** रक्षाओं द्वारा **शतम्** सौ **भवासि** (आप) हो जायें।

भावार्थ :- जरितृ का भावार्थ अनेक विद्वानों ने स्तोता माना है। जृ धातु का अर्थ वृद्ध होना है। वृद्ध या परिपक्व होने के लिए आयु या जीवन काल ही आधार नहीं है, स्तुति-उपासना करना अनिवार्य है। स्तुति-उपासना भी मित्रों के साथ करने का सन्देश स्पष्ट है। अकेले यजन नहीं हो सकता है। सामूहिक जीवन ही श्रेयस्कर है। यदि हम समूह के साथ स्तुति-उपासना करते हैं तो परमात्मा भी सौ रूपों में अर्थात् अनेक उपायों से हमारी रक्षा करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अभी (उपसर्ग)। **षु** (उपसर्ग)। **णः (नः)** (सर्वनाम)। **सखीनाम्** (सख् = मित्र होना)। **अविता** (अव् = रक्षा करना)। **जरितृणाम्** (जृ - वृद्ध होना, जीर्ण होना)। **शतम्** (शत - सौ)। **भवासि** (भू = होना)। **ऊतिभिः** (अव् = रक्षा करना)॥ 6 ॥

244. कया त्वम् नः ऊत्या,
अभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ 7 ॥

मन्त्रार्थ :- त्वम् तुम **वृषन्** शक्तिशाली **कया** किस **ऊत्या** वाणी, रक्षण, विश्वास से **नः** हमारे लिए **मन्दसे** आनन्दित होते हो, **कया** किस **स्तोतृभ्यः** स्तुति से **आ भर** पूर्ण करते हो।

भावार्थ :- हम परमात्मा को विश्वास और वाणी से ही प्रसन्न कर सकते हैं। हमारे पास जो कुछ भी है, परमात्मा का ही दिया हुआ है, अतः किसी वस्तु से तो प्रसन्न करने की बात सोचना भी उचित नहीं है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- कया (सर्वनाम)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **ऊत्या** (ऊ - शब्द करना, ध्वनि करना)। **अभि** (उपसर्ग)। **प्र** (उपसर्ग)। **मन्दसे** (मन्द् - स्तुति करना, तुष्ट करना, आनन्द करना, उन्मत्त होना)। **वृषन्** (वृष - अमानवी पराक्रम विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना, पराक्रमी होना, प्रजोत्पत्ति करने को समर्थ होना)। **स्तोतृभ्यः** (स्तु- प्रशंसा करना, स्तुति करना)। **आ** उपसर्ग। **भर** (भृ = पूर्ण करना, भरना)॥7 ॥

सूक्त - 2

245. इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शम् नो अस्तु द्विपदे,
शम् चतुष्पदे ॥ 8 ॥

मन्त्रार्थ :- इन्द्रो इन्द्र **विश्वस्य** विश्व में **राजति** प्रकाशित होता है। **नो** हमारे **द्विपदे** द्विपद के लिए **शम्** कल्याणकारी हो, **चतुष्पदे** चतुष्पद के लिए **शम्** कल्याणकारी **अस्तु** हो।

भावार्थ :- इन्द्र का अर्थ है परम ऐश्वर्यवान्। परमात्मा को ही इन्द्र कहा गया है। वह द्विपद अर्थात् दो पैरों वाले मनुष्य तथा चतुष्पद अर्थात् चार पैरों वाले पशुओं के लिए कल्याणकारी हो। सभी मनुष्यों तथा पशुओं के लिए कल्याण की कामना की गयी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इन्द्रो (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। विश्वस्य (सर्वनाम)। राजति (राज् = चमकना, प्रकाशित शोभित होना)। **शम्** (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** (सर्वनाम)। **अस्तु =** हो। **द्विपदे** (द्वि - दो, पद - स्थानान्तर करना)। **शम्** (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **चतुष्पदे** (चतुः - चार, पद - स्थानान्तर करना)॥ 8॥

246. शम् नो मित्रः शम् वरुणः,
शम् नो भवतु अर्यमा।
शम् नो इन्द्रो बृहस्पतिः,
शम् नो विष्णुः उरुक्रमः॥ 9॥

मन्त्रार्थ :- नो हमारे लिए **मित्रः** मित्र **शम्** कल्याणकारी (हो), **वरुणः** वरुण **शम्** कल्याणकारी (हो), **अर्यमा** अर्यमा **शम्** कल्याणकारी **भवतु** हो जायें। **नो** हमारे लिए **इन्द्रो** इन्द्र, **बृहस्पतिः** बृहस्पति **शम्** कल्याणकारी (हो), **नो** हमारे लिए **उरुक्रमः** उरुक्रम **विष्णुः** विष्णु **शम्** कल्याणकारी (हो)।

भावार्थ :- हम परमात्मा को विश्वास तथा वाणी से प्रसन्न करें तो सभी देवशक्तियाँ हमारा कल्याण करें, यह स्वाभाविक है। यह सद्भावना तथा विश्वास हमें होना ही चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- शम् (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** (सर्वनाम)। **मित्रः** (मिद् - स्नेह करना)। **वरुणः** (वृ = वरण करना, पालन करना)। **भवतु** (भू = होना, प्राप्त होना, चिन्तन करना)। **अर्यमा** (ॠ = जाना, पाना, मिलाना)। **इन्द्रो** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **बृहस्पतिः** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **विष्णुः** (विष् = व्याप्त होना)। **उरुक्रमः** (उर् = जाना, चलना, उरु = गतिशील, कृ - करना, क्रम - चलना, रक्षा

करना, बढ़ना)॥9॥

247. शम् नो वातः पवताम्,
शम् नः तपतु सूर्यः।
शम् नः कनिक्रदत् देवः,
पर्जन्यो अभि वर्षतु॥ 10॥

मन्त्रार्थ :- शम् कल्याणकारी **वातः** वात **नो** हमें **पवताम्** पवित्र करे। **शम्** कल्याणकारी **सूर्यः** सूर्य **नः** हमारे लिए **तपतु** तपे। **शम्** कल्याणकारी **देवः** देव **नः** हमारे लिए **कनिक्रदत्** व्याप्त हों, प्रकाश करें, गतिमान् हों। **पर्जन्यो** पर्जन्य, पोषण उत्पन्न करने वाले, (बादल, मेघ) **वर्षतु** वर्षा करे।

भावार्थ :- परमात्मा की उपासना से प्रकृति हम सबके लिए कल्याणकारी हो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- शम् = कल्याणकारी (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो =** हमको, हमारे लिए, हमारा (सर्वनाम)। **वातः =** वात (वात् = सुखी होना, सेवा करना, जाना)। **पवताम्** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **तपतु** (तप - तप्त होना, तप्त करना, मन से या शरीर में जलन होना)। **सूर्यः** (सुर् = ऐश्वर्य , प्रकाश होना)। **कनिक्रदत्** (कन - प्रकाशित होना, जाना, व्याप्त होना, कृ - करना)। **देवः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **पर्जन्यो** (परि - सब ओर, अज - जाना, फेंकना)। **अभि** (उपसर्ग)। **वर्षतु** (वर्ष् = बरसना, हिंसा करना, क्लेश देना, उत्पीड़न करना)॥10॥

248. अहानि शम् भवन्तु नः,
शम् रात्रीः प्रतिधीयताम्।
शम् न इन्द्राग्नी भवताम् अवोभिः,
शम् न इन्द्रा वरुणा रातहव्या॥

शम् न इन्द्रापूषणा वाजसातौ,
शम् इन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥ 11 ॥

मन्त्रार्थ :- नः हमारे लिए **अहानि** दिन **शम्** कल्याणकारी **भवन्तु** हों, **रात्रीः** रात्रि **शम्** कल्याण **प्रतिधीयताम्** धारण करायें। **इन्द्राग्नी** इन्द्र तथा अग्नि **नः** हमारे लिए **अवोभिः** रक्षण द्वारा **शम्** कल्याणकारी **भवताम्** हों, **इन्द्रावरुणा** इन्द्र तथा वरुण **रातहव्या** रातहवि द्वारा **नः** हमारा **शम्** कल्याण (करे)। **इन्द्रापूषणा** इन्द्र तथा पूषा **वाजसातौ** वाजसात **नः** हमारे लिए **शम्** कल्याणकारी (हों), **इन्द्रासोमा** इन्द्र तथा सोम **सुविताय** सुवित के लिए **योः** मिलाने वाला **शम्** कल्याणकारी (हों)।

भावार्थ :- परमात्मा की उपासना से हमारे लिए प्रतिपल कल्याणकारी बन जाता है। रात्रि शब्द रा धातु से निष्पन्न होता है। रा धातु का अर्थ है - देना, मिल जाना। लोक व्यवहार में रात्रि अर्थात् विश्राम देने वाला, निद्रा देने या मिलने वाला समय।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अहानि (अह - फैलना, विस्तृत होना, व्यापना)। **शम्** (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **भवन्तु** (भू = होना)। **नः** (सर्वनाम)। **रात्रीः** (रा - देना, मिल जाना)। **प्रति** (उपसर्ग)। **धीयताम्** (धी - धारण करना, आधारभूत होना, उपेक्षा करना)। **इन्द्राग्नी** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, अग् - जाना, जानना, पाना, अग्रणी होना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति करना)। **भवताम्** (भू = होना)। **अवोभिः** (अव् = रक्षा करना)। **इन्द्रावरुणा** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना, वृ - वरण करना)। **रातहव्या** (रा - देना, मिल जाना, हु = देना, आदान-प्रदान करना)। **इन्द्रापूषणा** (इन्द = परम ऐश्वर्य होना, पूष- पोषण करना)। **वाजसातौ** (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना)। **इन्द्रासोमा** (इन्द = परम ऐश्वर्य होना, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना)। **सुविताय** (सु - अच्छा, सुन्दर, सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, पराक्रम होना, वि - विशेष, ताय - संरक्षण करना, फैलाना)। **योः** (यु - मिलना, मिलाना, अलग करना) ॥11 ॥

249. शम् नो देवीः अभिष्टये,
आपो भवन्तु पीतये।
शम् योः अभि स्त्रवन्तु नः ॥ 12 ॥

मन्त्रार्थ :- देवीः देवी **आपो** आप **नो** हमारे **अभिष्टये** अभीष्ट के लिए **पीतये** पीने के लिए **शम्** कल्याणकारी **भवन्तु** हों। **नः** हमारे लिए **शम्** कल्याण **योः** मिलाने वाला **अभि स्त्रवन्तु** अभिसिञ्चन करें।

भावार्थ :- इसमें भी हमारे लिए प्रकृति के कल्याणकारी होने की भावना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- शम् (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **नो** (सर्वनाम)। **देवीः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **अभिष्टये** (अभि = अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा (उपसर्ग), इष - इच्छा करना, चाहना, जाना)। **आपो** (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना)। **भवन्तु** (भू - होना)। **पीतये** (पी - पीना, प्राशन करना)। **योः** (यु - मिलना, मिलाना, अलग करना)। **अभि** (उपसर्ग)। **स्त्रवन्तु** (सृ - जाना, सरकना, बहना, टपकना) ॥12 ॥

सूक्त - 3

250. स्योना पृथिवि नो भव, अनृक्षरा निवेशनी।
यच्छ आ नः शर्म सप्रथाः ॥ 13 ॥

मन्त्रार्थ :- पृथिवि पृथिवी **नो** हमारे लिए **स्योना** स्योन, सुखद, **अनृक्षरा** अनृक्षरा, अहिंसक, **निवेशनी** निवेशनी (निवास प्रदान करने वाली) हो। **न** हमारे लिए **सप्रथाः** पूर्ण ज्ञान युक्त, विस्तृत **शर्म** सुख **आ** समन्तात्, पूर्णतः **यच्छ** प्रदान करे ॥13 ॥

भावार्थ :- यह पृथिवी हमारे लिए सुखद, दुःख रहित, निवासयोग्य रहे। वास्तविक सुख पूर्ण ज्ञान होने पर ही हो सकता है। अज्ञानी रहने पर सुख

स्थायी नहीं हो सकता है। पृथिवी को सुखकारी बनाये रखने के लिए हम भी प्रकृति संरक्षण का ध्यान रखें। प्रकृति को हानि पहुँचाने के पाप से दूर रहें, प्रकृति को नष्ट न करें।

विशेष :- सप् धातु का अर्थ पूर्ण ज्ञान होना है तथा प्रथ धातु का अर्थ विस्तृत होना है। श्लेष अलंकार से दोनो ही अर्थ लेना उचित है।13।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- स्योना (स्योन् = सुख होना, सुख देना)। **पृथिवि** (पृथ = विस्तार होना, फैलाना, फेंकना)। **नो** (सर्वनाम)। **भव** (भू = होना)। **अनृक्षरा** (ऋक्ष - मार डालना या दुःख देने का यत्न करना)। **निवेशनी** (नि - निश्चित, निरन्तर, विश - प्रवेश करना, घुसना, भीतर जाना, धंसना)। **यच्छ** (यच्छ = देना)। **आ** उपसर्ग। **शर्म** (शर्म् = सुख होना, श्रीमान् होना, सम्मानित होना)। **सप्रथाः** (सप् - पूर्ण ज्ञान होना, प्रथ = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)।।13।।

251. आपो हि ष्ठा मयोभुवः,
ता नः ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे।। 14।।

मन्त्रार्थ :- आपो आपः **मयोभुवः** मयोभुव **ष्ठा** स्थित है, **ता** वह **महे** महत् **रणाय** रण (शब्द) के लिए **चक्षसे** देखने के लिए **नः** हमारे लिए **ऊर्जे** ऊर्जा **दधातन** धारण करे।

भावार्थ :- अप धातु का अर्थ पालन करना होने से आप शब्द का अर्थ पालन करने वाली माता तथा व्यापक आध्यात्मिक अर्थ में परमात्मा भी है। आप धातु का अर्थ व्याप्त होना होने से भी आपः का अर्थ परमात्मा ग्रहण किया जाता है। मय धातु का सामान्य अर्थ गति है। गति अर्थ वाली धातु का तीन प्रकार लक्ष्यार्थ सर्वत्र ग्राह्य है ज्ञान, गमन, प्राप्ति। मयोभुवः का अर्थ गतिशीलता के साथ ही ज्ञान पाना भी है। रण धातु का अर्थ शब्द करना है। शब्द को देखने के संदेश को वेदवाणी का दृष्टा होने की भावना के रूप में समझना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- आपो (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना)। **हि** (अव्यय)। **ष्ठा** (स्था - स्थित होना, ठहरना)।

मयोभुवः (मय - जाना, स्थानान्तर करना)। **ता** (सर्वनाम)। **नो** (सर्वनाम)। **ऊर्जे** (ऊर्ज् = बल होना, प्राण होना, प्राणवान् करना)। **दधातन** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **महे** (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **रणाय** (रण - शब्द करना, जाना)। **चक्षसे** (चक्ष् - साफ बोलना, कहना, देखना)।।14।।

252. यो वः शिवतमो रसः,
तस्य भाजयत इह नः।
उशतीः इव मातरः।। 15।।

मन्त्रार्थ :- यो जो **वः** तुम्हारा **शिवतमो** अत्यन्त कल्याणकारी **रसः** रस (है), **तस्य** उसका **इह** यहाँ **नः** हमको **उशतीः** उशती **मातरः** माता के **इव** समान **भाजयत** सेवन करायें।

भावार्थ :- परमात्मा तथा प्रकृति की उपासना से हमारे लिए कल्याणकारी पोषण प्राप्त होता है।

विशेष :- उशती पद माता का विशेषण है। उश-वश धातु का अर्थ चाहना है। माता पुत्र को चाहती है, स्नेह करती है, पोषण करती है। उशती का यही भावार्थ लेना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यो (सर्वनाम)। **वः** (सर्वनाम)। **शिवतमो** (शिव् = कल्याण करना)। **रसः** (रस - स्वाद लेना, चखना, प्रीति करना, प्यार करना)। **तस्य** (सर्वनाम)। **भाजयत** (भज - सेवा करना)। **इह** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **उशतीः** (उश - इच्छा करना, चाहना)। **इव** (अव्यय)। **मातरः** (मा = मान करना, मापना)।।15।।

253. तस्मा अरम् गमाम वो,
यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः।। 16।।

मन्त्रार्थ :- तस्मा इससे **वो** तुम्हारे लिए **अरम्** पर्याप्त **गमाम** जायें, **यस्य** जिसके **क्षयाय** निवास के लिए **जिन्वथ** प्रीति करो। **च** और **आपो** आपः **नः**

हमारे लिए **जनयथा** उत्पन्न करे।

भावार्थ :- आपः अर्थात् परमात्मा, माता, जल के रूप में तीनों अर्थों में सन्देश स्पष्ट है कि आधा-अधूरा नहीं पर्याप्त प्रयास होना चाहिए। परमात्मा की उपासना हो, परिवार हो अथवा प्रकृति हो, पूरे मन से पर्याप्त ध्यान-उपासना-सेवा करना आवश्यक है, तभी प्रयास फलदायी होते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- तस्मा (सर्वनाम)। **अरम्** (अव्यय)। **गमाम** (गम् = जाना)। **वो** (सर्वनाम)। **यस्य** (सर्वनाम)। **क्षयाय** (क्षि = निवास करना, जाना, जानना)। **जिन्वथ** (जिन्व् = सन्तुष्ट करना, प्रसन्न करना, आनन्द होना, मुक्त करना, प्रकाशित होना, बोलना)। **आपो** (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना)। **जनयथा** (जन् = उत्पन्न करना)। **च** (अव्यय)। **नः** (सर्वनाम)॥16॥

254. द्यौः शान्तिः, अन्तरिक्षम् शान्तिः,
पृथिवी शान्तिः, आपः शान्तिः।
ओषधयः शान्तिः, वनस्पतयः शान्तिः,
विश्वे देवाः शान्तिः, ब्रह्म शान्तिः।
सर्वम् शान्तिः, शान्तिः एव शान्तिः,
सा मा शान्तिः एधिः॥ 17॥

मन्त्रार्थ :- द्यौः द्यौ **शान्तिः** शान्ति (दे), **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष **शान्तिः** शान्ति (दे), **पृथिवी** पृथिवी **शान्तिः** शान्ति (दे)। **आपः** आपः **शान्तिः** शान्ति (दे)। **ओषधयः** ओषधयाँ **शान्तिः** शान्ति (दें), **वनस्पतयः** वनस्पतियाँ **शान्तिः** शान्ति (दें), **विश्वे देवाः** विश्वदेव (सभी देव गण) **शान्तिः** शान्ति (दें), **ब्रह्म** ब्रह्म **शान्तिः** शान्ति (दे), **सर्वम्** सब **शान्तिः** शान्ति (दें), **शान्तिः** शान्ति **एव** ही **शान्तिः** शान्ति (दें), **सा** वह **मा** मुझको **शान्तिः** शान्ति **एधिः** दे।

भावार्थ :- ब्रह्म के साथ ही सम्पूर्ण प्रकृति हमारे लिए शान्तिप्रद हो, यही भावना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- द्यौः (द्युः = आगे जाना, प्रकाश होना,

जानना)। **शान्तिः** (शम् = कल्याण होना, शान्त होना, स्वस्थ होना प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना, विचार करना, सहन करना)। **अन्तरिक्षम्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **पृथिवी** (पृथ् = विस्तार होना, फेंकना, प्रेरणा करना)। **आपः** (आप् - प्राप्त होना, अवलम्ब होना, व्याप्त होना, जाना, जानना)। **ओषधयः** (उषध् = जानना, रोगमुक्त करना, चिकित्सा करना)। **वनस्पतयः** (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना, पत् - ऐश्वर्य होना)। **विश्वेदेवाः** (विश्व - सभी, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **ब्रह्म** (बृह् = बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। **सर्वम्** (सर्वनाम)। **एव** (अव्यय)। **सा** (सर्वनाम)। **मा (माम्)** (सर्वनाम)। **एधिः** (एध - बढ़ना)॥17॥

सूक्त - 4

255. दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुसा,
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्य अहम् चक्षुषा,
सर्वाणि भूतानि समीक्षे,
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ 18॥

मन्त्रार्थ :- दृते आदरणीय, **मा** मुझे **दृंह** दृढ़ करो, **सर्वाणि** सभी **भूतानि** भूतों (प्राणियों) को **मित्रस्य** मित्र की **चक्षुषा** दृष्टि से **समीक्षन्ताम्** देखें। **अहम्** मैं **मित्रस्य** मित्र की **चक्षुषा** दृष्टि से **सर्वाणि** सभी **भूतानि** भूतों (प्राणियों) को **समीक्षे** देखता हूँ।

भावार्थ :- परमात्मा ही हमारे लिए परम आदरणीय है। वह हमें मित्र की दृष्टि से देखे तो हमारा कल्याण हो जाये। यह हम सभी चाहते हैं। वेद का निर्देश है कि हम भी सभी को मित्र की दृष्टि से देखें अर्थात् सभी के प्रति स्नेह-सहयोग की भावना रखें तो हमें भी परमात्मा की मित्र-दृष्टि का लाभ मिलता रहेगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- दृते (दृ - आदर करना)। **दृंह** (दृंह् = बढ़ना,

दृढ़ होना, दृढ़ करना)। **मा (मा - माम्)** (अव्यय)। **मित्रस्य** (मिद - स्नेह करना, प्रीति करना)। **चक्षुषा** (चक्ष् = देखना, साफ करना)। **सर्वाणि** (सर्वनाम)। **भूतानि** (भू = होना)। **समीक्षन्ताम्** (सम् - सम्यक्, ईक्ष- देखना)। **अहम्** (सर्वनाम)। **समीक्षे** (सम् - सम्यक्, ईक्ष- देखना)। **समीक्षामहे** (सम् - सम्यक्, ईक्ष- देखना)।।18।।

256. दृते दृंह मा।
ज्योक् ते सन्दृशि जीव्यासम्,
ज्योक् ते सन्दृशि जीव्यासम्।। 19।।

मन्त्रार्थ :- दृते आदरणीय, **मा** मुझे **दृंह** दृढ़ करो। **ते** तुम्हारी **सन्दृशि** सम्यक् दृष्टि में **ज्योक्** ज्योक् (सुदीर्घ, चिरकालीन) **जीव्यासम्** जीवन पायें।

भावार्थ :- परमात्मा की सम्यक् दृष्टि में रहकर अर्थात् उसके अनुशासन का पालन करते हुए हम दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- दृते (दृ - आदर करना)। **दृंह** (दृंह् = बढ़ना, दृढ़ होना, दृढ़ करना)। **मा (मा - माम्)** (सर्वनाम)। **ज्योक्** (ज्या - जीर्ण होना, वृद्ध होना, पुराना होना)। **ते** (सर्वनाम)। **सन्दृशि** (सम् - सम्यक्, दृश् - देखना)। **जीव्यासम्** (जीव् = प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)।।19।।

257. नमः ते हरसे शोचिषे,
नमः ते अस्तु अर्चिषे।
अन्यान् ते अस्मत् तपन्तु हेतयः,
पावको अस्मभ्यम् शिवो भव।। 20।।

मन्त्रार्थ :- ते तुम, **शोचिषे** शोचिष् अर्थात् पावन, ज्योतिर्मय **हरसे** हर के लिए **नमः** नमन, **ते** तुम **अर्चिषे** अर्चनीय के लिए **नमः** नमन **अस्तु** हो। **ते** तुम्हारी **हेतयः** हेतियाँ **अस्मत्** मुझसे **अन्यान्** अन्य को **तपन्तु** तपायें, **पावको** पावक **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **शिवो** कल्याणकारी **भव** हो।

भावार्थ :- हम परमात्मा को नमन करें, उपासना करें तो उसकी शक्तियाँ हमारे लिए कल्याणकारी बनी रहेंगी। उपासकों से भिन्न जो अन्य लोग

हैं, विपरीत स्वभाव वाले दुष्ट जन हैं, उनको ईश्वर की शक्तियाँ अवश्य तपाती हैं, सज्जनों, उपासकों को तो उसकी कृपा ही प्राप्त होती है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- नमः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **ते** (सर्वनाम)। **हरसे** (ह्र = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **शोचिषे** (शुच् = पवित्र होना, पवित्र करना)। **अस्तु** (अस् - होना)। **अर्चिषे** (अर्च - पूजा करना, मान करना, सेवा करना)। **अन्यान्** (सर्वनाम)। **अस्मत्** (अपादान, बहुवचन)। **तपन्तु** (तप - तप्त होना, तप्त करना, मन से या शरीर में जलना)। **हेतयः** (हि - जाना, प्रेरणा करना जानना, पाना)। **पावको** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)। **अस्मभ्यम्** (सर्वनाम)। **शिवो** (शिव् = कल्याण करना)। **भव** (भू = होना)।।20।।

258. नमः ते अस्तु विद्युते, नमः ते स्तनयित्नवे,
नमः ते भगवन् अस्तु, यतः स्वः समीहषे।। 21।।

मन्त्रार्थ :- विद्युते हे विद्युत, **ते** तुम्हारे लिए **नमः** नमन **अस्तु** हो, **स्तनयित्नवे** हे गर्जन, **ते** तुम्हारे लिए **नमः** नमन हो, **भगवन्** हे भगवन्, **ते** तुम्हारे लिए **नमः** नमन **अस्तु** हो, **यतः** जिससे **समीहषे** सम्यक् प्रयास से **स्वः** सुख प्राप्त हो।

भावार्थ :- प्रकृति परमात्मा का ही स्वरूप है। प्रकृति में परमात्मा की अनुभूति करें, इसी भावना से प्रकृति को नमन, सम्मान, संरक्षण प्रदान करें। सम्यक् प्रयास करें तो हमें भी सुख प्राप्त होगा।

विशेष :- विद्युत (विद्-युत्) शब्द में विद् धातु स्पष्ट है। विद् (वेत्ति, वेद) का अर्थ जानना, समझना है। विद् (विद्यते) का अर्थ होना, विद्यमान होना, रहना है। विद् (विन्ते) का अर्थ विचार करना है। विद् (वेदयते) का अर्थ चेतन होना, जानना, समझना, समझाना, वास करना, स्थिर रहना होता है। इस प्रकार विद्युत, विद्वान्, विद्या जैसे शब्दों में ये सभी अर्थ मान्य हैं। प्रसंग के अनुसार इनमें कोई एक या अनेक अर्थ स्वीकार किये जा सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- नमः (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **ते** (सर्वनाम)। **अस्तु** (अस् - होना)। **विद्युते** (विद -

विद्यमान होना, रहना)। **स्तनयित्नवे** (स्तन - मेघ की गर्जना होना)। **भगवन्** (भग्-भज् = सेवा करना, देना, दान करना, भजना, भजन करना)। **यतः** (सर्वनाम)। **स्वः** (स्वर् = शब्द करना, सु = उत्पन्न करना)। **समीहषे** (सम् - सम्यक् समन्तात् (उपसर्ग), ईह - प्रयत्न करना)॥ 21 ॥

259. यतो यतो समीहसे, ततो नो अभयम् कुरु।

शम् नः कुरु प्रजाभ्यो, अभयम् नः पशुभ्यः॥ 22 ॥

मन्त्रार्थ :- हम **यतो -यतो** जैसे-जैसे **समीहसे** प्रयास करें, **ततो** उससे **नो** हमें **अभयम्** अभय **कुरु** करो। **नः** हमारे **प्रजाभ्यो** प्रजा के लिए **शम्** कल्याण **कुरु** करो, **नः** हमारे **पशुभ्यः** पशुओं के लिए **अभयम्** अभय करो।

भावार्थ :- अभय तथा कल्याण हमें परमात्मा की कृपा से प्राप्त होता है। परन्तु इसके लिए प्रयास करना महत्वपूर्ण है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यतो-यतो (सर्वनाम)। **ततो** (सर्वनाम)। **समीहषे** (सम् - सम्यक्, ईह- प्रयत्न करना)। **नो** (सर्वनाम)॥ **अभयम्** (अ - नहीं, भी = डरना, घबराना)। **कुरु** (कृ- करना)। **शम्** (शम = प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना)। **प्रजाभ्यो** (प्र - प्रकृष्ट, जन् = उत्पन्न होना)। **पशुभ्यः** (पश्-दृश् = देखना, पश - बांधना, जाना)॥22 ॥

260. सुमित्रिया नो आप ओषधयः सन्तु,

दुर्मित्रियाः तस्मै सन्तु,

यो अस्मान् द्वेष्टि,

यम् च वयम् द्विष्मः॥ 23 ॥

मन्त्रार्थ :- आप आपः तथा **ओषधयः** ओषधियाँ **नो** हमारे लिए **सुमित्रिया** अच्छे मित्र **सन्तु** हों। **तस्मै** उनके लिए **दुर्मित्रियाः** दुर्मित्र **सन्तु** हों, **यो** जो **अस्मान्** हमसे **द्वेष्टि** द्वेष करते हैं, **च** और **यम्** जिनसे **वयम्** हम **द्विष्मः** द्वेष करते हैं।

भावार्थ :- कामना की गयी है कि प्रकृति हमारे लिए अच्छे मित्र बनकर रहे। ऐसी भावना रखने वाले हम लोगों से जो द्वेष करते हैं, और स्वाभाविक है

कि ऐसे लोगों से प्रकृति संरक्षक होने के कारण हमको भी द्वेष होगा ही, ऐसे लोगों के लिए प्रकृति दुर्मित्र बनी रहेगी अर्थात् प्रकृति किसी की शत्रु तो नहीं होती है, परन्तु ऐसे लोगों के लिए प्रकृति का अच्छा मित्र बनकर रहना भी सम्भव नहीं हो पाता है। अतः प्रकृति का संरक्षण करना महत्वपूर्ण है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सुमित्रिया (सु - अच्छा, सुन्दर, मिद् - प्रीति करना, मृदुल होना)। **नो** (सर्वनाम)। **आपः** (आप् - व्याप्त होना, जाना, पाना, अवलम्ब होना)। **ओषधयः** (उषध्- ओषध् - जानना, रोग मुक्त करना, चिकित्सा करना)। **सन्तु** (अस् - होना)। **दुर्मित्रियाः** (दु - दुःख भोगना, जलना, तप्त करना, जलाना, मिद् - प्रीति करना, मृदुल होना)। **तस्मै** (सर्वनाम)। **यो** (सर्वनाम)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **द्वेष्टि** (द्विष् = द्वेष करना)। **यम्** (सर्वनाम)। **च** (अव्यय)। **वयम्** (सर्वनाम)। **द्विष्मः** (द्विष् = द्वेष करना)॥23 ॥

261. तत् चक्षुः देवहितम्,

पुरस्तात् शुक्रम् उत् चरत्।

पश्येम शरदः शतम्,

जीवेम शरदः शतम्।

शृणुयाम शरदः शतम्,

प्र ब्रवाम शरदः शतम्।

अदीनाः स्याम शरदः शतम्,

भूयः च शरदः शतात्॥ 24 ॥

मन्त्रार्थ :- तत् वह **देवहितम्** देवहितकारी **चक्षुः** चक्षु **पुरस्तात्** पहले **शुक्रम्** शुक्र **उत् चरत्** उच्चारण (बोलना अथवा उत् - ऊपर की ओर तथा चर चलना, अर्थात् उच्चगति) करता है। **शतम्** सौ **शरदः** शरद तक **पश्येम** देखें, **शतम्** सौ **शरदः** शरद तक **जीवेम** जीवित रहें, **शतम्** सौ **शरदः** शरद तक **शृणुयाम** सुनें, **शतम्** सौ **शरदः** शरद तक **प्र ब्रवाम** बोलें, **शतम्** सौ **शरदः** शरद तक **अदीनाः** अदीन, दीनता-मुक्त **स्याम** हों, **च** और **शतात्** सौ **शरदः** शरद से **भूयः** अधिक (ऐसे ही रहे)।

भावार्थ :- सौ वर्षों तक तथा उससे भी अधिक सक्रिय तथा गुणवान् आयु प्राप्त हों, यही कामना है।

विशेष :- शरद का अर्थ एक वर्ष है। एक बार सभी ऋतुओं का चक्र पूर्ण हो जाने की अवधि सम्वत्सर है। इस अवधि में पृथ्वी सूर्य की एक परिक्रमा पूर्ण करती है। लोक व्यवहार में इस अवधि को ऋतु से व्यक्त किया जाता है जैसे वर्ष (वर्षा ऋतु), शरद (शरद ऋतु), वसन्त आदि। साहित्य में आयु इतने वसन्त देखी जैसे उल्लेख सामान्यतः मिलते ही हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) - मूल (निरुक्त) :- तत् (सर्वनाम)। **चक्षुः** (चक्ष- साफ बोलना, कहना, देखना)। **देवहितम्** (देव्, दिव् = चमकना, तेजस्वी होना, जानना, हि = गति करना, चलना, जाना, जाना, जानना, पाना, प्रेरणा करना)। **पुरस्तात्** (अव्यय)। **शुक्रम्** (शुच्, शुक् = पावन होना, शुद्ध होना, शुद्ध करना)। **उत् चरत्** (उत् - ऊपर, उच्- कहना, समझाना, चर - जाना, खाना, आचरण करना)। **पश्येम** (पश् = देखना)। **शरदः** (शृ - सुनना, जाना, मारना)। **शतम्** (शत - सौ)। **जीवेम** (जीव् = प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **शृणुयाम** (श्रु-शृण् = सुनना)। **प्र** (उपसर्ग)। **ब्रवाम** (ब्रू - कहना, बोलना)। **अदीनाः** (अ - नहीं, दी - क्षय होना)। **स्याम** = हों। **भूयः** = पुनः (अव्यय)। **च** = और (अव्यय)।। **शतात्** (शत - सौ)।।24।।

इति सप्तमः अध्यायः

ॐ

अष्टमः अध्यायः

जीवनोपनिषद्

सूक्त - 1

262. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे,
अश्विनोः बाहुभ्याम्।
पूष्णो हस्ताभ्याम्,
आ ददे नारिः असि।। 1।।

मन्त्रार्थ :- त्वा तुम **देवस्य** देव **सवितुः** सविता से **प्रसवे** उत्पन्न **अश्विनोः** अश्वी के **बाहुभ्याम्** बाहुओं से, **पूष्णो** पूषा के **हस्ताभ्याम्** हाथों से **आ ददे** प्रदत्त **नारिः** नारि **असि** हो।

भावार्थ :- हम परम पिता परमात्मा की शक्तियों से उत्पन्न तथा उसकी दिव्य शक्तियों से सम्पन्न हैं। अतः हमको अपनी इस दिव्यता का ध्यान रखते हुए श्रेष्ठ देवतुल्य जीवन जीना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- देवस्य (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **प्रसवे** (सु - उत्पन्न करना)। **अश्विनो** (अश - व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बाह - प्रयास करना)। **पूष्णो** (पुष् - पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - देना, लेना, ग्रहण करना)। **आ** (उपसर्ग)। **ददे** (दद - दान करना, देना, त्याग करना)। **नारिः** (नृ - ले जाना)। **असि** (अस् - होना)।।1।।

263. युञ्जते मनः उत युञ्जते धियो,
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।

वि होत्रा दधे वयुनावित् एक इत्,
मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥ 2॥

मन्त्रार्थ :- बृहतो बृहत् **विपश्चितः** विपश्चित **विप्रा** विप्र **मनः** मन को **युञ्जते** नियोजित करते हैं, **धियो** बुद्धि को **युञ्जते** नियोजित करते हैं। **वि होत्रा** विहोत्र **वयुनावित्** वयुनावित् **देवस्य** देव **सवितुः** सविता की **मही** महान् **परिष्टुतिः** परिस्तुति **दधे** धारण करते हैं।

भावार्थ :- मन और बुद्धि को परमात्मा में लगायें तथा परिस्तुति अर्थात् परिपूर्ण रूप से स्तुति करें। मन और बुद्धि को पूरी तरह परमात्मा में लगाकर स्तुति करना ही परिस्तुति है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- युञ्जते (युज् - मिलाना, चित्त स्थिर करना, वश में रखना, यु - बांधना, बन्धन करना, गूंथना)। **मनः** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना)। **उत** (अव्यय)। **धियो** (धी = बुद्धि, प्रज्ञा होना, धि = धारण करना)। **विप्रा** (वि - विशेष, प्रा - पूर्ण करना)। **विप्रस्य** (वि - विशेष, प्रा - पूर्ण करना)। **बृहतो** (बृह- बढ़ना, वृद्धि होना)। **विपश्चितः** (वि - विशेष, पश् = देखना)। **वि होत्रा** (वि - विशेष, हु = दान करना, आदान करना, लेना)। **दधे** (दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **वयुनावित्** (वय - जाना, जानना, पाना)। **एक** (संख्या)। **इत्** (अव्यय)। **मही** (मह् - पूजा करना, सम्मान करना)। **देवस्य** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **सवितुः** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **परिष्टुतिः** (परि - परितः, सब ओर, स्तु- प्रशंसा करना, पूजा करना, स्तुति करना)॥ 2॥

264. देवी द्यावापृथिवी,
मखस्य वाम् अद्य शिरो राध्यासम् देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥ 3॥

मन्त्रार्थ :- देवी देवी **द्यावापृथिवी** द्यावापृथिवी **वाम्** तुमको **अद्य** आज **पृथिव्याः** पृथिवी के **देवयजने** देव-यजन में **मखस्य** मख का **शिरो** शिर,

राध्यासम् सिद्ध करता हूँ, निर्णीत करता हूँ। **त्वा** तुमको **मखाय** मख के लिए **मखस्य** मख के **शीर्ष्णे** शीर्ष पर (**राध्यासम्** सिद्ध करता हूँ, निर्णीत करता हूँ)।3॥

भावार्थ :- देव-यजन जैसे सत्कर्म में देवशक्तियों का सहयोग प्राप्त होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- देवी (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **द्यावापृथिवी** (द्यु = आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **मखस्य** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **वाम्** (सर्वनाम)। **अद्य** (अव्यय)। **शिरो** (शिर् - मुख्य होना, उच्च होना, शि - तेज करना, तीक्ष्ण करना)। **राध्यासम्** (राध- सिद्ध होना, बढ़ना)। **देवयजने** (देव, दिव् - खेलना, तेजस्वी होना, चमकना, यज् - देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। **पृथिव्याः** (पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **मखाय** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **शीर्ष्णे** (शीर्ष - शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना)।3॥

265. देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा,
मखस्य वो अद्य शिरो राध्यासम्, देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥ 4॥

मन्त्रार्थ :- भूतस्य भूत (उत्पन्न सृष्टि या प्राणी) से **प्रथमजा** पहले उत्पन्न **देव्यो** दिव्य **वम्र्यो** वम्र्य, **त्वा** तुमको **अद्य** अद्य **पृथिव्याः** पृथिवी के **देवयजने** देवयजन में **मखस्य** मख के **शिरो** शिर (रूप में) **राध्यासम्** सिद्ध करता हूँ, निर्णीत करता हूँ, अभिवर्द्धित करता हूँ। **मखाय** मख के लिए **मखस्य** मख के **शीर्ष्णे** शीर्ष पर (**राध्यासम्** सिद्ध करता हूँ, निर्णीत करता हूँ)।4॥

भावार्थ :- जीव-जगत् तथा सृष्टि से पूर्व वर्तमान होने से दिव्य वम्र्य का भावार्थ परमात्मा ही हो सकता है। हम परमात्मा को ही देवयजन जैसे उत्तम कर्मों में शीर्ष स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं। वम धातु का अर्थ वमन होना है। सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा से ही उत्पन्न होने के कारण वमन या वम्र्य है। वामन शब्द लघुता वाची है। वामन का अर्थ होगा वमन से उत्पन्न। स्वाभाविक रूप

से वह जिसका वमन है, उसकी तुलना में वामन अर्थात् अति लघु ही होगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- देव्यो (दिव्, देव् - चमकना, जानना)। **वम्र्यो** (वम - वमन होना)। **भूतस्य** (भू = होना)। **प्रथमजा** (प्रथम - पहले, जन- उत्पन्न होना, प्रकट होना)। **मखस्य** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **वो** (सर्वनाम)। **अद्य** (अव्यय)। **शिरो** (शिर् = मुख्य होना, उच्च होना, शि - तेज करना, तीक्ष्ण करना)। **राध्यासम्** (राध- सिद्ध होना, बढ़ना)। **देवयजने** (देव, दिव् = खेलना, तेजस्वी होना, चमकना, यज् = देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। **पृथिव्याः** (पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **मखाय** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **शीर्ष्णे** (शीर्ष = शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना)।4।।

266. इयति अग्रे आसीत्,
मखस्य ते अद्य शिरो राध्यासम् देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।। 5।।

मन्त्रार्थ :- अग्रे पहले **इयति** इयति **आसीत्** था, **त्वा** तुमको **अद्य** अद्य **पृथिव्याः** पृथिवी के **देवयजने** देवयजन में **मखस्य** मख के **शिरो** शिर (रूप में) **राध्यासम्** अभिवर्द्धित करता हूँ। **मखाय** मख के लिए **मखस्य** मख के **शीर्ष्णे** शीर्ष पर **(राध्यासम्** सिद्ध करता हूँ, निर्णीत करता हूँ)।5।।

भावार्थ :- इयति आसीत् अग्रे का सीधा अर्थ पहले इयति था, इतना ही है। इयति का धातुज अर्थ (इ धातु अथवा या धातु) गति, ज्ञान तथा प्राप्ति हो सकता है। इस प्रकार इयति भी परमात्मा का ही भावार्थ व्यक्त करता है। **इयति** का एक और प्रचलित अर्थ (अव्यय मानकर) इतना ही अथवा सीमित माना जाता है। इस अर्थ में भावार्थ होगा कि परमात्मा पहले भी इतना ही था। परमात्मा सदा एकरस है, उसमें कभी न्यूनता या अधिकता नहीं हो सकती है। इसी अर्थ में यह भी भावार्थ हो सकता है कि उपासक अपनी सीमाओं का उल्लेख करता है और परमात्मा को शीर्ष स्थान पर प्रतिष्ठित करता है जिससे उसे लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इयति (इ - जाना, जानना पाना)। **अग्रे**

(अग्-अगि - गति करना, आगे जाना)। **आसीत्** (अस् - होना)। **मखस्य** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **ते** (सर्वनाम)। **अद्य** (अव्यय)। **शिरो** (शिर् - मुख्य होना, उच्च होना, शि - तेज करना, तीक्ष्ण करना)। **राध्यासम्** (राध- सिद्ध होना, बढ़ना)। **देवयजने** (देव, दिव् - खेलना, तेजस्वी होना, चमकना, यज् - देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। **पृथिव्याः** (पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **मखाय** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **शीर्ष्णे** (शीर्ष - शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना)।5।।

267. इन्द्रस्य ओजः स्थ,
मखस्य वो अद्य शिरो राध्यासम्, देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।। 6।।

मन्त्रार्थ :- इन्द्रस्य इन्द्र के **ओजः** ओज **स्थ** हो, **त्वा** तुमको **अद्य** अद्य **पृथिव्याः** पृथिवी के **देवयजने** देवयजन में **मखस्य** मख के **शिरो** शिर (रूप में) **राध्यासम्** अभिवर्द्धित करता हूँ। **मखाय** मख के लिए **मखस्य** मख के **शीर्ष्णे** शीर्ष पर **(राध्यासम्** सिद्ध करता हूँ, निर्णीत करता हूँ)।।

भावार्थ :- इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् का ओज होने का अर्थ परमात्मा की शक्ति तथा उपासक दोनो ले सकते हैं। उपासक भी परमात्मा का ओजस्वरूप ही होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इन्द्रस्य (इन्द - परम ऐश्वर्य होना)। **ओजः** (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। **स्थ** (स्था- स्थित होना, ठहरना)। **मखस्य** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **वो** (सर्वनाम)। **अद्य** (अव्यय)। **शिरो** (शिर् - मुख्य होना, उच्च होना, शि - तेज करना, तीक्ष्ण करना)। **राध्यासम्** (राध - सिद्ध होना, बढ़ना)। **देवयजने** (देव, दिव् - खेलना, तेजस्वी होना, चमकना, यज् - देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान करना)। **पृथिव्याः** (पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **मखाय** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **शीर्ष्णे** (शीर्ष - शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना)।6।।

268. प्र एतु ब्रह्मणः पतिः,
प्र देवी एतु सूनृता।
अच्छा वीरम् नर्य्यम् पङ्क्तिराधसम्,
देवा यज्ञम् नयन्तु नः॥
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥ 7॥

मन्त्रार्थ :- ब्रह्मणः ब्रह्मन् का **पतिः** पालक, रक्षक, स्वामी **प्र एतु** आयें, **सूनृता** सुनृता **देवी** देवी **प्र एतु** आयें। **अच्छा** अच्छे **वीरम्** वीर, **नर्यम्** नर्य, **पंक्तिराधसम्** पंक्तिराधन में समर्थ **देवा** देवगण **नः** हमको **यज्ञम्** यज्ञ में **नयन्तु** ले चलें। **मखाय** मख के लिए **मखस्य** मख के **शीर्ष्णे** शीर्ष पर **(राध्यासम्** सिद्ध करता हूँ, निर्णीत करता हूँ)॥7॥

भावार्थ :- गुणवान् तथा समर्थ नर-नारी यजन को सफल बनायें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्र एतु (आ + इतु, इ - जाना, जानना, पाना)। **ब्रह्मणः** (बृह - बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। **देवी** (दिव्, देव् - चमकना, जानना)। **सूनृता** (नृ - ले जाना)। **अच्छा** (अच्छ - श्रेष्ठ)। **वीरम्** (वीर - शूरवीर होना, पराक्रमी होना, पराक्रम करना)। **नर्यम्** (नृ - ले जाना)। **पंक्तिराधसम्** (पचि (पञ्च्) - फैलाना, पसारना, राध - सिद्ध होना, बढ़ना)। **देवा** (देव, दिव् - खेलना, तेजस्वी होना, चमकना, यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **यज्ञम्** (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **नयन्तु** (नय - जाना, हिलना, पहुँचना, संरक्षण करना)। **नः** (सर्वनाम)। **मखाय** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **मखस्य** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **शीर्ष्णे** (शीर्ष - शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना)॥7॥

269. मखस्य शिरो असि,
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे,
मखस्य शिरो असि,
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥ 8॥

मन्त्रार्थ :- मखस्य मख के **शिरो** शिर **असि** हो। **त्वा** तुमको **मखाय** मख के लिए **मखस्य** मख के **शीर्ष्णे** शीर्ष पर **(राध्यासम्** सिद्ध करता हूँ, निर्णीत करता हूँ)॥8॥

भावार्थ :- मख के शिर होने का भाव स्पष्ट है प्रमुख होना। हम आगे बढ़कर प्रमुखता से दायित्व का निर्वाह करें तो हमें समाज में शीर्ष स्थान अर्थात् प्रमुख सम्मान प्राप्त होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- मखस्य (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **शिरो** (शिर् - मुख्य होना, उच्च होना, शि - तेज करना, तीक्ष्ण करना)। **असि** (अस् - होना)। **मखाय** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **शीर्ष्णे** (शीर्ष = शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना)॥8॥

270. अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना,
धूपयामि देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥ 9॥

मन्त्रार्थ :- त्वा तुमको **वृष्णः** बलवान् **अश्वस्य** अश्व की **शक्ना** शक्ति से **पृथिव्याः** पृथिवी के **देवयजने** देवयजन में **धूपयामि** धूपित करता हूँ। **मखाय** मख के लिए **मखस्य** मख के **शीर्ष्णे** शीर्ष पर **त्वा** तुमको (राध्यासम् सिद्ध करता हूँ, निर्णीत करता हूँ)॥9॥

भावार्थ :- अश्व गतिशीलता तथा शक्ति का प्रतीक है। यजन जैसे महत्वपूर्ण कार्य के लिए उसके समान बल तथा उत्साह की कामना की गयी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अश्वस्य (अश् - भोजन करना, व्याप्त होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **वृष्णः** (वृष् - उच्च पराक्रम् करना, वर्षा होना, सींचना)। **शक्ना** (शक - शक्ति होना, सहना, सहन करना)। **धूपयामि** (धूप - चमकना, प्रकाशित होना, बोलना, सम्भाषण करना)। **देवयजने** (देव, दिव् - खेलना, तेजस्वी होना, चमकना, यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **पृथिव्याः** (पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **मखाय** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **मखस्य** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **शीर्ष्णे**

(शीर्ष - शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना)।9॥

271. ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥ 10॥

मन्त्रार्थ :- **त्वा** तुमको **ऋजवे** ऋजु के लिए, **त्वा** तुमको **साधवे** साधु के लिए, **त्वा** तुमको **सुक्षित्यै** सुक्षिति के लिए।, **त्वा** तुमको **मखाय** मख के लिए **मखस्य** मख के **शीर्ष्णे** शीर्ष पर, **त्वा** तुमको (राध्यासम् सिद्ध करता हूँ, निर्णीत करता हूँ)।10॥

भावार्थ :- साधक, उपासक, याजक के लिए ऋजुता-सरलता, साधुता-सज्जनता की कामना तथा अपेक्षा की गयी है। क्षिति अर्थात् पृथ्वी, आधार भूमि, जहां यजन होना है, उसे भी अच्छा, संस्कारित होना चाहिए। सत्कार्य से संस्कारित भूमि तथा संस्कारित मनोभूमि में में यजन सफल तथा समुचित फलदायी होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- ऋजवे (ऋज - जाना, खड़ा रहना, स्थिर होना, बलिष्ठ होना, सामर्थ्यवान् होना, जीना, सम्पादन करना, प्राप्त करना, मिलाना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **साधवे** (साध - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जय पाना, जीतना, यशस्वी होना, साधना करना)। **सुक्षित्यै** (सु - उत्तम, सुष्ठु, अच्छा, सुन्दर (उपसर्ग), सु - उत्पन्न करना, क्षि - जाना, चलना, निवास करना, रहना, बसना)। **मखाय** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **मखस्य** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **शीर्ष्णे** (शीर्ष = शीर्ष होना, मुख्य होना, उच्च होना)।10॥

सूक्त - 2

272. यमाय त्वा मखाय त्वा, सूर्यस्य त्वा तपसे।
देवः त्वा सविता मध्वा अनक्तु,
पृथिव्याः सम् स्पृशः पाहि।
अर्चिः असि शोचिः असिः तपो असि॥ 11॥

मन्त्रार्थ :- **त्वा** तुमको **यमाय** यम के लिए, **मखाय** मख के लिए, **सूर्यस्य**

सूर्य के **तपसे** तप के लिए, **त्वा** तुमको **देवः** देव **सविता** सविता **मध्वा** मधु से **अनक्तु** प्राणवान् बनाये। **पृथिव्याः** पृथिवी की **सम्** सम्यक् **स्पृशः** स्पर्श से **पाहि** रक्षा करो। **अर्चिः** अर्चि **असि** हो, **शोचिः** शोचि **असिः** हो, **तपो** तप **असि** हो।

भावार्थ :- अच्छे कार्यों तथा सामर्थ्य के लिए प्राणवान् बनाने की शुभकामना दी गयी है। साधक-उपासक का सहयोग उत्साह-वर्धन करना भी हमारा महत्वपूर्ण कर्तव्य है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यमाय (यम - स्वाधीन रखना, पोषण करना, खाने को देना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **मखाय** (मख - जाना, स्थानान्तर करना)। **सूर्यस्य** (सुर् - प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। **तपसे** (तप् - तप्त होना, तप्त करना, तप करना, ऐश्वर्य होना)। **देवः** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)। **सविता** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। **मध्वा** (मधु - मीठा होना, मधुर होना)। **अनक्तु** (अन - जीना, समर्थ होना, जाना)। **पृथिव्याः** (पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **सम्** (उपसर्ग)। **स्पृशः** (स्पृश - स्पर्श करना, छूना, संयोग करना, हाथ से लेना)। **पाहि** (पा - रक्षा करना)। **अर्चिः** (अर्च - पूजा करना, मान करना, सेवा करना)। **असि** (अस् - होना)। **शोचिः** (शुच् - शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना)। **तपो** (तप - तप्त होना, जलना, जलाना, तप्त करना, मन से या शरीर में जलना)।11॥

273. अनाधृष्टा पुरस्तात् अग्नेः,
आधिपत्य आयुः मे दाः।
पुत्रवती दक्षिणतः इन्द्रस्य,
आधिपत्ये प्रजाम् मे दाः।
सुषदा पश्चात् देवस्य सवितुः,
आधिपत्ये चक्षुः में दाः।
आश्रुतिः उत्तरतो धातुः,
आधिपत्ये रायस्पोषम् मे दाः।

विधृतिः उपरिष्टात् बृहस्पतेः,
आधिपत्ये ओजो मे दाः।
विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यः पाहि,
मनोः अश्वा असि ॥ 12 ॥

मन्त्रार्थ :- अनाधृष्टा हे हे अनाधृष्टा, अजेय, अधीर न होने वाली, गर्व न करने वाली **अग्नेः** अग्नि के **आधिपत्ये** आधिपत्य में **पुरस्तात्** आगे, सामने या पूर्व दिशा से **मे** मुझे **आयुः** आयु **दाः** प्रदान करो। **पुत्रवती** हे पुत्रवती, **इन्द्रस्य** इन्द्र के **आधिपत्ये** आधिपत्य में **दक्षिणतः** दक्षिण से **मे** मुझे **प्रजाम्** प्रजा या सन्तान **दाः** प्रदान करो। **सुषदा** हे सुषदा, **देवस्य** देव **सवितुः** सविता के **आधिपत्ये** आधिपत्य में **पश्चात्** पीछे या पश्चिम दिशा से **मे** मुझे **चक्षुः** चक्षु **दाः** प्रदान करो। **आश्रुतिः** हे आश्रुति, **धातुः** धातृ के **आधिपत्ये** आधिपत्य में **उत्तरतो** उत्तर से **मे** मुझे **रायस्पोषम्** रायस्पोष **दाः** प्रदान करो। **विधृतिः** हे विधृति, **बृहस्पतेः** बृहस्पति के **आधिपत्ये** आधिपत्य में **उपरिष्टात्** ऊपर से **मे** मुझे **ओजो** ओज **दाः** प्रदान करो। **मनोः** मनु या मननशील मनस्वी की **अश्वा** अश्वा **असि** (तुम) हो, **विश्वाभ्यो** सभी **नाष्ट्राभ्यः** नष्टकारियों से **मा** मेरी **पाहि** रक्षा करो।

भावार्थ :- देवी स्वरूपा नारी हमें सभी ओर से साधन-सम्पन्न बनाये तथा सुरक्षा प्रदान करे, यही कामना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अनाधृष्टा (अन् + आ + धृष् = जीतना, अधीर होना, घबराना, धृषा = गर्व करना, स्वयम् को बड़ा समझना)। **पुरस्तात्** (अव्यय)। **अग्नेः** (अग् - गति करना, अग्रणी होना)। **आधिपत्ये** (अधि - अधिक, अधिकृत करते हुए, पत् - ऐश्वर्य होना)। **आयुः** (अय - जाना जानना, पाना)। **मे** (सर्वनाम)। **दाः** (दा, दद् = देना)। **पुत्रवती** (पु-पू - पवित्र करना)। **दक्षिणतः** (दक्ष् - बढ़ना, समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना, दक्ष होना, चलना, जाना, जानना, पाना, हिंसा करना, मार डालना)। **इन्द्रस्य** (इन्द - परम ऐश्वर्य होना)। **प्रजाम्** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् = उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **सुषदा** (सु - सुन्दर, सद् = जाना, जानना)। **पश्चात्** (पश्च - पीछे, सद् बैठना)। **देवस्य** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति

करना, आनन्द करना)। **सवितुः** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना, अद्भुत सामर्थ्य होना)। **रायस्पोषम्** (रय्- जाना, हिलना, पा - पालन करना, पोषण करना)। **आश्रुतिः** (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **उत्तरतो** (उत् + तृ, तृ = तैरना, पार जाना)। **धातुः** (धा - धारण करना)। **विधृतिः** (धृ = रखना)। **उपरिष्टात्** (उपरि = ऊपर)। **बृहस्पतेः** (बृह् = बढ़ना)। **ओजो** (ओज - शक्तिमान् होना, जीना, बढ़ना)। **विश्वाभ्यो** (सर्वनाम)। **मा (माम्)** (सर्वनाम)। **नाष्ट्राभ्यः** (नश - खो जाना, नष्ट होना, दिखाई नहीं देना)। **पाहि** (पा - रक्षा करना)। **मनोः** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **अश्वा** (अश् - भोजन करना, व्याप्त होना)। **असि** (सर्वनाम) ॥12॥

274. स्वाहा मरुद्भिः परि श्रीयस्व,
दिवः सम् स्पृशः पाहि।
मधु मधु मधु ॥ 13 ॥

मन्त्रार्थ :- स्वाहा व्यापक **मरुद्भिः** मरुतों द्वारा **श्रीयस्व** आश्रयरूप बनो (अर्थात् मरुतों के साथ आश्रय बनो), **दिवः** दिव का **सम्** सम्यक् **स्पृशः** स्पर्श कर **पाहि** रक्षा करो, **परि** सर्वत्र **मधु** मधुरता हो।

भावार्थ :- मरुत् का भावार्थ मरणशील प्राणी, विशेष रूप से मनुष्य माना जाता है। मन्त्र का सन्देश है कि व्यापक भावना वाले मनुष्यों के साथ आश्रय बनो अथवा इतने व्यापक बनो कि सभी मनुष्यों के साथ आश्रय बन सके। इतना ही नहीं, और भी व्यापक भावना हो तो मरुत अर्थात् सभी मरणशील प्राणियों के आश्रय बन सको तो और भी श्रेयस्कर है।

विशेष :- विद्वानों ने इस मन्त्र का अर्थ करते समय स्वाहा को सम्बोधन माना है। अतः अर्थ इस प्रकार करेंगे कि हे स्वाहा अर्थात् व्यापक भावना वाले उपासक, तुम मरुतों के आश्रय बनो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **मरुद्भिः** (मृ = मरना)। **परि** (उपसर्ग)। **श्रीयस्व** (श्रि-श्री - सेवा करना, आश्रय करना)। **दिवः** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना आदि)। **सम्** (उपसर्ग)। **स्पृशः** (स्पृश - स्पर्श

करना, छूना, संयोग करना, हाथ से लेना)। **पाहि** (पा = पालन करना, रक्षा करना)। **मधु** (मध् - मधुर होना, मीठा होना)।।13।।

275. गर्भो देवानाम्, पिता मतीनाम्, पतिः प्रजानाम्। सम् देवो देवेन सवित्रा गत, सम् सूर्येण रोचते।।14।।

मन्त्रार्थ :- देवानाम् देवों के **गर्भो** गर्भ, **मतीनाम्** मतियों के **पिता** पिता, **प्रजानाम्** प्रजाओं के **पतिः** पति, **देवो** देव (परमात्मा, उपासक)। **सवित्रा** सविता **देवेन** देव **सूर्येण** सूर्य के साथ **सम्** सम्यक् रूप से **गत** संगत होकर **रोचते** प्रकाशित होते हैं।

भावार्थ :- देव का भावार्थ प्राकृतिक दिव्य शक्तियाँ तथा दिव्य गुण सम्पन्न उपासक है। मति का अर्थ है मननशील अर्थात् बुद्धि अथवा बुद्धिमान् लोग तथा प्रजा का अर्थ प्रमुख उत्पन्न। सामान्यतः प्रजा का भावार्थ सन्तान माना जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- गर्भो (गृ - सींचना, जानना, समझना, खाना, निगलना, शब्द करना)। **देवानाम्** (दिव्, देव् - चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। **पिता** (पा - रक्षा करना)। **मतीनाम्** (मन् मनन करना, जानना, समझना, मान्य करना)। **पतिः** (पत् - ऐश्वर्य होना)। **प्रजानाम्** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जा, जन् - उत्पन्न होना)। **सम्** (उपसर्ग)। **देवो** (दिव्, देव् - चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। **देवेन** (दिव्, देव् - चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। **सवित्रा** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **गत** (गम् - जाना, जानना, पाना)। **सूर्येण** (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। **रोचते** (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न होना)।।14।।

276. सम् अग्निः अग्निना गत,
सम् दैवेन सवित्रा,
सम् सूर्येण अरोचिष्ट।
स्वाहा सम् अग्निः तपसा गत,
सम् दैव्येन सवित्रा,

सम् सूर्येण अरूरुचत।।15।।

मन्त्रार्थ :- अग्निः अग्नि **सम्** सम्यक् रूप से **अग्निना** अग्नि के साथ **गत** गया। **सम्** सम्यक् रूप से **सवित्रा** सविता **दैवेन** देव के साथ, **सम्** सम्यक् रूप से **सूर्येण** सूर्य के साथ **अरोचिष्ट** प्रकाशित हुआ। **सम्** सम्यक् रूप से **स्वाहा** व्यापक **अग्निः** अग्नि **तपसा** तप के साथ **गत** गया। **सम्** सम्यक् रूप से **दैव्येन** दिव्य **सवित्रा** सविता के साथ, **सम्** सम्यक् रूप से **सूर्येण** सूर्य के साथ **अरूरुचत** प्रकाशित हुआ।

भावार्थ :- अग्नि परमात्मा है। स्वाहा अर्थात् व्यापक भावना के साथ उपासक भी परमात्मा के समान अग्नि स्वरूप हो जाता है। वह देव सविता के साथ स्वयम् भी सूर्य के साथ प्रकाशित होता है, अर्थात् सूर्य के समान तेजस्वी बन जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सम् (उपसर्ग)। **अग्निः** (अग् = जाना, जानना, पाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **अग्निना** (अग् = जाना, जानना, पाना, आगे जाना, ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **गत** (गम् - जाना, जानना, पाना)। **दैवेन** (दिव्, देव् = तेजस्वी होना)। **सवित्रा** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **सूर्येण** (सुर् - प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। **अरोचिष्ट** (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, रुच् = प्रकाश होना, आनन्द होना, रुचना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **तपसा** (तप् = तप्त होना, तप्त करना, तप करना, ऐश्वर्य होना)। **दैव्येन** (दिव्, देव् = तेजस्वी होना, विद्वान होना)। **सवित्रा** (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **अरूरुचत** (अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, रुच - चमकाना, प्रकाशित होना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, उत्साह करना, रुचना)।।15।।

277. धर्त्ता दिवो वि भाति तपसः पृथिव्याम्,
धर्त्ता देवो देवानाम् अमर्त्यः तपोजाः,
वाचम् अस्मे नि यच्छ देवायुवम्।।16।।

मन्त्रार्थ :- दिवो दिव का **धर्त्ता** धारणकर्ता (परमात्मा) **पृथिव्याम्** पृथिवी पर **तपसः** तप द्वारा **वि भाति** प्रकाशित होता है। **देवो** देवों का **धर्त्ता** धारणकर्ता **अमर्त्यः** अमर्त्य **तपोजाः** तप से उत्पन्न **देवानाम्** देव **नि** हमें **देवायुवम्** दिव्य वाणी **यच्छ** प्रदान करे।

भावार्थ :- परमात्मा का प्रकाश हमें तप द्वारा प्राप्त हो सकता है। उससे हमें दिव्य वाणी प्राप्त होती है। वेद को ही दिव्य वाणी माना गया है। दिव्यगुण युक्त वाणी को भी दिव्य वाणी माना जाना चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- धर्त्ता (धृ = धारण करना, नष्ट करना)। **दिवो** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना आदि)। **वि** (उपसर्ग)। **भाति** (भा - चमकना, प्रकाशित होना)। **तपसः** (तप् = तप्त होना, तप्त करना, तप करना, ऐश्वर्य होना)। **पृथिव्याम्** (पृथु = फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्यापक होना, विस्तृत होना, मोटा होना)। **देवो** (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। **देवानाम्** (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)। **अमर्त्यः** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **तपोजाः** (तप् = तप्त होना, तप्त करना, तप करना, ऐश्वर्य होना, जन - उत्पन्न होना, प्रकट होना)। **वाचम्** (वच- बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **अस्मे** (सर्वनाम)। **नि** (अव्यय)। **यच्छ** (यच्छ = देना)। **देवायुवम्** (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना, विद्वान होना)।।16।।

सूक्त - 3

278. अपश्यम् गोपाम् अनिपद्यमानम्,
आ च परा च पथिभिः चरन्तम्।
स सध्रीचीः विषूचीः वसानः,
आ वरीवर्त्ति भुवनेषु अन्तः।।17।।

मन्त्रार्थ :- परा परा **पथिभिः** पथियों से **चरन्तम्** आचरण करते हुए **अनिपद्यमानम्** अनिपद्यमान **गोपाम्** गोप को **अपश्यम्** देखा। **स** वह **सध्रीचीः** सध्रीची **विषूचीः** विशूची, विसूची **वसानः** वास करते हुए **भुवनेषु** भुवनों के **अन्तः**

भीतर **आ वरीवर्त्ति** आवर्तित होता है।

भावार्थ :- अनिपद्यमान (अ-नि-पत्) का अर्थ न गिरता हुआ भी किया गया है। पद् का अर्थ गमन लेने से इसका अर्थ अनिश्चल अथवा अविचल भी ले सकते हैं। साधारण लोगों के आचरण से ऊपर उठकर परा पथ पर चलने वाले अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होते हैं। गोप (गुप् - रक्षा करना) का अर्थ है रक्षक। वह अपने साथ किरणों तथा सूचनाओं को लेकर सम्पूर्ण सृष्टि में संव्याप्त है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अपश्यम् (अ + पश् = देखना)। **गोपाम्** (गुप् = रक्षा करना, चमकना, बोलना)। **अनिपद्यमानम्** (अ - नहीं, नि = निरन्तर, पद् - चलना, पत् - नीचे जाना, ऐश्वर्य होना)। **आ** (उपसर्ग)। **च** (अव्यय)। **परा** (अव्यय)। **पथिभिः** (पथ - जाना, घूमना)। **चरन्तम्** (चर - जाना, खाना, आचरण करना)। **सः** (सर्वनाम)। **सध्रीचीः** (सद् = जाना, जानना, पाना, पहुँचना, स - साथ, धृ = धारण करना, रखना)। **विषूचीः** (विष - सींचना, प्रोक्षण करना, सूच - सूचना करना, बात कहना, जताना, दूसरे की न्यूनता दिखाना)। **वसानः** (वस – टिकना, निवास करना)। **वरीवर्त्ति** (वृत - रहना, वर्तमान होना, वृ - वरण करना, पालन करना)। **भुवनेषु** (भू = होना)। **अन्तः** (उपसर्ग, सर्वनाम)।।17।।

279. विश्वासाम् भुवाम् पते, विश्वस्य मनसः पते,
विश्वस्य वचसः पते, सर्वस्य वचसः पते।
देवश्रुत् त्वम् देव घर्म देवो देवान् पाहि,
अत्र प्र अवीः अनु वाम् देववीतये।
मधु-माध्वीभ्याम् मधु-माधूचीभ्याम्।। 18।।

मन्त्रार्थ :- विश्वासाम् सभी **भुवाम्** भुवों के **पते** पति, **विश्वस्य** सभी **मनसः** मनों के **पते** पति, **विश्वस्य** सभी **वचसः** वाणियों के **पते** पति, **सर्वस्य** सभी के **वचसः** वचनों के **पते** पति, **देवश्रुत्** हे देवश्रुत्, **देव** देव (परमात्मा), **त्वम्** तुम **घर्म** घर्म **देवो** देव (हो), **देवान्** देवों की **पाहि** रक्षा करो। **अत्र** यहाँ **देववीतये**

देव-व्याप्ति के लिए **वाम्** तुम दोनो को **मधु-माध्वीभ्याम्** मधु-माध्वी (तथा) **मधु-माधूचीभ्याम्** मधु-माधूची द्वारा **प्र अवीः** व्याप्त करता हूँ।

भावार्थ :- परमात्मा ही सम्पूर्ण सृष्टि का अधिपति, रक्षक, पालक है। वही देवों अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों तथा देवजनों का रक्षक है। देवत्व सर्वत्र व्याप्त हो, इसके लिए परमात्मा के साथ उपासक को भी व्याप्त होना होगा, सक्रिय होना होगा। मधुरता के साथ समाज में व्याप्त हों, सबको अपना मानें तो देवत्व समाज में व्याप्त हो सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- विश्वासाम् (सर्वनाम)। **भुवाम्** (भू = होना, रहना, उत्पन्न होना, प्राप्त होना)। **पते** (पत् = ऐश्वर्य होना, जाना, जानना, पाना, नीचे गति करना)। **त्वम्** (सर्वनाम)। **देव** (दिव्, देव् = चमकना, तेजस्वी होना)। **घर्म** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **देवो** (दिव्, देव् - चमकना, तेजस्वी होना)। **देवान्** (दिव्, देव् - तेजस्वी होना आदि)। **पाहि** (पा- पालन करना, रक्षा करना)। **अत्र** (सर्वनाम)। **प्र** (उपसर्ग)। **अवीः** (अव् - रक्षा करना, वी - जाना, व्यापना)। **अनु** (उपसर्ग)। **वाम्** (सर्वनाम)। **देववीतये** (देव + वीतये, दिव्, देव् - जानना, विशिष्ट होना, कान्ति, गति होना, खेलना, वी - व्याप्त होना, गति करना)। **मधु** (मध् = मधुर होना, मीठा होना)। **माध्वीभ्याम्** (मध् = मधुर होना, मीठा होना)। **माधूचीभ्याम्** (मध् = मधुर होना, मीठा होना)।।18।।

280. हृदे त्वा मनसे त्वा, दिवे त्वा सूर्याय त्वा।
ऊर्ध्वो अध्वरम् दिवि देवेषु धेहि।। 19।।

मन्त्रार्थ :- हृदे हृदय के लिए **त्वा** तुम्हें, **मनसे** मन के लिए **त्वा** तुम्हें, **दिवे** दिव के लिए **त्वा** तुम्हें **सूर्याय** सूर्य के लिए **त्वा** तुम्हें **ऊर्ध्वो** ऊर्ध्व **दिवि** दिव में **देवेषु** देवों में **अध्वरम्** अध्वर को, अहिंसक को **धेहि** धारण करें।

भावार्थ :- मन-हृदय से उपासना करें तो सूर्य के समान तेज प्राप्त होगा, दिव्य उच्च लोक में देवों के मध्य अध्वर अर्थात् अहिंसक कर्म तथा जीवन प्राप्त होगा।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- हृदे (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **मनसे** (मन - जानना,

समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **दिवे** (दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **सूर्याय** (सुर् = प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। **ऊर्ध्वो** (ऊर्ध्व = उच्च, ऊपर)। **अध्वरम्** (अ - नहीं, ध्वृ = वर्णन करना, हिंसा करना)। **दिवि** (दिव् = तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। **देवेषु** (दिव्, देव् - चमकना, जानना)। **धेहि** (धा-धि-धी - धारण करना, पहनना, पोषण करना, रक्षण करना, देना)।।19।।

281. पिता नो असि पिता नो बोधि,
नमः ते अस्तु मा मा हिंसीः।
त्वष्टृमन्तः त्वा सपेम,
पुत्रान् पशून् मयि धेहि,
प्रजाम् अस्मासु धेहि,
अरिष्टा अहम् सहपत्या भूयासम्।। 20।।

मन्त्रार्थ :- नो हमारे **पिता** पिता **असि** हो, **पिता** हे पिता, **नो** हमारा **बोधि** बोध करो। **ते** तुम्हें **नमः** नमस्कार **अस्तु** हो, **मा** हमारी **हिंसीः** हिंसा **मा** मत करो। **त्वष्टृमन्तः** त्वष्टृमान् होकर **त्वा** तुमको **सपेम** पूर्णतः जान सकें, तुमसे मिल सकें। **अस्मासु** हमारे बीच **पुत्रान्** पुत्रों, **पशून्** पशुओं को **धेहि** धारण कराओ, **मयि** हममें **प्रजाम्** प्रजा (सन्तान) को **धेहि** धारण कराओ, **अहम्** मैं **सहपत्या** पति (ऐश्वर्य, स्वामी, रक्षक) सहित **अरिष्टा** हिंसामुक्त **भूयासम्** रहूँ।

भावार्थ :- परमात्मा को जानकर, उससे मिलाप कर हम अपनी उचित आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकते हैं तथा परिवार-समाज सहित हिंसा-भय मुक्त रह सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- पिता (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **नो** (सर्वनाम)। **असि** (अस् - होना)। **बोधि** (बुध् - जानना, समझना)। **नमः** (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **ते** (सर्वनाम)। **अस्तु** (अस् - होना)। **मा (मा - माम्)** (अव्यय, सर्वनाम)। **हिंसीः** (हिंस् - हिंसा करना, मारना)। **त्वष्टृमन्तः** (त्वक्ष् = छीलना, रेतना, त्विष् = प्रकाशित होना)।

त्वा (सर्वनाम)। **सपेम** (सप - पूर्ण ज्ञान होना, पूरा समझना, पूर्णतया जानना, संसक्त होना, संलग्न होना, मिलाप होना)। **पुत्रान्** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **पशून्** (पश- बांधना, जाना)। **मयि** (सर्वनाम)। **धेहि** (धा-धि-धी - धारण करना, पोषण करना, रक्षण करना, दान करना, पास रखना)। **प्रजाम्** (जन् - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **अस्मासु** (सर्वनाम)। **अरिष्टा** (अ - नहीं, रिष् - हिंसा करना)। **अहम्** (सर्वनाम)। **सहपत्या** (सह - साथ, सहित (सर्वनाम), पत् - श्रीमान् होना, शक्तिमान् होना)। **भूयासम्** (भू = होना)।|20 ||

282. अहः केतुना जुषताम्,
सुज्योतिः ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषताम्,
सुज्योतिः ज्योतिषा स्वाहा || 21 ||

मन्त्रार्थ :- अहः दिन **केतुना** केतु द्वारा **जुषताम्** विचार करे, **सुज्योतिः** अच्छी ज्योति **ज्योतिषा** ज्योति द्वारा **स्वाहा** व्याप्त हो। **रात्रिः** रात्रि **केतुना** केतु द्वारा **जुषताम्** विचार करे, **सुज्योतिः** अच्छी ज्योति **ज्योतिषा** ज्योति द्वारा **स्वाहा** व्याप्त हो || 21 ||

भावार्थ :- केत धातु का अर्थ आमन्त्रण करना है। दिन तथा रात में आवश्यक होने पर विचारशील लोगों को आमंत्रित कर विचार-विमर्श करें। इस प्रकार ज्योति से ज्योति व्यापक बनती रहे, समाज में ज्ञान तथा विचारशीलता का प्रकाश फैलता रहे || 21 ||

पदार्थ-मूल (निरुक्त) :- अहः (अह् - व्याप्त होना)। **केतुना** (केत - बुलाना, आमन्त्रित करना, सलाह देना)। **जुषताम्** (जुष - विचार करना, सेवा करना, चाहना, दुलारना)। **सुज्योतिः** (सु - उत्तम, श्रेष्ठ, ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **ज्योतिषा** (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **रात्रिः** (रा - देना, मिल जाना)।|21 ||

इति अष्टमः अध्यायः

ॐ

नवमः अध्यायः

व्यापकोपनिषद्

सूक्त - 1

283. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे,
अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आ ददे अदित्यै रास्ना असि || 1 ||

मन्त्रार्थ : देवस्य देव को **सवितुः** उत्पन्न करने वाला (परमात्मा) तुम्हें **अश्विनोः** व्यापक (फैले हुए) **बाहुभ्याम्** बाहुओं से, **पूष्णो** पोषण करने वाले **हस्ताभ्याम्** हाथों से **प्रसवे** उत्पन्न करे। **अदित्यै** अदिति के लिए **आ ददे** दे दिया, (तुम) **रास्ना** रास्ना **असि** हो ||

भावार्थ : परमात्मा ने देव शक्तियों, सूर्य आदि दिव्यताओं को उत्पन्न किया है। वह तुमको भी उत्पन्न करे। सभी शिशुओं, वस्तुओं, सम्पदाओं को वही उत्पन्न करता है। हम बाहें फैलाकर सबका पोषण करने वाली सेवा भावना को अपनायें तो वह हमारे लिए सुख-सम्पदा उत्पन्न करेगा। अदिति का अर्थ है अविनाशी अर्थात् परमात्मा। रास्ना का भावार्थ मेखला भी किया जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) : देवस्य (दिव् - तेजस्वी होना, स्तुति करना आदि)। **त्वा** (सर्वनाम)। **सवितुः** (सु - उत्पन्न करना)। **प्रसवे** (सु - उत्पन्न करना)। **अश्विनोः** (अश्-अशु - व्यापक होना)। **बाहुभ्याम्** (बह - बहना, गति करना, हिंसा करना, बाहुः - भुजा)। **पूष्णो** (पुष् - पोषण करना, बढ़ना)। **हस्ताभ्याम्** (हस्त - दान करना, ग्रहण करना)। **आ** (उपसर्ग)। **ददे** (दद - दान करना, देना, त्याग करना)। **अदित्यै** (अ - नहीं, दी - नष्ट होना, ह्रास होना)। **रास्ना** (रस्, रास् - शब्द करना, रस् - स्वाद् लेना, प्यार करना)। **असि** (अस् - होना)।|1 ||

284. इड एहि अदिते एहि सरस्वति एहि।
असौ एहि असौ एहि असौ एहि ॥ 2 ॥

मन्त्रार्थ :- इड इडा, **एहि** आओ। **अदिते** अदिति **एहि** आओ। **सरस्वति** सरस्वती **एहि** आओ। **असौ** यह, अभी **एहि** आओ, **असौ** यह, अभी **एहि** आओ, **असौ** यह, अभी **एहि** आओ।

भावार्थ :- दिव्य शक्तियों का आह्वान करने की प्रेरणा है। समाज में देवी स्वरूपा नारियों का आह्वान तथा सम्मान करने का भाव भी इसमें निहित है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इडे (ईड् - स्तुति करना)। **एहि** (इ - जाना, जानना, पाना)। **अदिते** (अ - नहीं, दी - नष्ट होना, ह्रास होना)। **सरस्वति** (सृ - जाना, सरकना, जानना, पाना)। **असौ** (सर्वनाम)।**2** ॥

285. अदित्यै रास्ना असि, इन्द्राण्या उष्णीषः।
पूषा असि घर्माय दीष्व ॥ 3 ॥

मन्त्रार्थ :- अदित्यै अदिति (अविनाशी) के लिए **रास्ना** रास्ना (मेखला), **इन्द्राण्या** इन्द्राणी की **उष्णीषः** उष्णीष (उषा, ज्योति) **असि** हो। **पूषा** पूषा (पोषणकारी) **असि** हो, **घर्माय** घर्म (अभिसिञ्चन, प्रकाश) के लिए **दीष्व** दो।

भावार्थ :- दिव्य शक्तियों के दिव्य गुणों को धारण करने तथा जनहित में अनुदान देने की भावना महत्वपूर्ण है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अदित्यै (अ - नहीं, दी - नष्ट होना, ह्रास होना)। **रास्ना** (रस्, रास् - शब्द करना, रस् - स्वाद लेना, प्यार करना)। **असि** (अस् - होना)। **इन्द्राण्या** (इन्द - परम ऐश्वर्य होना)। **उष्णीषः** (उष - हिंसा करना, जलना, जलाना, ताप देना)। **पूषा** (पूष - बढ़ना, पोषण करना, पालन करना)। **घर्माय** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **दीष्व** (दा - देना)॥3 ॥

286. अश्विभ्याम् पिन्वस्व,
सरस्वत्यै पिन्वस्व, इन्द्राय पिन्वस्व।
स्वाहा इन्द्रवत्, स्वाहा इन्द्रवत्, स्वाहा इन्द्रवत् ॥ 4 ॥

मन्त्रार्थ :- अश्विभ्याम् अश्विनों के लिए **पिन्वस्व** गति, ज्ञान, प्राप्त करो। **सरस्वत्यै** सरस्वती के लिए **पिन्वस्व** गति, ज्ञान, प्राप्त करो। **इन्द्राय** इन्द्र के लिए **पिन्वस्व** सेवा करो। **इन्द्रवत्** इन्द्र के समान **स्वाहा** व्यापक हो, **इन्द्रवत्** इन्द्र के समान **स्वाहा** व्यापक हो, **इन्द्रवत्** इन्द्र के समान **स्वाहा** व्यापक हो।

भावार्थ :- हमारी गति, सक्रियता, कर्म दिव्य शक्तियों के लिए होने चाहिए, संकीर्ण स्वार्थ के लिए नहीं। इसके लिए हमें इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा के समान व्यापक होना चाहिए, परमात्मा की उपासना करते हुए उसके व्यापक होने का अनुभव करते हुए स्वयम् में भी व्यापक भावना लानी चाहिए।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अश्विभ्याम् (अश - व्यापक होना)। **पिन्वस्व** (पिन्व - सेवा करना, सेचन करना, प्रोक्षण करन)। **सरस्वत्यै** (सृ - जाना, सरकना)। **इन्द्रस्य** (इन्द - परम ऐश्वर्य होना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **इन्द्रवत्** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)॥ 4 ॥

287. यः ते स्तनः शशयो यो मयोभूः,
यो रत्नधा वसुवित् यः सुदत्रः ॥
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि,
सरस्वति तम् इह धातवे अकः।
उरु अन्तरिक्षम् अन्वेमि ॥ 5 ॥

मन्त्रार्थ :- सरस्वति हे सरस्वती, **ते** तुम्हारा **यः** जो **स्तनः** स्तन (शव्द, वाणी) **शशयो** कूदने वाली, **यो** जो **मयोभूः** गति-ज्ञान-स्वरूपा, (सुखस्वरूप), **यो** जो **रत्नधा** रत्नधा (रत्नों को धारण करने वाला), **यः** जो **वसुवित्** वसुवित् **सुदत्रः** सुदत्र (है), **येन** जिससे **विश्वा** सभी **वार्याणि** वार्यों को **पुष्यसि** पुष्ट करती हो, **तम्** उसे **इह** यहाँ **धातवे** धारण करने के लिए **अकः** किया है। **उरु** व्यापक **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष का **अन्वेमि** अनुगमन करता हूँ।

भावार्थ :- सरस्वती देवी शब्द-स्वरूपा वाणी रूप में ही प्रकट है। सभी

सुख, रत्न आदि उसी में निहित हैं। वह हमारे धारण करने के लिए ही है। उसे अपनाकर, अपने में धारण कर अर्थात् विद्या पाकर ही हम अन्तरिक्ष का अनुगमन कर सकते हैं, सफलताओं का आकाश चूम सकते हैं। सरस्वती अर्थात् विद्या, ज्ञान की साधना का महत्व सर्वोपरि है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यः (सर्वनाम)। **स्तनः** (स्तन - शब्द करना)। **शशयो** (शश - फुदकते हुए चलना, कूदते हुए जाना)। **मयोभूः** (मय - जाना, जानना, पाना, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **रत्नधा** (रम् - रमना, रत् - प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना, धा् - धारण करना, पहनना, पोषण करना)। **वसुवित्** (वस - निवास करना, निश्चल, सीधा होना, आच्छादन, दया-प्रीति करना, विद - शरीर की सुध रखना, समझना, जानना, समझा के कहना, रहना, वास करना, वसना, स्थिर रहना)। **सुदत्रः** (सु - सुन्दर, अच्छा, दा, दद् - देना)। **येन** (सर्वनाम)। **विश्वा** (सर्वनाम)। **पुष्यसि** (पुष् - पोषण करना, पालन करना, धारण करना)। **वार्याणि** (वृ - वरण करना)। **सरस्वति** (सृ - जाना, सरकना)। **तम्** (सर्वनाम)। **इह** (सर्वनाम)। **धातवे** (धा - धारण करना)। **अकः** (अक् - जाना, टेढ़ा जाना)। **उरु** (उर् - जाना, चलना)। **अन्तरिक्षम्** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **अन्वेमि** (अनु + एमि, इ - जाना)॥ 5॥

288. गायत्रम् छन्दो असि, त्रैष्टुभम् छन्दो असि,
द्यावापृथिवीभ्याम् त्वा परिगृह्णामि,
अन्तरिक्षेण उप यच्छामि।
इन्द्र अश्विना मधुनः सारघस्य,
घर्मम् पात वसवो यजत वाट्।
स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये॥ 6॥

मन्त्रार्थ :- गायत्रम् गायत्र **छन्दो** छन्द **असि** हो, **त्रैष्टुभम्** त्रैष्टुभ **छन्दो** छन्द **असि** हो, **द्यावापृथिवीभ्याम्** द्यावा-पृथिवी के लिए **त्वा** तुम्हारा **परिगृह्णामि**

परिग्रहण करता हूँ, **अन्तरिक्षेण** अन्तरिक्ष द्वारा **यच्छामि** प्रदान करता हूँ। **इन्द्र** हे इन्द्र, **अश्विना** हे अश्विनो, **वाट्** संगठन, प्रवचन **यजत** यजन करते हुए **वसवो** वसुगण, **सारघस्य** सारघ के **मधुनः** मधु से **घर्मम्** घर्म की **पात** रक्षा करो। **वृष्टिवनये** वृष्टिवन **सूर्यस्य** सूर्य की **रश्मये** रश्मि के लिए **स्वाहा** व्यापक हो।

भावार्थ :- हम गायत्री, त्रिष्टुप आदि छन्दों से परमात्मा की स्तुति करते हैं, परमात्मा इन छन्दों की स्तुति से आच्छादित है। पृथिवी से द्यौ लोक तक सभी के कल्याण के लिए परमात्मा की स्तुति - उपासना को हम धारण करते हैं। सत्कर्म करने वाले, सबको बसाने, आश्रय देने वाले दिव्यजन घर्म अर्थात् प्रकाश की रक्षा करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- गायत्रम् (गा - स्तुति करना, जाना, जानना)। **छन्दो** (छन्द् - ढकना, आच्छादन करना)। **असि** (अस् - होना)। **त्रैष्टुभम्** (त्रै - संरक्षण करना, पोषण करना, बचाना)। **द्यावापृथिवीभ्याम्** (द्यु - आगे जाना, द्युत् - प्रकाश होना, पृथु = विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **परिगृह्णामि** (परि + गृह - ग्रहण करना, स्वीकार करना, पाना)। **अन्तरिक्षेण** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **उप** (उपसर्ग)। **यच्छामि** (यच्छ - देना)। **इन्द्र** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **अश्विना** (अश = व्यापक होना)। **मधुनः** (मध् - मधुर होना, मीठा होना)। **सारघस्य** (सार - कृश होना, लघुकाय होना, दुर्बल होना, सृ- जाना, सरकना, घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **घर्मम्** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **पात** (पा - रक्षा करना)। **वसवो** (वस् - निवास करना, स्नेह करना)। **यजत** (यज - यज्ञ करना, हवन करना, देवपूजा करना, अर्पण करना, देना, संगति करना, संयोग करना)। **वाट्** (वट् - घेरना, एकत्र करना, परिभाषण करना, ग्रन्थ बनाना, गूंथना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **सूर्यस्य** (सुर् - प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। **रश्मये** (रश् - विकिरण होना, किरण निकलना)। **वृष्टिवनये** (वृष् - उच्च पराक्रम करना, बरसना, वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता

करना, आपदाग्रस्त होना, मिश्रित होना, वर्षा होना, स्मरण करना, अंकुरित होना, याचना करना, उद्योग-व्यापार करना)॥ 6 ॥

289. समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा,
सरिराय त्वा वाताय स्वाहा।
अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा,
अप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा।
अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा,
अशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा॥ 7 ॥

मन्त्रार्थ :- त्वा तुम्हारे **समुद्राय** समुद्र **वाताय** वात के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **त्वा** तुम्हारे **सरिराय** सरिर **वाताय** वात के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **त्वा** तुम्हारे **अनाधृष्याय** अनाधृष्य **वाताय** वात के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **त्वा** तुम्हारे **अप्रतिधृष्याय** अप्रतिधृष्य **वाताय** वात के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **त्वा** तुम्हारे **अवस्यवे** अवस्यु **वाताय** वात के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **त्वा** तुम्हारे **अशिमिदाय** अशिमिद **वाताय** वात के लिए **स्वाहा** स्वाहा।

भावार्थ :- वात की विविधता का उल्लेख किया गया है। वात शब्द का अर्थ बहना, पवन के समान चलना, सुखी होना, सेवा करना आदि हैं। इसी लिए वात का अर्थ वायु भी है। यही जीवन का आधार है। व्यापक अर्थों में इसका महत्व समझना तथा जीवन को श्रेष्ठ बनाने का भाव है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- समुद्राय (सम् - सम्यक् रूप से, भली भाँति, उपसर्ग, उत् - उच्च, ऊपर, रा - देना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **वाताय** (वात् - सुखी होना, सेवा करना, जाना, वा - बहना, पवन के समान चलना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **सरिराय** (सृ - जाना, जानना, पाना, पहुंचना)। **अनाधृष्याय** (अन् + आ + धृष् = जीतना, अधीर होना, घबराना, धृषा - गर्व करना, स्वयम् को बड़ा समझना)। **अप्रतिधृष्याय** (अ - नहीं, धृष - जीतना, पराभव करना, अधीर होना, घबरा जाना)। **अवस्यवे** (अव् - रक्षा करना)। **अशिमिदाय** (अश्

- भोजन करना, व्याप्त होना, मिद - स्निग्ध होना, प्रीति करना, प्यार करना)॥

290. इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहा,
इन्द्राय त्वा आदित्यवते स्वाहा,
इन्द्राय त्वा अभिमातिघ्ने स्वाहा,
सवित्रे त्वा ऋभुमते, विभुमते वाजवते स्वाहा,
बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा॥ 8 ॥

मन्त्रार्थ :- वसुमते वसुमान् **रुद्रवते** रुद्रवान् **इन्द्राय** इन्द्र, **त्वा** तुम्हारे लिए **स्वाहा** स्वाहा। **आदित्यवते** आदित्यवान् **इन्द्राय** इन्द्र **त्वा** तुम्हारे लिए **स्वाहा** स्वाहा। **अभिमातिघ्ने** अभिमातिघ्न **इन्द्राय** इन्द्र, **त्वा** तुम्हारे लिए **स्वाहा** स्वाहा। **ऋभुमते** ऋभुमान, **विभुमते** विभुमान **वाजवते** वाजमान **सवित्रे** सविता, **त्वा** तुम्हारे लिए **स्वाहा** स्वाहा। **विश्वदेव्यावते** विश्वदेव्यवान् **बृहस्पतये** बृहस्पति, **त्वा** तुम्हारे लिए **स्वाहा** स्वाहा।

भावार्थ :- दिव्य शक्तियों के लिए हमारी व्यापक, उदार भावना तथा सत्कर्म, सत्य वाणी हो, यह भावना है। स्वाहा शब्द का भावार्थ विद्वानों से सत्कर्म, सत्य वाणी आदि भी किया है। शाब्दिक अर्थ व्यापकता - उदारता में ये भाव स्वतः समाहित हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इन्द्राय (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **वसुमते** (वस् - निवास करना, दया करना, प्रीति करना, आच्छादन करना, कतरना, लेना)। **रुद्रवते** (रुद् - रोना, रोते रोते कहना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **आदित्यवते** (अ+दी, अ - नहीं, अद् - खाना, नष्ट करना, दी = क्षय होना, नष्ट होना)। **इन्द्राय** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **अभिमातिघ्ने** (अभि - अभिमुख, विशेष, प्रमुख, सभी ओर, सर्वथा (उपसर्ग), मा - मान करना, मापना, तिघ - मार डालना, दुःख देना)। **सवित्रे** (सु - उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना)। **ऋभुमते** (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। **वाजवते** (वाज् = जाना, जानना, तैयार करना)। **बृहस्पतये** (बृह = बढ़ना)। **विश्वदेव्यावते**

(विश्व - सभी, दिव् = तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना)॥ 8 ॥

291. यमाय त्वा अंगिरस्वते पितृमते स्वाहा।
स्वाहा घर्माय, स्वाहा घर्मः पित्रे॥ 9 ॥

मन्त्रार्थ :- अंगिरस्वते अंगिरस्वान्, **पितृमते** पितृमान **यमाय** यम के लिए **स्वाहा** स्वाहा। **घर्माय** घर्म के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **पित्रे** पितृ के लिए **घर्मः** घर्म (तथा) **स्वाहा** स्वाहा।

भावार्थ :- यम का अर्थ नियमन करना है। नियमन-कर्ता देवशक्तियों के लिए कामना की गयी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यमाय (यम - स्वाधीन रखना, पोषण करना, खाने को देना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **अंगिरस्वते** (अङ्ग् - चलना, समीप जाना, जानना, पाना)। **पितृमते** (पा - रक्षा करना, पालन करना, पि - जाना, जानना, पाना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **घर्माय** (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **घर्मः** (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **पित्रे** (पा - रक्षा करना, पालन करना)॥ 9 ॥

सूक्त - 2

292. विश्वा आशा दक्षिणसत्
विश्वान् देवान् अयाट् इह।
स्वाहाकृतस्य घर्मस्य,
मधोः पिबतम् अश्विना॥10॥

मन्त्रार्थ :- विश्वा सभी **आशा** आशायें **दक्षिणसत्** दाहिने रहें, **स्वाहाकृतस्य** स्वाहाकृत **घर्मस्य** घर्म का **मधोः** मधु के **पिबतम्** पीने वाले **अश्विना** अश्विन् **विश्वान्** सभी **देवान्** देवों को **इह** यहाँ **अयाट्** लाये।

भावार्थ :- स्वाहा अर्थात् व्यापक भावना के प्रकाश का माधुर्य पीने वाले

अश्विन् अर्थात् शीघ्रगामी, गतिशील साधक सभी देवजनों को यहाँ लायें। जो देवजन हैं, परोपकारी विद्वान् हैं, उन सभी को आमंत्रित करें, क्षुद्र भावनाओं के वशीभूत होकर किसी देवजन को दूर न रखें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- विश्वा (सर्वनाम)। **आशा** (आ + शास् = आशीर्वाद देना, देना, भला चाहना, आशा करना)। **दक्षिणसत्** (दक्ष - समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना)। **विश्वान्** (सर्वनाम)। **देवान्** (दिव्, देव् = तेजस्वी होना आदि)। **अयाट्** (अय - जाना)। **इह** (सर्वनाम)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना। **कृतस्य** (कृ - करना)। **घर्मस्य** (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **मधोः** (मध् - मधुर होना, मीठा होना)। **पिबतम्** (पा - रक्षा करना, पालन करना, पि - जाना, जानना, पाना)। **अश्विना** (अश - पहुँचना, पाना, अशु - व्यापक होना)॥ 10 ॥

293. दिवि धा इमम् यज्ञम्,
इमम् यज्ञम् दिवि धाः।
स्वाहा अग्नये यज्ञियाय शम् यजुर्भ्यः॥ 11 ॥

मन्त्रार्थ :- दिवि दिव में **इमम्** इस **यज्ञम्** यजन को **धा** धारण करें, **इमम्** इस **यज्ञम्** यजन को **दिवि** दिव में **धाः** धारण करें। **यज्ञियाय** यजन कर्ता के लिए, **अग्नये** अग्नि के लिए **शम्** शम् (कल्याणकारी, शान्तिकारी) **यजुर्भ्यः** यजुः के लिए **स्वाहा** स्वाहा।

भावार्थ :- यजन अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण, दान जैसे सत्कर्म दिवलोक अर्थात् देवजनों के समाज में संचालित होते हैं तथा ऐसे यजनकर्ताओं को भी ऐसे देव-समाज का अधिकारी बना देते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- दिवि (दिव् - तेजस्वी होना, विद्वान् होना)। **धा** (धा - धारण करना)। **इमम्** (सर्वनाम)। **यज्ञम्** (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **अग्नये** (अग् - ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे जाना)। **यज्ञियाय** (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)।

शम् (शम् - प्रसिद्ध करना, स्पष्ट करना, शमन करना, सान्त्वना देना)। **यजुर्भ्यः** (यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना)॥ 11॥

294. अश्विना घर्मम् पातम् हार्द्वानम्,
अहर्दिवाभिः ऊतिभिः।
तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम्॥ 12॥

मन्त्रार्थ :- अश्विना अश्विन द्वय ने **अहर्दिवाभिः** दिव्य दिनों **ऊतिभिः** ऊतियों द्वारा **हार्द्वानम्** हार्दिक **घर्मम्** घर्म का **पातम्** पान किया। **द्यावापृथिवीभ्याम्** द्यावापृथिवी के लिए **तन्त्रायिणे** तन्त्रायी के लिए **नमो** नमन॥12॥

भावार्थ :- अश्विना शब्द द्विवचन है। अश धातु का अर्थ व्यापक होना है। परमात्मा सर्वव्यापी है तथा उसका उपासक भी इसका अनुभव करता हुआ आत्मविस्तार कर इस भावना से ओतप्रोत हो जाता है। यही अश्विन युगल का भाव है। ऊ धातु का अर्थ शब्द करना तथा अव धातु का अर्थ रक्षा करना है। ऊतिभिः का अर्थ वाणी तथा रक्षा भावना एवम् रक्षा साधनों द्वारा हुआ। दिव्यता के प्रकाश से युक्त दिव्य दिनों द्वारा हार्दिक घर्म अर्थात् प्रकाश का पान किया। सृष्टि के सम्पूर्ण तन्त्र के अधिपति परमात्मा को इस भावना से नमन करते हैं कि पृथिवी से द्यु लोक तक सर्वत्र सुख - शान्ति हो॥12॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अश्विना (अशु - व्यापक होना)। **घर्मम्** (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **पातम्** (पा-पिब - पीना, पाशन करना, रक्षा करना)। **हार्द्वानम्** (हृ - प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **अहः** (अह् - व्याप्त होना)। **दिवाभिः** (दिव् - प्रकाशित होना, स्तुति करना)। **ऊतिभिः** (ऊ - शब्द करना, विश्वास करना)। **तन्त्रायिणे** (तन - विस्तार करना, फैलाना, बढ़ाना, सहायता करना, शब्द करना)। **नमो** (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **द्यावापृथिवीभ्याम्** (द्यु - आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)॥ 12॥

295. अपाताम् अश्विना घर्मम्,

अनु द्यावापृथिवी अमंसाताम्।
इह एव रातयः सन्तु॥ 13॥

मन्त्रार्थ :- अश्विना अश्विन द्वय **घर्मम्** घर्म का **अपाताम्** पान करें, **द्यावापृथिवी** द्यावा-पृथिवी उनका **अमंसाताम्** अनुसरण करें। **इह** यहाँ **एव** ही **रातयः** अनुदान **सन्तु** हों।

भावार्थ :- अनु अमंसाताम् का अर्थ अनुसरण करना, अनुगमन करना विद्वानों ने लिया है। अम धातु का अर्थ गति करना है। रा धातु का अर्थ दान करना है। रात का अर्थ अनुदान है। हम अनुदान दें और परमात्मा से दिव्य अनुदान प्राप्त करें, यहीं इसी संसार में, इसी जीवन में।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अपाताम् (पा, पिब - पीना, पाशन करना, रक्षा करना)। **अश्विना** (अश - व्यापक होना)। **घर्मम्** (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **अनु** (उपसर्ग)। **द्यावापृथिवी** (द्यु - आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **अमंसाताम्** (मन - विचार करना, मनन करना, मान्य करना, मस - रूपान्तर करना, मापना)। **इह** (सर्वनाम)। **एव** (अव्यय)। **रातयः** (रा - देना, मिल जाना)। **सन्तु** (अस् - होना)॥ 13॥

296. इषे पिन्वस्व ऊर्जे पिन्वस्व,
ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व,
द्यावापृथिवीभ्याम् पिन्वस्व।
धर्मासि सुधर्म अमेनि अस्मे,
नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय,
क्षत्रम् धारय विशम् धारय॥ 14॥

मन्त्रार्थ :- इषे इष (गति, अभ्यास, इच्छा) के लिए **पिन्वस्व** सेवा, सिञ्चन करो। **ऊर्जे** ऊर्जा के लिए **पिन्वस्व** सेवा, सिञ्चन करो। **ब्रह्मणे** ब्रह्म के लिए **पिन्वस्व** सेवा, सिञ्चन करो। **क्षत्राय** क्षत्र के लिए **पिन्वस्व** सेवा, सिञ्चन करो। **द्यावापृथिवीभ्याम्** द्यावा-पृथिवी के लिए **पिन्वस्व** सेवा, सिञ्चन करो।

(तुम) **धर्मासि** धर्म हो, **अस्मे** हमारे लिए **सुधर्म** सुधर्म **अमेनि** अहिंसक रहो। **नृम्णानि** नरो को **धारय** धारण करो, **ब्रह्म** ब्रह्म को **धारय** धारण करो, **क्षत्रम्** क्षत्र को **धारय** धारण करो, **विशम्** विश, सूचना, प्रेरणा, अन्तर्गमन को **धारय** धारण करो।

भावार्थ :- सेवा, अभिसिञ्चन से इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है। सज्जनों तथा प्रकृति की सेवा, सिञ्चन अर्थात् संरक्षण करने से इन सबका दिव्य अनुदान हमें भी प्राप्त होता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- इषे (इष् - जाना, बार-बार करना, इच्छा करना)। **पिन्वस्व** (पिन्व - सेवा करना, सिञ्चन करना)। **ऊर्जे** (ऊर्ज् - बल होना, प्राण होना, प्राणवान् करना)। **ब्रह्मणे** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **क्षत्राय** (क्षत्, क्षद् - खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। **द्यावापृथिवीभ्याम्** (द्यु - आगे जाना, द्युत् - प्रकाश होना, पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **धर्मासि** (धृ - धारण करना)। **सुधर्म** (सु - अच्छा, सुन्दर, धृ - धारण करना)। **अमेनि** (अम् - शब्द करना, बोलना, सेवा करना, खाना, जाना, जानना, पाना)। **अस्मे** (सर्वनाम)। **नृम्णानि** (नृ - ले जाना)। **धारय** (धा - धारण करना)। **ब्रह्म** (बृह् - बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। **क्षत्रम्** (क्षत्, क्षद् - खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। **विशम्** (विश् - घुसना भीतर जाना, चारो ओर फैलाना)॥ 14॥

297. स्वाहा पूष्णे शरसे,
स्वाहा ग्रावभ्यः,
स्वाहा प्रतिरवेभ्यः।
स्वाहा पितृभ्यः ऊर्ध्वबर्हिभ्यो घर्म-पावभ्यः,
स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याम्, स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः॥ 15॥

मन्त्रार्थ :- स्वाहा स्वाहा **पूष्णे** पूषा के लिए **शरसे** शरः के लिए, **स्वाहा** स्वाहा **ग्रावभ्यः** ग्रावों के लिए, **स्वाहा** स्वाहा **प्रतिरवेभ्यः** प्रतिरवों के लिए। **स्वाहा** स्वाहा **ऊर्ध्वबर्हिभ्यो** ऊर्ध्व-बर्हि के लिए **घर्म-पावभ्यः** धर्म - पाव के लिए

पितृभ्यः पितरों के लिए, **स्वाहा** स्वाहा **द्यावापृथिवीभ्याम्** द्यावा-पृथिवी के लिए, **स्वाहा** स्वाहा **विश्वेभ्यो** सभी **देवेभ्यः** देवों के लिए।

भावार्थ :- स्वाहा का अर्थ व्याप्त होना है। पूषा अर्थात् पोषण करने वाले के लिए। शृ धातु का अर्थ सुनना तथा गति करना है। गति अर्थ वाली धातुओं में ज्ञान तथा प्राप्ति अर्थ भी माने जाते हैं। अतः शर शब्द का अर्थ श्रवण, गति, ज्ञान, प्राप्ति होगा। विद्वानों ने इसका भावार्थ स्नेह भी किया है। गृ धातु का अर्थ सिञ्चन तथा घर्षण करना है, ग्रु धातु का अर्थ शब्द करना है। ग्राव का अर्थ सिञ्चन, घर्षण, वाणी होगा। रव धातु का अर्थ गति करना तथा प्रकाश करना है। प्रति रव का अर्थ होगा गति, ज्ञान, प्राप्ति का प्रतिकार करना, इसी रूप में प्रत्युपकार करना।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **पूष्णे** (पुष् - पोषण करना, बढ़ना)। **शरसे** (शृ - सुनना, जाना)। **ग्रावभ्यः** (गृ - सींचना, समझना, जानना, निगलना, शब्द करना, बोलना, समझाना, बताना)। **प्रतिरवेभ्यः** (रव - गति करना, प्रकाश करना)। **पितृभ्यः** (पूर्व - पहले, जन् - जन्म होना)। **ऊर्ध्वबर्हिभ्यो** (ऊर्ध्व - ऊपर, बृह- बढ़ना, वृद्धि होना)। **घर्म** (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **पावभ्यः** (पु-पू - पवित्र करना)। **द्यावापृथिवीभ्याम्** (द्यु - आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **विश्वेभ्यो** (सर्वनाम)। **देवेभ्यः** (देव्, दिव् - चमकना, तेजस्वी होना, जानना)॥ 15॥

298. स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये,
स्वाहा सम् ज्योतिषा ज्योतिः।
अहः केतुना जुषताम्, सुज्योतिः ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषताम्, सुज्योतिः ज्योतिषा स्वाहा।
मधु हुतम् इन्द्रतमे अग्नौ अश्याम ते देव घर्म,
नमस्ते अस्तु मा मा हिंसी॥ 16॥

मन्त्रार्थ :- रुद्राय रुद्र के लिए, **रुद्रहूतये** रुद्रहूत के लिए **स्वाहा** व्याप्त हो। **सम्** सम्यक् **ज्योतिषा** ज्योति से **ज्योतिः** ज्योति **स्वाहा** व्याप्त हो। **केतुना** केतु (आमंत्रण) से **अहः** व्यापक **जुषताम्** प्रेम करो, सेवा करो। **ज्योतिषा** ज्योति से **सुज्योतिः** अच्छी ज्योति **स्वाहा** व्याप्त हो। **केतुना** केतु से **रात्रिः** रात्रि की **जुषताम्** सेवा करो, **ज्योतिषा** ज्योति से **सुज्योतिः** अच्छी ज्योति **स्वाहा** व्याप्त हो। **इन्द्रतमे** इन्द्रतम **अग्नौ** अग्नि में **मधु** मधु **हुतम्** प्रदान किया गया, **देव** हे देव **घर्म** घर्म, **ते** तुम्हारा **अश्याम** अशन करते हैं, **नमस्ते** नमस्ते **अस्तु** हो। **मा** नहीं **मा** नहीं **हिंसी** हिंसा करो।

भावार्थ :- रुद् धातु का अर्थ रोना और रुलाना है। परमात्मा करुणाशील है तथा वह दुष्टों को रुलाता भी है। अतः रुद्र का अर्थ करुणामय तथा कठोर बलशाली भी है। वह रुद्रहूत है, अर्थात् हम रुद्र अर्थात् करुण होकर उस रुद्र अर्थात् करुणामय तथा कठोर बलशाली परमात्मा को बुलाते हैं, अपनी भावना श्रद्धा समर्पित करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **रुद्राय** (रुद् - रुदन करना, रुलाना)। **रुद्रहूतये** (रुद् - रोना, रोते रोते कहना, हू - देना, आदान-प्रदान करना, ह्वे - बुलाना)। **सम्** (उपसर्ग)। **ज्योतिषा** (ज्युत - कान्तिमान होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **ज्योतिः** (ज्युत - कान्तिमान होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **अहः** (अह् - व्याप्त होना) **केतुना** (केत - बुलाना, आमन्त्रित करना, सलाह देना)। **जुषताम्** (जुष - प्रेम करना, सेवा करना)। **रात्रिः** (रा - देना, मिल जाना)। **सुज्योतिः** (सु - अच्छा, ज्योति - प्रकाश, ज्युत - कान्तिमान होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **मधु** (मध् - मधुर होना, मीठा होना)। **हुतम्** (हु - देना, लेना, ग्रहण करना)। **इन्द्रतमे** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **अग्नौ** (अग् - ऊर्ध्वगति करना, तेजस्वी होना)। **अश्याम** (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। **ते** (सर्वनाम)। **देव** (देव्, दिव् - चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। **घर्म** (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **नमः** (नम - नमस्कार करना, वन्दना करना, सम्मान देना, नमना)। **अस्तु** (अस् - होना)।

मा मा (अव्यय)। **हिंसी** (हिंस् = हिंसा करना, मारना, सताना)॥ 16॥

299. अभि इमम् महिमा दिवम्,
विप्रो बभूव सप्रथाः।
उत श्रवसा पृथिवीम् सम् सीदस्व,
महान् असि रोचस्व देववीतमः।
वि धूमम् अग्ने अरुषम् मियेध्य,
सृज प्रशस्त दर्शतम्॥ 17॥

मन्त्रार्थ :- दिवम् दिव्यता की **इमम्** यही **महिमा** महिमा है, **विप्रो** विप्र, पूर्ण, तृप्त करने वाले **सप्रथाः** सप्रथा, विस्तृत **अभि बभूव** हो गये। **श्रवसा** श्रवः, श्रवण, वाणी से **पृथिवीम्** पृथिवी पर **सम्** सम्यक् रूप से **सीदस्व** संचरण करो, प्रतिष्ठित हो। **महान्** महान् **देववीतमः** देव-ज्योति (तुम) हो, **रोचस्व** प्रकाशमान बनो। **अग्ने** हे अग्नि, **अरुषम्** अहिंसक अथवा रोष-रहित **धूमम्** धूम, कम्पन को **मियेध्य** गतिशील करो। **प्रशस्त** प्रशस्त **दर्शतम्** दर्शनीय का **सृज** सृजन करो।

भावार्थ :- देव-वीतमः का अर्थ अतिशय दिव्य-ज्योति-युक्त है। वी धातु का अर्थ गति, प्रकाश आदि है। तम प्रत्यय तुलनात्मक रूप से अतिशय या अधिकतम होने के अर्थ में आता है। धू धातु का अर्थ कम्पन करना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अभि (उपसर्ग)। **इमम्** (सर्वनाम)। **महिमा** (महि = पूजा करना, सम्मान करना)। **दिवम्** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना, खेलना, जीतने की इच्छा करना, व्यापार करना)। **विप्रो** (वि - विशेष (उपसर्ग), प्रा - पूर्ण करना, तृप्त करना)। **बभूव** (भू - होना, प्राप्त होना)। **सप्रथाः** (प्रथ = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। **उत** (अव्यय)। **श्रवसा** (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **पृथिवीम्** (पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)। **सम्** (उपसर्ग)। **सीदस्व** = संचरण करो, (सीद - जाना, चलना)। **महान्** (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **असि** (अस् - होना)। **रोचस्व** (रुच् = रुचना, प्रकाशित होना, प्रसन्न

होना)। **देववीतमः** (देव + वीतये, दिव् - देव् - जानना, विशिष्ट होना, विद्वान होना, कान्ति, गति होना, खेलना, वी = व्याप्त होना, गति करना)। **वि** (उपसर्ग)। **धूमम्** (धू - कम्पित करना, काँपना)। **अग्ने** (अग् - ऊर्ध्व गति करना, अग्रणी होना, तेजस्वी होना, चमकना, जानना, पहुंचना, पाना)। **अरुषम्** (अ - नहीं, रुष - मार डालना या दुःख देना, मार डालने का यत्न करना)। **मियेध्य** (मी- जाना, जानना)। **सृज** (सृज - छोड़ना, त्याग करना, विविध रूप से उत्पन्न करना, रचना करना)। **प्रशस्त** (प्र + शस - अनुशासन करना, इच्छा करना, आशीर्वाद देना)। **दर्शतम्** (दृश् - देखना)॥ 17 ॥

300. या ते घर्म दिव्या शुक्,
या गायत्र्याम् हविर्धाने।
सा ते आ प्यायताम् नि स्त्यायताम्, तस्यै ते स्वाहा।
या ते घर्म अन्तरिक्षे शुक्, या त्रिष्टुभि आग्नीध्रे।
सा ते आ प्यायताम् नि स्त्यायताम्, तस्यै ते स्वाहा।
या ते घर्म पृथिव्याम् शुक्, या जगत्याम् सदस्या।
सा ते आ प्यायताम् नि स्त्यायताम्, तस्यै ते स्वाहा॥18॥

मन्त्रार्थ :- घर्म हे घर्म (ज्योतिर्मय), **या** जो **ते** तुम्हारा **शुक्** तेज **दिव्या** दिव्या, **गायत्र्याम्** गायत्री में (तथा) **हविर्धाने** हविर्धान में (है), **सा** वह **ते** तुम्हारा (तेज) **आ प्यायताम्** आप्यायित हो, **नि स्त्यायताम्** निस्त्यायित हो, **तस्यै** उस **ते** तुम्हारे लिए **स्वाहा** व्याप्त हो। **घर्म** हे घर्म (ज्योतिर्मय), **या** जो **ते** तुम्हारा **शुक्** तेज **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्ष में **त्रिष्टुभि** त्रिष्टुभ् में, (तथा) **आग्नीध्रे** आग्नीध्र में (है), **सा** वह **ते** तुम्हारा (तेज) **आ प्यायताम्** आप्यायित हो, **नि स्त्यायताम्** निस्त्यायित हो, **तस्यै** उस **ते** तुम्हारे लिए **स्वाहा** व्याप्त हो। **घर्म** हे घर्म (ज्योतिर्मय), **या** जो **ते** तुम्हारा **शुक्** तेज **पृथिव्याम्** पृथिवी में **जगत्याम्** जगती में, (तथा) **सदस्या** सदस्य में (है), **सा** वह **ते** तुम्हारा (तेज) **आ प्यायताम्** आप्यायित हो, **नि स्त्यायताम्** निस्त्यायित हो, **तस्यै** उस **ते** तुम्हारे लिए **स्वाहा** व्याप्त हो। ।

भावार्थ :- आप् धातु का अर्थ व्याप्त होना तथा स्त्यै धातु का अर्थ शब्द

करना तथा एकत्र होना होता है। आप्यायित का अर्थ व्याप्त या विस्तृत होना माना गया है। निस्त्यायित का अर्थ एकत्र तथा शब्द या वाणी होगा। विद्वानों ने एकत्र का भावार्थ दृढ़ भी किया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- या (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **घर्म** (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **दिव्या** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **शुक्** (शुच्, शुक् - पावन होना, शुद्ध होना, शुद्ध करना, जाना)। **गायत्र्याम्** (गा - स्तुति करना, जाना, जानना)। **हविर्धाने** (हविः - धानम्, हुः - दान, ग्रहण करना, ह्वे - शब्द करना, धा - धारण करना)। **सा** (सर्वनाम)। **आ** (उपसर्ग)। **प्यायताम्** (प्याय् - बढ़ना)। **नि** (अव्यय)। **स्त्यायताम्** (स्त्यै - शब्द करना, आवाज करना, भीड़ होना, घेरना, फैलना)। **तस्यै** (सर्वनाम)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **अन्तरिक्षे** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, ईक्ष् - देखना)। **त्रिष्टुभि** (त्रि - तीन, स्तु - स्तुति, पूजा, सेवा करना)। **आग्नीध्रे** (अग् - ऊर्ध्वगामी होना, जानना, पाना)। **पृथिव्याम्** (पृथु - फेंकना, उड़ाना, प्रेरणा करना, भेजना, व्यापक होना, विस्तृत होना)। **जगत्याम्** (जग् - गति करना, लेना, घर्षण करना)। **सदस्या** (सद् - जाना, बैठना)॥ 18 ॥

सूक्त - 3

301. क्षत्रस्य त्वा परस्पाय,
ब्रह्मणः तन्वम् पाहि।
विशः त्वा धर्मणा वयम्,
अनु क्रामाम सुविताय नव्यसे॥ 19॥

मन्त्रार्थ :- त्वा तुम **क्षत्रस्य** क्षत्र का **परस्पाय** पालन करो, **ब्रह्मणः** ब्रह्म के **तन्वम्** तनु (विस्तार) का **पाहि** पालन करो। **विशः** विश के **धर्मणा** धर्म से **वयम्** हम **सुविताय** अच्छी गति (तथा) **नव्यसे** नवीनता के लिए **अनु क्रामाम** अनुगमन करते हैं।

भावार्थ :- तय धातु का अर्थ गति करना है, अतः सुविताय का अर्थ अच्छी गति किया गया है। श्रेष्ठ जनों, मार्गदर्शकों, अग्रजों का अनुगमन करना चाहिए, उनके पद्-चिह्नों पर चलना चाहिए। इसके साथ ही ध्यान रखना चाहिए कि यह अनुगमन अच्छी गति तथा नवीनता के लिए हो। परम्परा का अन्ध अनुकरण को यहाँ उचित नहीं माना गया है, नवीनता का स्पष्ट सन्देश दिया गया है। अग्रजों - पूर्वजों के कार्य को आगे बढ़ाना है, नवीन प्रयास करना है, उनके कार्य तथा नाम तक सीमित रहना उचित नहीं है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- क्षत्रस्य (क्षत्, क्षद् - खाना, कूटना, ढकना, मार डालना)। **त्वा** (सर्वनाम)। **परस्पाय** (पृ - पूर्ण करना, भरना, पा - पालन करना, रक्षा करना)। **ब्रह्मणः** (बृह् - बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। **तन्वम्** (तन् - विस्तार, फैलाना, श्रद्धा, उपकार, शब्द करना)। **पाहि** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **विशः** (विश - भीतर जाना, चारों ओर फैलना)। **धर्मणा** (धृ - धारण करना)। **वयम्** (सर्वनाम)। **अनु** (उपसर्ग)। **क्रामाम** (क्रम - निर्भयता से जाना, वृद्धि करना, बचाना)। **सुविताय** (वी - जाना, व्यापना)। **नव्यसे** (नव - नवीन होना, नूतन होना, नु - प्रशंसा करना, स्तुति करना) **॥ 19 ॥**

302. चतुः स्त्रक्तिः नाभिः ऋतस्य सप्रथाः,
स नो विश्वायुः सप्रथाः, स नः सर्वायुः सप्रथाः।
अप द्वेषो अप ह्वरो, अन्यव्रतस्य सश्चिम ॥ 20 ॥

मन्त्रार्थ :- चतुः चार **स्त्रक्तिः** गतियाँ **ऋतस्य** ऋत की **सप्रथाः** विस्तृत **नाभिः** नाभि हैं। **स** वह **नो** हमारे लिए **सप्रथाः** विस्तृत **विश्वायुः** विश्वायु (है), **स** वह **नः** हमारे लिए **सप्रथाः** विस्तृत **सर्वायुः** सर्वायु (है), **अन्यव्रतस्य** अन्यव्रत का **सश्चिम** सश्चिम **अप** अप **द्वेषो** द्वेष, **अप** अप **ह्वरो** ह्वर (है)।

भावार्थ :- चतुः स्त्रक्ति का भावार्थ चार प्रकार की गति अथवा चारो ओर गति हो सकता है। ऋत का अर्थ सार्वभौम प्राकृतिक नियम है, उसकी नाभि अर्थात् केन्द्र भी विस्तृत है, सूक्ष्म नहीं। विश्व की आयु, सबकी आयु उसी से विस्तृत है, उसी आधार पर संचालित है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- चतुः (संख्या)। **स्त्रक्तिः** (सृ - जाना,

सरकना)। **नाभिः** (नभ - नष्ट होना, दुःख देना या मार डालना, मध्य में स्थित होना, केन्द्र होना)। **ऋतस्य** (ऋ = जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। **सप्रथाः** (प्रथ = विस्तार होना, प्रसिद्ध होना)। **स** (सर्वनाम)। **नो** (सर्वनाम)। **विश्वायुः** (विश्व + आयुः, विश्व - सभी, अय - जाना)। **सर्वायुः** (सर्व - सभी, सर्व - जाना, दुःख देना, पीड़ा करना, अय - जाना)। **अप** (उपसर्ग)। **द्वेषो** (द्विष् = द्वेष करना)। **ह्वरो** (ह्वृ-ह्म = चलना)। **अन्यव्रतस्य** (अन्य - कोई और, इतर, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। **सश्चिम** (सश्च् = पाना, जानना, जाना) **॥ 20 ॥**

303. घर्म एतत् ते पुरीषम्,
तेन वर्द्धस्व च आ च प्यायस्व।
वर्द्धिषीमहि च वयम्,
आ च प्यासिषीमहि ॥ 21 ॥

मन्त्रार्थ :- घर्म हे घर्म (ज्योतिस्वरूप), **एतत्** यह **ते** तुम्हारा **पुरीषम्** पुरीष (है), **तेन** उससे **वर्द्धस्व** बढ़ो **च** और **प्यायस्व** व्याप्त हो। **च** और **वयम्** हम **वर्द्धिषीमहि** वृद्धि करते हैं **च** और **प्यासिषीमहि** बढ़ाते हैं।

भावार्थ :- घर्म का भावार्थ ज्योतिस्वरूप परमात्मा तथा पुरीष का अर्थ मुख्य, पालन, पूर्ण, प्रीति, सन्तुष्ट, तृप्त करने वाला है। परमात्मा के अनुदान को ही यहाँ पुरीष कहा गया है। उसे प्राप्त कर हम स्वयम् बढ़ते हैं तथा अन्य लोगों को भी बढ़ाने में सहयोग करते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- घर्म (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **एतत्** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **पुरीषम्** (पुर् - मुख्य होना, आगे जाना, पृ - पालन करना, पूर्ण करना, प्रीति करना, सन्तुष्ट करना, तृप्त करना)। **तेन** (सर्वनाम)। **वर्द्धस्व** (वृध् - बढ़ना)। **च** (अव्यय)। **आ** (उपसर्ग)। **प्यायस्व** (प्याय् - बढ़ना)। **वर्द्धिषीमहि** (वृध् - बढ़ना)। **वयम्** (सर्वनाम)। **प्यासिषीमहि** (प्यास् - बढ़ाना) **॥ 21 ॥**

304. अचिक्रदत् वृषा हरिः,
महान् मित्रः न दर्शतः।
सम् सूर्येण दिद्युतत्, उदधिः निधिः॥ 22॥

मन्त्रार्थ :- हरिः हरि ने **वृषा** पराक्रमी **अचिक्रदत्** किया, **महान्** महान् **मित्रः** मित्र **दर्शतः** दिखायी **न** नहीं पड़ता है। **सूर्येण** सूर्य के **सम्** सम्यक्, साथ **उदधिः** उदधि **निधिः** निधि को **दिद्युतत्** प्रकाशित किया है।

भावार्थ :- परमात्मा निराकार है, वह दिखायी नहीं देता है। परन्तु हम सबको उसने ही पराक्रमी किया है। उसकी शक्ति से ही हम पराक्रम करने में समर्थ हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अचिक्रदत् (कृ - करना)। **वृषा** (वृष - विशिष्ट होना, अमानवी पराक्रम करना)। **हरिः** (हृ - प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **महान्** (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **मित्रः** (मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, प्रीति करना, प्यार करना)। **न** (अव्यय)। **दर्शतः** (दृश् - देखना)। **सम्** (उपसर्ग)। **सूर्येण** (सुर् - प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)। **दिद्युतत्** (द्युत - चमकना, प्रकाशित होना)। **उदधिः** (उत् - ऊपर, धि - पास रखना या होना, युक्त होना)। **निधिः** (नि - निश्चित, निरन्तर, धि - पास रखना या होना, युक्त होना)॥ 22॥

305. सुमित्रिया नः आपः ओषधयः सन्तु,
दुर्मित्रियाः तस्मै सन्तु।
यो अस्मान् द्वेष्टि,
यम् च वयम् द्विष्मः॥ 23॥

मन्त्रार्थ :- नः हमारे लिए **आप** आप **ओषधयः** ओषधियाँ **सुमित्रिया** सुमित्र हों, **दुर्मित्रियाः** दुर्मित्र **तस्मै** उनके लिए **सन्तु** हों, **यो** जो **अस्मान्** हमसे **द्वेष्टि** द्वेष करते हैं, **यम्** जिनसे **वयम्** हम **द्विष्मः** द्वेष करते हैं।

भावार्थ -मूल (निरुक्त) :- आप का अर्थ व्यापक है। परमात्मा की दिव्य

आरोग्यकारी चेतना शक्ति सर्वत्र व्याप्त है, वह चेतन ऊर्जा ही सर्वश्रेष्ठ ओषधि है तथा वही ओषधि के रूप में उपयोग होने वाले पदार्थों में व्याप्त होकर उसे ओषधि बनाती है। ओषधि के व्याप्त होने का यही सन्देश यहाँ ध्वनित होता है। वह चेतना उपासकों के लिए तो सु-मित्र है, परन्तु उनसे द्वेष करने वाले लोगों के लिए दुर्मित्र है। मित्र तो उनके लिए भी है, शत्रु नहीं है। परमात्मा की चेतना शक्ति किसी के लिए भी शत्रु नहीं है, केवल दुष्टों को न्यायपूर्वक दण्ड देने के कारण कटु ओषधि देने वाले मित्र के समान है जो उचित बोध न होने पर सु-मित्र प्रतीत न हो। ओषधियाँ सर्वत्र व्याप्त हैं। प्रकृति के प्रत्येक स्वरूप का उपयोग ओषधि रूप में हम कर सकते हैं, यह भी उसकी व्यापकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सुमित्रिया (सु - अच्छा, सुन्दर, मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, प्रीति करना, प्यार करना)। **न** (अव्यय)। **आप** (आप् - व्याप्त होना, जाना, पाना, अवलम्ब होना)। **ओषधयः** (उषध्-ओषध्= चिकित्सा करना, रोगमुक्त करना, जानना)। **सन्तु** (अस् - होना)। **दुर्मित्रियाः** (दुः - दुष्ट, कठिन, मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, प्रीति करना, प्यार करना)। **तस्मै** (सर्वनाम)। **यो** (सर्वनाम)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **द्वेष्टि** (द्विष् = द्वेष करना)। **यम्** (सर्वनाम)। **च** (अव्यय)। **वयम्** (सर्वनाम)। **द्विष्मः** (द्विष् = द्वेष करना)॥ 23॥

306. उत् वयम् तमसः परि, स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवम् देवत्रा सूर्यम्, अगन्म ज्योतिः उत्तमम्॥ 24॥

मन्त्रार्थ :- वयम् हम **तमसः** तमस् (अन्धकार) से **परि** परे **उत्तरम्** उत्तर में **स्वः** स्वः को **पश्यन्त** देखते हैं। **देवत्रा** देवों का त्राण करने वाले **उत्तमम्** उत्तम **ज्योतिः** ज्योति **सूर्यम्** सूर्य **देवम्** देव को (हम) **अगन्म** प्राप्त हुए॥ 24॥

भावार्थ :- स्वः का अर्थ ऐश्वर्यवान्, सब कुछ उत्पन्न करने वाला परमात्मा के साथ स्व अर्थात् अपना वास्तविक स्व-रूप भी मान सकते हैं। अज्ञान के अन्धकार से परे वह दिव्य स्वरूप उत्तर अर्थात् श्रेष्ठतर है। उसे देख सकें तो उस उत्तर से भी बढ़कर उत्तम अर्थात् श्रेष्ठतम ज्योति को प्राप्त कर सकते हैं॥ 24॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- **उत्** (अव्यय)। **वयम्** (सर्वनाम)। **तमसः** (तम- इच्छा करना, चाहना, अन्धकार होना)। **परि** (उपसर्ग)। **स्वः** (सु - उत्पन्न होना, उत्पन्न करना)। **पश्यन्त** (पश् - देखना)। **उत्तरम्** (उत् - ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तृ - तैरना, पार जाना)। **देवम्** (देव्, दिव् - चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। **देवत्रा** (देव्, दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, त्रै - त्राण करना, रक्षा करना)। **सूर्यम्** (सुर् - ऐश्वर्य, प्रकाश होना)। **अगन्म** (गम् - जाना, जानना, पाना)। **ज्योतिः** (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना, प्रकाशित होना)। **उत्तमम्** (उत् - ही, उत्कृष्ट, ऊपर, उच्च, तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)**॥ 24 ॥**

307. एधो असि, एधिषीमहि,
समित् असि, तेजो असि, तेजो मयि धेहि॥ 25 ॥

मन्त्रार्थ :- तुम **एधो** एध (वृद्धि) **असि** हो, **एधिषीमहि** हम भी वृद्धि करते हैं। तुम **समित्** समित् **असि** हो, **तेजो** तेज **असि** हो, **मयि** मुझमें **तेजो** तेज **धेहि** धारण कराओ।

भावार्थ :- यहाँ स्पष्ट है कि हम स्तुति प्रार्थना में परमात्मा के जिस गुण का स्मरण करते हैं, वास्तव में उस गुण को स्वयम् में धारण करने की भावना होना महत्वपूर्ण है। परमात्मा एध अर्थात् वृद्धिस्वरूप है, इस गुण की स्तुति का निहितार्थ यही है कि हम भी इस गुण को धारण करें और वृद्धि करें। परमात्मा तेज स्वरूप है तो हमें भी तेज को धारण करना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- **एधो** (एध - बढ़ना)। **असि** (अस् - होना)। **एधिषीमहि** (एध - बढ़ना)। **समित्** (सम् + इत्, सम् - भलीभांति, इत् - ही, इत् - इन्धी - प्रकाशित होना)। **तेजो** (तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना)। **मयि** (सर्वनाम)। **धेहि** (धा-धि-धी - धारण करना, पहनना, पोषण करना, पास रखना)**॥25 ॥**

308. यावती द्यावापृथिवी, यावत्,
च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे।

तावत् तम् इन्द्र ते ग्रहम्,
ऊर्जा गृह्णामि अक्षितम्,
मयि गृह्णामि अक्षितम्॥ 26 ॥

मन्त्रार्थ :- **यावती** जितना, जब तक **द्यावापृथिवी** द्यावा-पृथिवी और **यावत्** जितना, जब तक **सप्त** सप्त, सात **सिन्धवो** सिन्धु **वितस्थिरे** वितस्थ, विस्तृत हैं, **तावत्** उतना, तब तक **इन्द्र** हे इन्द्र, **ते** तुम्हारा **ग्रहम्** ग्रह को **अक्षितम्** अक्षित **ऊर्जा** ऊर्जा का **गृह्णामि** ग्रहण करता हूँ, **मयि** मुझमें **अक्षितम्** अक्षित को **गृह्णामि** ग्रहण करता हूँ।॥26॥

भावार्थ :- इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा का ग्रहण करें, उपासना करें तो अक्षित या अक्षत ऊर्जा प्राप्त होती है।॥26॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- **यावती** (सर्वनाम)। **द्यावापृथिवी** (द्यु - आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु - विस्तार होना, भेजना, प्रेरणा करना)। **यावत्** (सर्वनाम)। **च** (अव्यय)। **सप्त** (संख्या)। **सिन्धवो** (सि - बांधना, गूंथना, फन्दे से पकड़ना)। **वितस्थिरे** (वि - विशेष, स्था - स्थित होना)। **तावत्** (सर्वनाम)। **तम्** (सर्वनाम)। **इन्द्र** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **ते** (सर्वनाम)। **ग्रहम्** (ग्रह - लेना, स्वीकार करना)। **ऊर्जा** (ऊर्ज - शक्तिमान होना, पराक्रमी होना)। **गृह्णामि** (ग्रह - लेना, स्वीकार करना)। **अक्षितम्** (अक्ष - व्याप्त होना, इच्छितार्थ होना, पैठना, अ - नहीं, क्षि - क्षय होना, नष्ट होना)। **मयि** (सर्वनाम)**॥26 ॥**

309. मयि त्यत् इन्द्रियम् बृहत्,
मयि दक्षो मयि क्रतुः।
घर्मः त्रिशुक् विराजति,
विराज ज्योतिषा सह,
ब्रह्मणा तेजसा सह॥ 27 ॥

मन्त्रार्थ :- **त्यत्** तुम्हारा **बृहत्** बृहत् **इन्द्रियम्** ऐश्वर्य **मयि** मुझमें (है), **मयि** मुझमें **दक्षो** दक्ष, **मयि** मुझमें **क्रतुः** क्रतु (है)। **त्रिशुक्** तीन गुना पवित्र **घर्मः**

ज्योति **विराजति** विराजमान है। **ज्योतिषा** ज्योति के **सह** साथ, **ब्रह्मणा** ब्रह्म के **तेजसा** तेज के **सह** साथ **विराज** विराजमान हो।

भावार्थ :- परमात्मा का बृहत् ऐश्वर्य अर्थात् दिव्य चेतना शक्ति हममें भी है। उपासना द्वारा अपने अज्ञान का आवरण हटाकर उसका अनुभव करने की आवश्यकता है। इसके बाद हम मनसा, वाचा, कर्मणा पवित्र होकर उस दिव्य ज्योति के साथ विराजमान हो सकते हैं, अपने जीवन में उस दिव्य ज्योति का अनुभव कर सकते हैं, उसका प्रकाश फैला सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- मयि (सर्वनाम)। **त्यत्** (सर्वनाम)। **इन्द्रियम्** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना)। **बृहत्** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **दक्षो** (दक्ष् - गति करना, जानना, पाना, हिंसा करना)। **क्रतुः** (कृ - करना)। **घर्मः** (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **त्रिशुक्** (त्रि - तीन, शुच्, शुक् - पावन होना, शुद्ध होना)। **विराजति** (वि - विशेष, राज् - प्रकाशित होना)। **विराज** (राज् - प्रकाशित होना)। **ज्योतिषा** (ज्युत - कान्तिमान् होना, चमकना)। **सह** (सर्वनाम)। **ब्रह्मणा** (बृह् - बढ़ना, बड़ा होना, जानना)। **तेजसा** (तिज्, तेज् - चमकना, चमकाना, पैना करना)।।27।।

310. पयसो रेत आभृतम्,
तस्य दोहम् अशीमहि,
उत्तराम् उत्तराम् समाम्।
त्विषः सम्वृक् क्रत्वे दक्षस्य ते,
सुषुम्णस्य ते सुषुम्णा अग्निहुतः।
इन्द्रपीतस्य प्रजापति-भक्षितस्य मधुमतः,
उपहूतः उपहूतस्य भक्षयामि।। 28।।

मन्त्रार्थ :- पयसो विस्तार की **रेत** गति **आभृतम्** परिपूर्ण है। **तस्य** उसके **उत्तराम् उत्तराम्** उत्तर-उत्तर **समाम्** समत्व **दोहम्** दोहन का **अशीमहि** भोजन करते हैं। **त्विषः** प्रकाश का **सम्वृक्** सम्यक् ग्रहण **क्रत्वे** करते हैं। **ते** तुम्हारे **दक्षस्य** दक्ष का, **ते** तुम्हारे **सुषुम्णस्य** सुषुम्ण का **सुषुम्णा** सुषुम्णा

अग्निहुतः अग्निहुत, **इन्द्रपीतस्य** इन्द्रपीत का **प्रजापति-भक्षितस्य** प्रजापति-भक्षित का **मधुमतः** मधुमत, **उपहूतस्य** उपहूत का **उपहूतः** उपहूत **भक्षयामि** भक्षण करता हूँ।

भावार्थ :- आत्म-विस्तार की भावना हो तो प्रगति में कोई अवरोध नहीं, परिपूर्णता होती है। हम समत्व भावना से प्रकृति का दोहन कर भोजन करें, अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण करें, यही उचित है। अज्ञान अथवा संकीर्ण स्वार्थ के लिए प्रकृति दोहन करना अनुचित है। दिव्य चेतना का प्रकाश सम्यक् रूप से ग्रहण करें, इसी में जीवन की सार्थकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- पयसो (पयस् - विस्तार करना, फैलाना)। **रेत** (रि - जाना, जानना, पाना)। **आभृतम्** (आ - समन्तात्, पर्णतः, भृ - पूर्ण करना)। **तस्य** (सर्वनाम)। **दोहम्** (दुह - दूध निकालना, दोहना, रिक्त करना, लेना, खेंचना)। **अशीमहि** (अश् - भोजन करना)। **उत्तराम्** (सर्वनाम)। **समाम्** (सम - न घबराना, एक समान रहना)। **त्विषः** (त्विष - प्रकाशित होना, चमकना)। **सम्वृक्** (सम् - सम्यक्, समन्तात्, उपसर्ग, वृक - लेना, मान्य करना, स्वीकार करना)। **क्रत्वे** (कृ- करना)। **दक्षस्य** (दक्ष - समृद्ध होना, शीघ्र कार्य करना, चतुर होना)। **ते** (सर्वनाम)। **सुषुम्णस्य** (सु - उत्पन्न करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, मण - अस्पष्ट शब्द करना, कहना)। **सुषुम्णा** (सु - उत्पन्न करना, पैदा करना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्‌भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, मण - अस्पष्ट शब्द करना, कहना)। **अग्निहुतः** (अग् - ऊर्ध्वगामी होना, जानना, पाना)। **इन्द्रपीतस्य** (इन्द् - परम ऐश्वर्य होना, पा-पिब् - पीना)। **प्रजापति** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जा, जन् - उत्पन्न होना)। **भक्षितस्य** (भक्ष - खाना)। **मधुमतः** (मध् - मधुर होना)। **उपहूतः** (उप + हूता, हु - दान-आदान करना, ह्वे - बुलाना)। **उपहूतस्य** (उप + हूता, हु - दान-आदान करना, दान करना, ह्वे - बुलाना)। **भक्षयामि** (भक्ष - खाना)।।28।।

इति नवमः अध्यायः

ॐ

दशमः अध्यायः

समर्पणोपनिषद्

सूक्त - 1

311. स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः।
पृथिव्यै स्वाहा अग्नये स्वाहा,
अन्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा।
दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा॥ 1॥

मन्त्रार्थ :- साधिपतिकेभ्यः साधिपतिक **प्राणेभ्यः** प्राणों के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **पृथिव्यै** पृथिवी के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **अग्नये** अग्नि के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **अन्तरिक्षाय** अन्तरिक्ष के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **वायवे** वायु के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **दिवे** दिव के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **सूर्याय** सूर्य के लिए **स्वाहा** व्यापकता।॥1॥

भावार्थ :- प्राणों के अधिपति तो परम प्रभु परमात्मा ही हैं। प्राण अर्थात् चेतना शक्ति को परमात्मा के साथ जोड़ दें, तभी हमारी चेतना का वास्तविक विस्तार सम्भव है। पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, दिव, सूर्य आदि सम्पूर्ण प्रकृति, सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति अपने प्राणों का, अपनी चेतना का विस्तार करें। प्रकृति के संरक्षण में ही हमारा हित है।॥1॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- स्वाहा (सु + आहा, स्व + अहा, आहा, अह् - व्यापक होना)। **प्राणेभ्यः** (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। **साधिपतिकेभ्यः** (स - सहित, साथ, अधि - अधिकृत, ऊपर, साध - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जय पाना, जीतना, यशस्वी होना, साधना करना, पत् - श्रीमान् होना, शक्तिमान् होना)। **पृथिव्यै** (पृथ्, प्रथ् - विस्तार करना)। **अग्नये** (अग् - ऊपर जाना, ऊर्ध्व गमन करना, आगे

जाना)। **अन्तरिक्षाय** (अन्तः - बीच में, अन् - प्राण होना, चेतन होना, जीवन होना, अन्त् - बाँधना, हिंसा करना, चलना, इक्ष् - स्वाद लेना, देखना)। **वायवे** (वे - बुनना, वा - गति करना)। **दिवे** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)। **सूर्याय** (सुर् - प्रकाश होना, ऐश्वर्य होना)।**1**॥

312. दिग्भ्यः स्वाहा, चन्द्राय स्वाहा, नक्षत्रेभ्यः स्वाहा,
अद्भ्यः स्वाहा, वरुणाय स्वाहा।
नाभ्यै स्वाहा, पूताय स्वाहा॥ 2॥

मन्त्रार्थ :- दिग्भ्यः दिशाओं के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **चन्द्राय** चन्द्र के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **नक्षत्रेभ्यः** नक्षत्रों के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **अद्भ्यः** अद् के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **वरुणाय** वरुण के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **नाभ्यै** नाभि के लिए **स्वाहा** व्यापकता।॥1॥

भावार्थ :- सम्पूर्ण प्रकृति के लिए आत्म-विस्तार की कामना की गयी है॥1॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- दिग्भ्यः (दिक् - दिशा देना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **चन्द्राय** (चन्द् - चमकना, आनन्द होना)। **नक्षत्रेभ्यः** (नक्ष - जाना, समीप जाना या आना, पहुंचना)। **अद्भ्यः** (अद् - खाना, आत्मसात् करना)। **वरुणाय** (वृ - वरण करना, पालन करना)। **नाभ्यै** (नभ् - मध्य होना, केन्द्र होना, हिंसा करना)। **पूताय** (पू - पवित्र करना, स्वच्छ करना)।**2**॥

313. वाचे स्वाहा, प्राणाय स्वाहा, प्राणाय स्वाहा।
चक्षुषे स्वाहा, चक्षुषे स्वाहा,
श्रोत्राय स्वाहा, श्रोत्राय स्वाहा॥ 3॥

मन्त्रार्थ :- वाचे वचन के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **प्राणाय** प्राण के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **प्राणाय** प्राण के लिए **स्वाहा** व्यापकता। **चक्षुषे** चक्षु के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **चक्षुषे** चक्षु के लिए **स्वाहा** व्यापकता। **श्रोत्राय** श्रोत्र के लिए **स्वाहा** व्यापकता, **श्रोत्राय** श्रोत के लिए **स्वाहा** व्यापकता।

भावार्थ :- सम्पूर्ण प्रकृति के लिए आत्म-विस्तार की कामना की गयी है। वाच् या वाक्शक्ति का उल्लेख एक बार तथा प्राण, चक्षु, श्रोत्र का उल्लेख दो बार किया गया है। इसका अर्थ यह है कि वाणी का अंग मुख या जिह्वा तो एक है, उसका प्रयोग भी अन्य से अल्प करना चाहिए। प्राण, चक्षु तथा श्रोत दो-दो हैं ही, उनका उपयोग भी अधिक करना है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- वाचे (वच् - बोलना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **प्राणाय** (प्र - अधिक, प्रकृष्ट, अन- जीवन होना, चेतन होना, प्रा- पूर्ण करना, तृप्त करना)। **चक्षुषे** (चक्ष - साफ बोलना, कहना, देखना)। **श्रोत्राय** (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)।|3||

314. मनसः कामम् आकूतिम्,
वाचः सत्यम् अशीय।
पशूनाम् रूपम्, अन्नस्य रसो,
यशः श्रीः श्रयताम् मयि स्वाहा।। 4।।

मन्त्रार्थ :- मनसः मन की **कामम्** कामना **आकूतिम्** आकूति को, **वाचः** वाणी के **सत्यम्** सत्य को **अशीय** प्राप्त करो। **मयि** मुझमें **पशूनाम्** पशुओं का **रूपम्** रूप, **अन्नस्य** अन्न का **रसो** रस, **यशः** यश, **श्रीः** श्री **स्वाहा** व्यापकता से **श्रयताम्** प्राप्त हो।

भावार्थ :- जीवन में सद्गुणों को ग्रहण करने की भावना है। पशुओं का रूप प्राप्त करने की बात कही गयी है तो स्पष्ट है कि पशु का अर्थ गो, अश्व आदि पशु नहीं हो सकता है। यहाँ पशु का अर्श मार्गदर्शक विद्वान् (पश् - देखना) ही है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- मनसः (मन - जानना, समझना, विचार करना, मानना)। **कामम्** (अव्यय)। **आकूतिम्** (कु-कू - शब्द करना)। **वाचः** (वच् = बोलना)। **सत्यम्** (सत् - सत्य होना, अस्तित्व होना)। **अशीय** (अश् - भोजन करना, व्याप्त होना)। **पशूनाम्** (पश् - देखना)। **रूपम्** (रूप - बनाना, आकार बनाना, रचना करना, मन में रूपाकृति लाना)। **अन्नस्य** (अन् =

प्राणवान् होना, अद- खाना)। **रसो** (रस - स्वाद लेना, चखना, प्रीति करना, प्यार करना)। **यशः** (यश - कीर्ति होना, प्रसिद्ध करना)। **श्रीः** (श्री - सेवा करना, श्रेय होना, आश्रय होना)। **श्रयताम्** (श्रि-श्री - सेवा करना, श्रेय होना, आश्रय होना)। **मयि** (सर्वनाम)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)।|4||

सूक्त - 2

315. प्रजापतिः सम् भ्रियमाणः, सम्राट् सम्भृतो,
वैश्वदेवः सम् सन्नो, घर्मः प्रवृक्तः,
तेजः उद्यतः, आश्विनः पयसि आनीयमाने,
पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन्।
मैत्रः शरसि सन्तायमाने, वायव्यो ह्रियमाण,
आग्नेयो हूयमानो वाक् हुतः।। 5।।

मन्त्रार्थ :- प्रजापतिः प्रजापति **सम् भ्रियमाणः** सम्भ्रियमाण **सम्भृतो** सम्भृत **सम्राट्** सम्राट् (है), **वैश्वदेवः** वैश्वदेव **सम्** सम्यक् **सन्नो** आसीन **प्रवृक्तः** प्रवृक्त **घर्मः** घर्म (प्रकाश), **उद्यतः** उद्यत **तेज** तेज (है), **आश्विनः** आश्विन **पयसि** पयस् में **आनीयमाने** आनीयमान (है), **पौष्णो** पौष्ण **विष्यन्दमाने** विष्यन्दमान (तथा) **मारुतः** मारुत् **क्लथन्** हिंसक (है)। **मैत्रः** मैत्र **शरसि** शरः में **सन्तायमाने** सन्तायमान, विस्तार करते हुए, **वायव्यो** वायव्य **ह्रियमाण** ह्रियमान, **आग्नेयो** आग्नेय **हूयमानो** हूयमान, **वाक्** वाक् **हुतः** हुत (है)।

भावार्थ :- परमात्मा की दिव्य शक्तियों का स्मरण किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- प्रजापतिः (प्र + जा, प्र - प्रकृष्ट, अधिक, जन् - उत्पन्न होना)। **सम्भ्रियमाणा** (भृ - भरण करना, भ्री- डरना, धारण करना, भरण करना, आश्रय देना, पालन करना, रक्षा करना)। **सम्राट्** (राज् - शोभित होना, प्रकाशित होना, चमकना)। **सम्भृतो** (भृ - धारण करना, भरण-पोषण करना)। **वैश्वदेवः** (विश्व - सभी, दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न करना)। **सम्** (उपसर्ग)। **नो**

(सर्वनाम)। **घर्मः** (घृ - सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **प्रवक्तः** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, वच- बोलना, कहना, समझाना, जनाना, पढ़ना, अध्ययन करना)। **तेजः** (तिज्, तेज् = चमकना, चमकाना, पैना करना)। **उद्यतः** (यत - प्रयास करना, उद्योग करना)। **अश्विनः** (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)। **पयसि** (पयस् - विस्तार करना, फैलाना)। **आनीयमाने** (आ - समन्तात्, पूर्णतः, नी - पहुँचाना, प्राप्त होना, मार्ग दिखाना, पाना, मिलना, ले जाना)। **पौष्णो** (पुष् - पालन-पोषण करना, धारण करना)। **विष्यन्दमाने** (वि - विशेष, स्यन्द = टपकना, सीचना, जाना, जानना, पाना)। **मारुतः** (मृ = मरना)। **क्लथन्** (क्लथ - दुःख देना, मार डालना, घूमना)। **मैत्रः** (मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, प्रीति करना, प्यार करना)। **शरसि** (शृ - सुनना, शृ - मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। **सन्तायमाने** (सम् - सम्यक्, भलीभाँति, ताय - फैलाना, संरक्षण करना)। **वायव्यो** (वा = गति करना, वे बुनना)। **ह्रियमाण** (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **आग्नेयो** (अग् = ऊर्ध्वगति करना)। **हूयमानः** (हु - देना, ग्रहण करना, आदान-प्रदान करना)। **वाक्** (वाक् = वाणी)। **हुतः** (हु - देना, लेना, ग्रहण करना, आदान-प्रदान करना)।5।।

316. सविता प्रथमे अहन्, अग्निः द्वितीये,
वायुः तृतीये आदित्यः चतुर्थे,
चन्द्रमाः पञ्चमे ऋतुः षष्ठे,
मरुतः सप्तमे बृहस्पतिः अष्टमे,
मित्रो नवमे वरुणो दशमे,
इन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ॥ 6 ॥

मन्त्रार्थ :- सविता सविता **प्रथमे** पहले, **अग्निः** अग्नि **द्वितीये** दूसरे, **वायुः** वायु **तृतीये** तीसरे, **आदित्यः** आदित्य **चतुर्थे** चौथे, **चन्द्रमाः** चन्द्रमा **पञ्चमे** पाँचवे, **ऋतुः** ऋतु **षष्ठे** छठे, **मरुतः** मरुत **सप्तमे** सातवें, **बृहस्पतिः** बृहस्पति **अष्टमे** आठवें, **मित्रो** मित्र **नवमे** नौवें, **वरुणो** वरुण **दशमे** दसवें, **इन्द्र** इन्द्र **एकादशे** ग्यारहवें, **विश्वेदेवा** विश्वदेव **द्वादशे** बारहवें **अहन्** - व्याप्त (है)।

भावार्थ :- परमात्मा तथा उसकी दिव्य शक्तियों का महत्व स्मरण किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सविता (सु = उत्पन्न करना, ऐश्वर्य होना या करना)। **प्रथमे** (संख्या)। **अहन्** (अह् = व्याप्त होना)। **अग्निः** (अग् = ऊपर जाना, जानना, पाना, तेजस्वी होना)। **द्वितीये** (संख्या)। **वायुः** (वा - गति करना, वे - बुनना)। **तृतीये** (संख्या)। **आदित्यः** (अदिति से उत्पन्न, अदिति = अ + दी, अ - नहीं, दी - क्षय होना, नष्ट होना, अद् - खाना)। **चतुर्थे** (संख्या)। **चन्द्रमाः** (चन्द् = चमकना, आनन्द होना)। **पञ्चमे** (संख्या)। **ऋतुः** (ऋ - जाना, जानना, पहुँचना, पाना)। **षष्ठे** (संख्या)। **मरुतः** (मृ = मरना)। **सप्तमे** (संख्या)। **बृहस्पतिः** (बृह - बढ़ना, वृद्धि होना)। **अष्टमे** (संख्या)। **मित्रो** (मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, प्रीति करना, प्यार करना)। **नवमे** (संख्या)। **वरुणो** (वृ = वरण करना, पालन करना)। **दशमे** (संख्या)। **इन्द्र** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **एकादशे** (संख्या)। **विश्वदेवा** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, गर्व करना, प्रीति करना, जाना, लेना)। **द्वादशे** (संख्या)।6।।

317. उग्रः च भीमः च ध्वान्तः च धुनिः च।
सासह्वान् च अभि युग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥ 7 ॥।

मन्त्रार्थ :- उग्रः उग्र **च** और **भीमः** भीम **च** और **ध्वान्तः** ध्वान्त **च** और **धुनिः** धुनि **च** और **सासह्वान्** सासह्वान् **च** और **अभि** अभि **युग्वा** युग्वा **च** और **विक्षिपः** विक्षिप **स्वाहा** व्यापक हो।7।।

भावार्थ :- जो कुछ भी है, उसे व्यापक बनायें। पूर्ण व्यापकता तथा सार्वजनीन होने पर सबकुछ हितकारी हो जाता है, सर्वव्यापक सार्वजनिक होने पर अहितकर का निराकरण कर ही लिया जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- उग्रः (उग्-उग्र - उग्र होना, तेज होना)। **च** (अव्यय)। **भीमः** (भी - डरना, घबराना)। **ध्वान्तः** (ध्वन - शब्द करना, ध्वनि करना)। **धुनिः** (धु - काँपना, हिलना, हिलाना)। **सासह्वान्** (सह - सहना,

सहन करना, शक्तिमान करना, सन्तुष्ट होना)। **अभि** (उपसर्ग)। **युग्वा** (युज् - मिलना, मन एकाग्र करना)। **विक्षिपः** (वि - विशेष, क्षिप - फेंकना, उड़ाना, भेजना, रखना, धरना, मार डालना, दोष लगाना, नष्ट करना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)॥ 7 ॥

318. अग्निम् हृदयेन अशनिम् हृदयाग्रेण,
पशुपतिम् कृत्स्न-हृदयेन भवम् यक्ना।
शर्वम् मतस्नाभ्याम्, ईशानम् मन्युना,
महादेवम् अन्तः पर्शव्येन,
उग्रम् देवम् वनिष्ठुना,
वसिष्ठहनुः शिंगीनि कोश्याभ्याम्॥ 8 ॥।

मन्त्रार्थ :- अग्निम् अग्नि को **हृदयेन** हृदय से, **अशनिम्** अशनि को **हृदयाग्रेण** हृदयाग्र से, **पशुपतिम्** पशुपति को **कृत्स्न-हृदयेन** कृत्स्न हृदय से, **भवम्** भव को **यक्ना** यक्न से, **शर्वम्** शर्व को **मतस्नाभ्याम्** मतस्ना से **ईशानम्** ईशान को **मन्युना** मन्यु से, **महादेवम्** महादेव को **अन्तः** अन्तः **पर्शव्येन** पर्शव्य से, **उग्रम्** उग्र **देवम्** देव को **वनिष्ठुना** वनिष्ठु से, **वसिष्ठहनुः** वसिष्ठहनु **शिंगीनि** शिंगी को **कोश्याभ्याम्** कोश्यों से॥ 8॥

भावार्थ :- शरीर के सभी अंगों से देव-शक्तियों का पोषण करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अग्निम् (अग - घूमना, टेढ़ा जाना, टेढ़े रास्ते से जाना, जाना)। **हृदयेन** (हृ - प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **अशनिम्** (अशन - खाने की इच्छा करना, क्षुधित होना)। **हृदयाग्रेण** (हृ = प्रसह्य करना, बलपूर्वक करना, हरण करना, ले जाना, पहुँचाना, चुराना)। **पशुपतिम्** (पश् - देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना, पत- श्रीमान् होना, शक्तिमान होना)। **कृत्स्न** (कृत - काटना, घेर लेना, वेष्टित करना)। **भवम्** (भू - होना)। **यक्ना** (यक्ष् - पूजना, सत्कार करना, यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान

करना, यत - प्रयास करना, उद्योग करना)। **शर्वम्** (शर्व - क्षत करना, घाव करना, मार डालना)। **मतस्नाभ्याम्** (मन् - मनन करना, विचार करना, मान्य करना, स्ना - स्नान करना, नहाना, शुद्ध होना)। **ईशानम्** (ईश - ऐश्वर्य-अधिकार होना)। **मन्युना** (मन् - जानना, समझना, मानना, विचार करना, बन्द करना, स्थिर करना, मन्द होना, गर्वीला होना, प्रतिकूल होना, रुकना)। **महादेवम्** (मह - सम्मान करना, पूजा करना)। **अन्तः** (उपसर्ग, सर्वनाम)। **पर्शव्येन** (पृ - पालन करना, पोषण करना, पूर्ण करना)। **उग्रम्** (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना)। **देवम्** (देव्, दिव् - चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। **वनिष्ठुना** (वन - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना, आपद्ग्रस्त होना)। **वसिष्ठहनुः** (वस् - निवास करना, स्नेह करना, हन् - मारना, हिंसा करना)। **शिंगीनि** (शि - तीक्ष्ण करना, पैना करना, पतला करना, सुनना, शिजि - अस्पष्ट ध्वनि करना)। **कोश्याभ्याम्** (कुश - गले लगाना, आलिंगन करना, लपेटना)॥ 8॥

319. उग्रम् लोहितेन, मित्रम् सौव्रत्येन,
रुद्रम् दौर्व्रत्येन, इन्द्रम् प्रक्रीडेन,
मरुतो बलेन, साध्यान् प्रमुदा।
भवस्य कण्ठ्यम्, रुद्रस्य अन्तः पार्श्व्यम्,
महादेवस्य यकृत्, शर्वस्य वनिष्ठुः,
पशुपतेः पुरीतत्॥ 9 ॥

मन्त्रार्थ :- उग्रम् उग्र को **लोहितेन** लोहित से, **मित्रम्** मित्र को **सौव्रत्येन** सौव्रत्य से, **रुद्रम्** रुद्र को **दौर्व्रत्येन** दौर्व्रत्य से, **इन्द्रम्** इन्द्र को **प्रक्रीडेन** प्रक्रीड से, **मरुतो** मरुत को **बलेन** बल से, **साध्यान्** साध्यों को **प्रमुदा** प्रमुद से। **भवस्य** भव का **कण्ठ्यम्** कण्ठ्य, **रुद्रस्य** रुद्र का **अन्तः** अन्तः **पार्श्व्यम्** पार्श्व्य, **महादेवस्य** महादेव का **यकृत्** यकृत्, **शर्वस्य** शर्व का **वनिष्ठुः** वनिष्ठु, **पशुपतेः** पशुपति का **पुरीतत्** पुरीतत्॥ 9॥

भावार्थ :- लोगों के गुण - कर्म - स्वभाव का लाभ उठायें, समाज के

हित में उपयोग करें तथा उसी के अनुसार व्यवहार करें।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- उग्रम् (उग् - उग्र - उग्र होना, तेज होना)। **लोहितेन** (लू = काटना, कतरना, चीरना, हन् - मारना, हि - जाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)। **मित्रम्** (मिद - स्निग्ध होना, पिघलना, अभ्यञ्जन करना, आञ्जना, प्रीति करना)। **सौव्रत्येन** (सु - सुन्दर, अच्छा, वृ - वरण करना, पसन्द करना, नियोजित करना, आच्छादित करना)। **रुद्रम्** (रुद् - रोना, रोते रोते कहना)। **दौर्व्रत्येन** (दुः - दूषित आचरण करना, वृ - वरण करना)। **इन्द्रम्** (इन्द् = परम ऐश्वर्य होना)। **प्रक्रीडेन** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, क्रीड - खेलना, विहार करना, उपहास करना, मन बहलाना)। **मरुतो** (मृ - मरना)। **बलेन** (बल - बल होना, सामर्थ्य होना)। **साध्यान्** (साध - पूर्ण करना, सिद्ध करना, जय पाना, जीतना, यशस्वी होना, साधना करना)। **प्रमुदा** (प्र - प्रकृष्ट, अधिक, मुद - हर्ष होना)। **भवस्य** (भू - होना)। **कण्ठ्यम्** (कण्ठ - निगलना, शब्द करना)। **रुद्रस्य** (रुद् - रुदन करना, रुलाना)। **अन्तः** (उपसर्ग, सर्वनाम)। **पार्श्व्यम्** (पार्श्व - निकट)। **महादेवस्य** (मह - सम्मान करना, पूजा करना, दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना, स्तुति करना, आनन्द करना, प्रसन्न होना, प्रसन्न करना)। **यकृत्** (यक्ष् - पूजना, सत्कार करना, यज् - देवपूजा, संगतिकरण, दान करना, यत - प्रयास करना, उद्योग करना, कृ - करना)। **शर्वस्य** (शर्व - क्षत करना, घाव करना, मार डालना)। **वनिष्ठुः** (वन् - शब्द करना, सेवा करना, सहायता करना)। **पशुपतेः** (पश् - देखना, पश - बांधना, बेड़ी डालना, गांठ बांधना, फांस लगाना, जाना, पत् - श्रीमान् होना, शक्तिमान् होना)। **पुरीतत्** (पुर् - मुख्य होना, आगे जाना)।।9।।

सूक्त - 3

320. लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा,
त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा,
लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा,

मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा।
मांसेभ्यः स्वाहा, मांसेभ्यः स्वाहा,
स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा,
अस्थभ्यः स्वाहा, अस्थभ्यः स्वाहा,
मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा।
रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा॥ 10॥

मन्त्रार्थ :- लोमभ्यः लोमों के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **लोमभ्यः** लोमों के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **त्वचे** त्वचा के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **त्वचे** त्वचा के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **लोहिताय** लोहित के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **लोहिताय** लोहित के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **मेदोभ्यः** मेद के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **मेदोभ्यः** मेद के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **मांसेभ्यः** मांस के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **मांसेभ्यः** मांस के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **स्नावभ्यः** स्नायु के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **स्नावभ्यः** स्नायु के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **अस्थभ्यः** अस्थियों के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **अस्थभ्यः** अस्थियों के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **मज्जभ्यः** मज्जा के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **मज्जभ्यः** मज्जा के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **रेतसे** रेतस् के लिए स्वाहा, **पायवे** पायु के लिए **स्वाहा** स्वाहा।।10।।

भावार्थ :- शरीर के अंग - प्रत्यंग के लिए स्वाहा अर्थात् व्यापकता की कामना की गयी है। हमारे पास जो कुछ भी है, वह परमात्मा का ही है, इस उदात्त भावना के साथ चेतना को व्यापक बनाये। परमात्मा का दिया हुआ जीवन उस प्रभु के लिए तथा उसके उपासक सज्जनों के लिए समर्पित है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- लोमभ्यः (लुम-लोम - लोम होना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **त्वचे** (त्वच - आच्छादित करना, लपेटना, ढांकना)। **लोहिताय** (लू - काटना, कतरना, चीरना, हन् - मारना, हि - जाना, प्रेरणा करना, भेजना, स्थूल होना, बढ़ना)। **मेदोभ्यः** (मेद - समझना, जानना, मार डालना या दुःख देना, पीड़ा करना)। **मांसेभ्यः** (मा - नापना, तौलना, समाना)। **स्नावभ्यः** (स्ना - स्नान करना, नहाना, शुद्ध होना)। **अस्थभ्यः** (अस् - होना)।

मज्जभ्यः (मज - ध्वनि करना)। **रेतसे** (रि - जाना, जानना, पाना)। **पायवे** (पा - पालन करना, बचाना, रक्षा करना)।।10।।

321. आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा,
संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहा, उद्यासाय स्वाहा।
शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा,
शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा।। 11।।

मन्त्रार्थ :- आयासाय आयास के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **प्रायासाय** प्रायास के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **संयासाय** संयास के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **वियासाय** वियास के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **उद्यासाय** उद्यास के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **शुचे** शुच के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **शोचते** शोचत के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **शोचमानाय** शोचमान के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **शोकाय** शोक के लिए **स्वाहा** स्वाहा।। 11।।

भावार्थ :- स्वाहा अर्थात् आत्म विस्तार की भावना सबके लिए हो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- आयासाय (आ - समन्तात्, पूर्णतः, यस - यत्न करना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **प्रायासाय** (प्र - अधिक, आ - समन्तात्, पूर्णतः, यस - यत्न करना)। **संयासाय** (सम् - सम्यक्, यस - यत्न करना)। **वियासाय** (वि - विशेष, यस - यत्न करना)। **उद्यासाय** (उत् तऊपर, यस - यत्न करना)। **शुचे** (शुच - दुःख मानना, शोक करना, शुच् - शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना)। **शोचते** (शुच् - शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, शुच - दुःख मानना, शोक करना)। **शोचमानाय** (शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना, शुद्ध - पवित्र करना, शुच - दुःख मानना, शोक करना)। **शोकाय** (शुच - दुःख मानना, शोक करना)।।11।।

322. तपसे स्वाहा, तप्यते स्वाहा,
तप्यमानाय स्वाहा, तप्ताय स्वाहा, घर्माय स्वाहा।
निष्कृत्यै स्वाहा, प्रायश्चित्यै स्वाहा, भेषजाय स्वाहा।।

मन्त्रार्थ :- तपसे तपः के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **तप्यते** तप्यत के लिए

स्वाहा स्वाहा, **तप्यमानाय** तप्यमान के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **तप्ताय** तप्त के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **घर्माय** घर्म अर्थात् प्रकाश के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **निष्कृत्यै** निष्कृति के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **प्रायश्चित्यै** प्रायश्चित के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **भेषजाय** भेषज के लिए **स्वाहा** स्वाहा।।12।।

भावार्थ :- सबके लिए व्यापकता, आत्मविस्तार के लिए कामना की गयी है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- तपसे (तप् - तप्त होना, तप्त करना, तप करना, ऐश्वर्य होना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु = अच्छा, अह् = व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **तप्यते** (तप् - तप करना)। **तप्यमानाय** (तप् - तप करना)। **तप्ताय** (तप् - तप करना)। **घर्माय** (घृ = सींचना, चमकना, प्रकाश होना)। **निष्कृत्यै** (निः - निश्चित, निरन्तर, कृ - करना)। **प्रायश्चित्यै** (प्रा - पूर्ण होना, चित - विचार करना, चिन्तन करना, स्मरण करना, याद करना)। **भेषजाय** (भेष - डरना, जाना, जन् - उत्पन्न होना)।।12।।

323. यमाय स्वाहा, अन्तकाय स्वाहा, मृत्यवे स्वाहा।
ब्रह्मणे स्वाहा, ब्रह्महत्यायै स्वाहा,
विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा।। 13।।

मन्त्रार्थ :- यमाय यम के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **अन्तकाय** अन्तक के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **मृत्यवे** मृत्यु के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **ब्रह्मणे** ब्रह्म के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **ब्रह्महत्यायै** ब्रह्महत्या के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **विश्वेभ्यो देवेभ्यः** विश्व देवों के लिए **स्वाहा** स्वाहा, **द्यावापृथिवीभ्याम्** द्यावापृथिवी के लिए **स्वाहा** स्वाहा।।13।।

भावार्थ :- हमारी आत्म-चेतना का विस्तार, व्यापकता असीम हो जाये तो सबकुछ उसमें समाहित हो जाये, कुछ ही उससे परे अथवा त्याज्य न हो।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यमाय (यम - स्वाधीन रखना, काबू में रखना, पोषण करना, खाने को देना)। **स्वाहा** (सु + आहा, स्व + अहा, स्व + आहा, सु - अच्छा, अह् - व्याप्त होना, फैलना, विस्तृत होना)। **अन्तकाय** (अन्त् - हिंसा करना)। **मृत्यवे** (मृ - मरना, देहत्याग करना)। **ब्रह्मणे** (बृह् - बढ़ना,

बड़ा होना, जानना)। **ब्रह्महत्यायै** (बृह् - बढ़ना, बड़ा होना, जानना, हन - मार डालना, प्राप्त करना, जाना)। **विश्वेभ्यो** (सर्वनाम)। **देवेभ्यः** (देव्, दिव् - चमकना, तेजस्वी होना, जानना)। **द्यावापृथिवीभ्याम्** (द्यु - आगे जाना, प्रकाश होना, पृथु - विस्तार होना, फेंकना, उड़ाना, भेजना, प्रेरणा करना)।।13।।

इति दशमः अध्यायः

ॐ

एकादशः अध्यायः

ईशोपनिषद्

ॐ स्तुति

सूक्त - 1

324. ईशा वास्यम् इदम् सर्वम्,
यत् किञ्च जगत्याम् जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा,
मा गृधः कस्य स्वित् धनम्।। 1।।

मन्त्रार्थ :– **इदम्** यह, **सर्वम्** सब, **यत्** जो, **किञ्च** कुछ भी, **जगत्याम्** जगत् में **जगत्** गतिशील (है), **ईशा** ईश्वर द्वारा, **वास्यम्** वास किया हुआ अर्थात् व्याप्त (है)। **तेन** उससे, उस कारण से **त्यक्तेन** त्यागपूर्वक **भुञ्जीथा** भोग करो, **कस्यस्वित्** किसी के, **धनम्** धन की **मा** मत, **गृधः** इच्छा करो।। 01।।

भावार्थ :- सब कुछ ईश्वरमय है। सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा का आवास है, परमात्मा से वासित, निवासित, सुवासित है। इस प्रकार हम सदैव परमात्मा के सानिध्य में हैं, उसके संरक्षण में हैं। जीवन निर्वाह के लिए भोग का पूर्णतः निषेध नहीं हो सकता है। अतः त्याग की भावना के साथ भोग करें, अर्थात् जीवन-निर्वाह के लिए साधन का उपयोग अवश्य करें, परन्तु किसी के धन को पा लेने की इच्छा करना उचित नहीं है, लोभ तो कदापि नहीं करें। धन का शाब्दिक अर्थ है उत्पन्न करना। अतः किसी के धन की इच्छा न करने का अर्थ है कि किसी अन्य के उत्पादन को न लेकर स्वयम् उत्पादन करें। अपने द्वारा उत्पादित संसाधनों से ही जीवन निर्वाह करना उचित है। अन्य का उत्पादन उपभोग करना अनैतिक और अकर्मण्यता भी है। यह हमारी अक्षमता का भी

प्रतीक है। सामाजिक जीवन परस्पर सहयोग से ही चलता है। हवन अर्थात् आदान-प्रदान करना आवश्यक है। सहयोग लें तो समाज के लिए स्वयम् भी सहयोग करें। इस प्रकार अन्य के धान अर्थात् उत्पादन का उपयोग करना स्वीकार्य हो जाता है। अनुचित साधनों से किसी के उत्पादन अथवा धन को लेना तथा उसका उपभोग करना अनुचित है।। 01।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- ईशा (ईश - ऐश्वर्य-अधिकार होना)। **वास्यम्** (वस् = रहना, निवास करना)। **इदम्** (सर्वनाम)। **सर्वम्** (सर्वनाम)। **यत्** (सर्वनाम)। **किञ्च** (सर्वनाम)। **जगत्याम्** (जग् - गति करना, लेना, घर्षण करना)। **जगत्** (जग् - गति करना, लेना, घर्षण करना)। **तेन** (सर्वनाम)। **त्यक्तेन** (त्यज- छोड़ना, त्यागना, देना, दान करना)। **भुञ्जीथा** (भुज - संरक्षण करना, पालन करना, खाना, भक्षण करना)। **मा** (अव्यय)। **गृधः** (गृध - चाहना)। **कस्यस्वित्** (सर्वनाम)। **धनम्** (धन- उत्पन्न करना, फलना, बौर लगना)।। 01।।

325. कुर्वन् एव इह कर्माणि,
जिजीविषेत् शतम् समाः।
एवम् त्वयि न अन्यथा अतो अस्ति,
न कर्म लिप्यते नरे।। 2 ।।।

मन्त्रार्थ :- इह यहां, **कर्माणि** कर्मो को, **कुर्वन्** करता हुआ, **एव** ही, **शतम्** सौ, **समाः** सम विभाग (सम्वत्सर), **जिजीविषेत्** जीने की इच्छा करें, **एवम्** इस तरह, **त्वयि** तुम में, **अन्यथा** अन्य प्रकार से **न** नहीं **अस्ति** है, **अतो** इससे, **नरे** नर में **कर्म** कर्म, **न** नहीं, **लिप्यते** लिप्त होता है।

भावार्थ :- दीर्घ आयु की कामना करना स्वाभाविक है, परन्तु जीवन कर्म करते हुए ही सार्थक है, निष्क्रिय जीवन व्यर्थ है। ईश्वर को सर्वव्यापी मानकर कर्म करते रहें तो कर्म हमारे जीवन में, चेतना में लिप्त नहीं होता है, इसका भाव है कि हम कर्म के फल के प्रभाव से मुक्त रहते हैं।

विशेष :- समाः का अर्थ सम्वत्सर या वर्ष माना गया है। सम को सर्वनाम

मानने पर इसका अर्थ सब होता है। सम् धातु का अर्थ समान विभाग करना, समान होना, घबराने-हिचकिचाने से रोकना होता है। जीवन-काल को समान विभागों में बाँटा गया और उसे सम कहा गया तो उचित ही है। इसी को सम्वत्सर, शरद् या वर्ष भी कहा गया है। नरे का अर्थ है नर में। नर का अर्थ है ले जाने वाला। जीवन-चेतना को ले जाने वाला, शरीर को चेतन शक्ति से ले जाने वाला नर है। यहाँ नर का अर्थ सभी जीवों से है, केवल मनुष्य ही नहीं। अधिक व्यापक अर्थ में तो सूर्य आदि जीवन का परोक्ष उन्नयन करने वाले भी नर माने जा सकते हैं। इसी अर्थ में इनको वसु अर्थात् वसाने वाले भी कहा जाता है। वेद में ऐसे व्यापक अर्थ में प्रयोग वाले शब्दों में जीव-निर्जीव का भी भेद समाप्त हो जाता है। उनमें स्त्रीलिंग-पुल्लिंग के भेद की कल्पना तो नितान्त अस्वीकार्य है। वेद में पुत्र, सुत, मित्र आदि शब्द भी इसी प्रकार से लिंग-भेद से परे हैं। प्राचीन आचार्य इसे व्याकरण में लिंग-व्यत्यय कहते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- कुर्वन् (कृ = करना)। **एव** (अव्यय)। **इह** (सर्वनाम)। **कर्माणि** (कृ - करना)। **जिजीविषेत्** (जीव् = प्राण धारण करना, जीवन धारण करना)। **शतम्** (शत - सौ)। **समाः** (सम - सब, सम् - समान विभाग करना, समान होना, घबराने-हिचकिचाने से रोकना)। **एवम्** (अव्यय)। **त्वयि** (सर्वनाम)। **न** (अव्यय)। **अन्यथा** (सर्वनाम)। **अतो** (सर्वनाम)। **अस्ति** (अस् - होना)। **कर्म** (कृ = करना)। **लिप्यते** (लिप् - लिप्त होना, लेपन करना, बढ़ाना, अधिक करना)। **नरे** (नृ - ले जाना)।। 02।।

326. असुर्या नाम ते लोका,
अन्धेन तमसा वृताः।
तान् ते प्रेत्य अपि गच्छन्ति,
ये के च आत्महनो जनाः।। 3 ।।

मन्त्रार्थ :- असुर्या ऐश्वर्य, उत्पन्न करने से हीन, रोगी **नाम** नाम वाले **ते** वे **लोका** लोक, दृश्य **अन्धेन** अन्ध **तमसा** तमस् से **वृताः** आवृत हैं। **च** और **ये** जो **के** कौन **आत्महनो** आत्महनन करने वाले **जनाः** जन, लोग (हैं), **ते** वे **प्रेत्य** भागकर **अपि** भी **तान्** उन (लोकों) को **गच्छन्ति** जाते हैं, प्राप्त होते हैं।03।।

भावार्थ :- असुर्या का अर्थ है ऐश्वर्य से हीन तथा उत्पन्न न करने वाला। यहाँ पर भौतिक संसाधनों को ऐश्वर्य नहीं माना गया है। कुछ उत्पन्न करना, सृजन करना जिनके लिए सम्भव नहीं है, वे असुर्य हैं, रोगी हैं। रोगी होने का अर्थ केवल शारीरिक रोग ही नहीं है। वे शारीरिक रूप से बलवान् भी हो सकते हैं, फिर भी वे रोगी हैं। भावनात्मक रूप से, वैचारिक रूप से, तथा आध्यात्मिक रूप से वे रोगी होते हैं। वे इन रोगों से ग्रस्त होकर स्वयम् भी अशान्त रहते हैं तथा सम्पर्क में आने वाले लोगों को भी तनावग्रस्त कर देते हैं। जो आत्म तत्व का हनन करने वाले अर्थात् अपना ही हनन करने वाले हैं, ऐसे लोगों के लिए तो संसार असुर्या ही है। इस स्थिति से बचने के लिए वे कितना भी भागें, कितने भी उपाय करें, उनको रहना इसी स्थिति में है। हम भागकर भौतिक स्थितियाँ तो बदल सकते हैं परन्तु यदि मानसिक और भावनात्मक स्थिति नहीं बदलती है तो भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर भी वास्तविक शान्ति तो नहीं ही मिल सकती है।। 03।।

विशेष :- आत्महनो का अर्थ है आत्मा का हनन करने वाले। परम तत्व के रूप में आत्मा का हनन करना तो सम्भव ही नहीं है। वह तो नित्य अविनाशी तत्व है। परन्तु लोक व्यवहार में आत्महनन या आत्महत्या शब्द बहुप्रचलित है। विद्वानों का मानना है कि यहाँ आत्महनन शब्द इसी अर्थ में आया है। इसका आशय है आत्मा को नकारना, अस्वीकार करना। अविनाशी आत्मा को न जानना, उसको अनुभव न करना ही व्यावहारिक रूप से उसका हनन करना है। आत्मा अर्थात् सर्वव्यापी चिरन्तन सदा-सर्वदा विद्यमान रहने वाले चेतन तत्व को न जानकर जड़ शरीर तथा संसार को ही परम सत्य मानना ही आत्म हनन करना है। वेद में आत्मा तथा परमात्मा का अभेद है। परमात्मा के अर्थ में आत्मा शब्द का ही प्रयोग किया गया है। परमात्मा सर्वव्यापी है, उसका जितना अंश जीव के शरीर में व्याप्त होकर उसे चेतन रखता है, वही लौकिक अर्थ में आत्मा कहा जाता है। तत्वतः वह सर्वव्यापी आत्मा या लौकिक दृष्टि से परमात्मा से अभिन्न है। आत्मा को आत् या अत् धातु से निष्पन्न माना जाता है। आत् धातु का अर्थ होना, चिरन्तन होना, नित्य होना है, तथा अत् धातु का अर्थ सतत

गमन करना, निरन्तर चलना है। गति अर्थ वाली धातुओं में ज्ञान, गमन, प्राप्ति अर्थ समाहित होते हैं। अतः आत्मा का अर्थ सर्वत्र प्राप्त तथा सर्वज्ञ भी होता है।।03।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- असुर्य्या (अ - नहीं, सु - ऐश्वर्य होना, उत्पन्न होना, असु-असू - रोगी होना, अस् - फेंकना, बिखेरना, उड़ाना)। **नाम** (अव्यय)। **ते** (सर्वनाम)। **लोका** (लोक् = देखना, प्रकाशित होना, बोलना)। **अन्धेन** (अन्ध - अन्धा होना, दिखाई न देना, आँखें मूंदना)। **तमसा** (तम - इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना, अन्धकार होना)। **वृताः** (वृत - वर्तन करना, वर्ताव करना, रहना, होना, हिंसा करना, चमकना, बोलना, वरण करना, आवरण करना)। **तान्** (सर्वनाम)। **ते** (सर्वनाम)। **प्रेत्य** (प्र - प्रकृष्ट, इ - जाना)। **अपि** (अव्यय)। **गच्छन्ति** (गम्-गच्छ् - जाना, जानना, पाना)। **ये** (सर्वनाम)। **के** (सर्वनाम)। **च** (अव्यय)। **आत्महनो** (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, अत् = सतत गमन करना, निरन्तर चलना, हन् - मारना, हिंसा करना)। **जनाः** (जन् - उत्पन्न होना, प्रकट होना)।। 03।।

327. अनेजत् एकम् मनसो जवीयो,
न एनत् देवा आप्नुवन् पूर्वम् अर्षत्।
तत् धावतो अन्यान् अत्येति तिष्ठत्,
तस्मिन् अपो मातरिश्वा दधाति।। 04।।।

मन्त्रार्थ :- अनेजत् कम्पन रहित, निर्भय **एकम्** एक (एक ही, अद्वितीय) **मनसो** मन से **जवीयो** गतिशील, वेगवान् (है)। **एनत्** इस **पूर्वम्** पूर्व **अर्षत्** अर्षत्, अन्तर्यामी को **देवा** देवगण **न** नहीं **आप्नुवन्** पा सके। **तत्** वह **धावतो** दौड़ते हुए **अन्यान्** अन्यों का **अत्येति** अतिक्रमण कर **तिष्ठत्** स्थित है। **तस्मिन्** उसमें **अपो** अपः, पालन करने वाला **मातरिश्वा** मातरि-श्वा, मातृ-सेवी **दधाति** धारण करता है।। 04।।

भावार्थ :- परमात्मा एक ही है। वह निर्भय है, कम्पन रहित है, मन से भी अधिक वेगवान् है। कोई कितना भी दौड़े-भागे, उसकी सीमा का ज्ञान नहीं

कर सकता है। वह पूर्व ही सर्वत्र उपस्थित है, अतः कोई जहाँ तक भी विचार कर सकता है, वहाँ और उससे भी आगे परमात्मा वर्तमान होता है।। 04 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अनेजत् (अन् - नहीं, एज् - चलना, कम्पन करना, प्रकाशित होना)। **एकम्** (संख्या)। **मनसो** (मन - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना)। **जवीयो** (जु - जाना, शीघ्रता से चलना, भागना)। **न** (अव्यय)। **एतत्** (सर्वनाम)। **देवा** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, स्तुति करना, प्रीति करना)। **आप्नुवन्** (आप् - जाना, पाना, व्याप्त होना)। **पूर्वम्** (सर्वनाम)। **अर्षत्** (ऋष् - जाना, जानना, पहुँचना, पाना, सूक्ष्मता से भीतर देखना, अन्तर्गमन करना)। **तत्** (सर्वनाम)। **धावतो** (धाव् - जाना, दौड़ना, भागना, स्वच्छ करना, स्वच्छ होना)। **अन्यान्** (अन्य = कोई और, इतर)। **अत्येति** (अति = अधिक, अतिक्रम, इ - जाना)। **तिष्ठत्** (तिष्ठ् = ठहरना)। **तस्मिन्** (सर्वनाम)। **अपो** (अप = जाना, जानना, पाना, पालन करना)। **मातरिश्वा** (मा - मान करना, मापना, तौलना, तुलना करना, श्वि - जाना, वृद्धि होना, श्वस - श्वास लेना)। **दधाति** (धा-दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)।। 04 ।।

328. तत् एजति तत् न एजति,
तत् दूरे तत् उ अन्तिके।
तत् अन्तः अस्य सर्वस्य,
तत् उ सर्वस्य अस्य बाह्यतः ।। 05 ।।।

मन्त्रार्थ :- तत् वह **एजति** चलता है, प्रकाशित होता है, **तत्** वह **न** नहीं **एजति** चलता है, प्रकाशित होता है। **तत्** वह **दूरे** दूर है, **तत्** वह **उ** ही **अन्तिके** निकट है। **तत्** वह **अस्य** इस **सर्वस्य** सबके **अन्तः** भीतर (है), **तत्** वह **उ** ही **अस्य** इस **सर्वस्य** सबके **बाह्यतः** बाहर (है)।

भावार्थ :- परमात्मा चेतन स्वरूप होने से सक्रिय गतिशील है, सम्पूर्ण सृष्टि उसी की शक्ति से संचालित है, अतः वह गतिशील है। वह प्रकाशस्वरूप है, प्रकाशित होता है। वह सदा सर्वत्र व्याप्त है, उसे कहीं आने-जाने की

आवश्यकता नहीं है, अतः वह नहीं चलता है, ऐसा कहते हैं। वह स्वयम् प्रकाशस्वरूप है, अतः उसे कभी प्रकाशित होने की आवश्यकता ही नहीं है, अतः कहते हैं कि वह प्रकाशित नहीं होता है। वह तो सदा-सर्वदा स्वयम् प्रकाशमान है। सर्वव्यापी होने से वह हमारे अति निकट है, परन्तु वह असीम, अनादि, अनन्त होने से पूर्णतः जानने, समझने, पाने की दृष्टि से बहुत दूर भी है। वह समर्पित भक्तों के लिए तो उनके निकट ही रहता है, परन्तु अन्य लोगों के लिए तो दूर ही है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- तत् (सर्वनाम)। **एजति** (एज् - चलना, कम्पन करना, प्रकाशित होना, चमकना, झलकना)। **न** (अव्यय)। **दूरे** (अव्यय)। **उ** (अव्यय)। **अन्तिके** (अव्यय)। **अन्तः** (उपसर्ग, सर्वनाम)। **अस्य** (सर्वनाम)। **सर्वस्य** (सर्वनाम)। **बाह्यतः** (बह् - बाहर होना, परे हो जाना)।5 ।।

सूक्त - 2

329. यः तु सर्वाणि भूतानि, आत्मनि एव अनुपश्यति।
सर्व भूतेषु च आत्मानम्, ततः न वि चिकित्सति।06 ।।

मन्त्रार्थ :- यः जो **तु** तो **सर्वाणि** सभी **भूतानि** भूतों (प्राणियों, तत्वों) को **आत्मनि** आत्मा में **एव** ही **अनुपश्यति** देखता है, **च** और **सर्व** सभी **भूतेषु** भूतों में **आत्मानम्** आत्मा को (**अनुपश्यति** देखता है), **ततः** उससे **न** नहीं **वि चिकित्सति** संशयग्रस्त होता है।।6 ।।

भावार्थ :- सबमें आत्मा तथा आत्मा में सब कुछ देखने की व्यापक दृष्टि ही अध्यात्म का मूल तत्व है। यही भावना सांसारिकता से ऊपर उठाकर हमें सभी भ्रम संशय से बचाकर वास्तविक शान्ति प्रदान कर सकती है।।6 ।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यः (सर्वनाम)। तु (अव्यय)। सर्वाणि (सर्वनाम)। भूतानि (भू = होना)। आत्मनि (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। एव (अव्यय)। अनु (उपसर्ग)। पश्यति (पश् = देखना)। सर्व (सर्वनाम)। भूतेषु (भू - होना)। च (अव्यय)। आत्मानम् (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य

होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। ततः (सर्वनाम)। न (अव्यय)। विचिकित्सति (वि = विशेष, विपरीत, चिकित् - जानना, वि-चिकित् - संशय होना, भ्रम होना)।6॥

330. यस्मिन् सर्वाणि भूतानि,
आत्म एव अभूत् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक,
एकत्वम् अनुपश्यतः॥ 07॥

मन्त्रार्थ :- विजानतः विशेष जानने वाले की **यस्मिन्** जिस (भावना) में **सर्वाणि** सभी **भूतानि** भूत (हुए, अस्तित्व में आये, प्राणी) **आत्म** आत्मा **एव** ही **अभूत्** हो गये हैं, **एकत्वम्** एकत्व को **अनुपश्यतः** देखने वाले को **तत्र** वहाँ **को** क्या **मोहः** मोह, **कः** क्या **शोक** शोक।7॥

भावार्थ :- सम्पूर्ण सृष्टि में एकमात्र आत्मतत्व ही व्याप्त है, जो इस को अनुभव कर लेता है, उसे कोई मोह या शोक नहीं हो सकता है।7॥

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यस्मिन् (सर्वनाम)। **सर्वाणि** (सर्वनाम)। **भूतानि** (भू = होना)। **आत्म** (आत् - होना, चिरन्तन होना, नित्य होना, चेतन होना, अत् - सतत गमन करना, निरन्तर चलना, सतत चलना, जानना, पाना)। **एव** (अव्यय)। **अभूत्** (अ + भूत्, अ - नहीं, अ - भूतकालिक क्रिया उपसर्ग, भू = होना, प्राप्त होना)। **वि** (उपसर्ग)। **जानतः** (ज्ञा-जान = जानना)। **तत्र** (सर्वनाम)। **को** (सर्वनाम)। **मोहः** (मुह - बुद्धिभ्रष्ट होना)। **शोकः** (शुच - दुःख मानना, शोक करना)। **एकत्वम्** (एक = एक)। **अनुपश्यतः** (अनु - पीछे, दृश्-पश् = देखना)।07॥

331. स परि अगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम्,
अस्नाविरम् शुद्धम् अपाप-विद्धम्।
कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः,
याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधात्,

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ 08॥

मन्त्रार्थ :- स वह **परि** सभी तरफ **अगात्** प्राप्त, विद्यमान है, **शुक्रम्** पवित्र, **अकायम्** अज्ञेय, जानने वाला, काया रहित, **अव्रणम्** घाव आदि से रहित, **अस्नाविरम्** स्नायु रहित, **शुद्धम्** शुद्ध, **अपाप-विद्धम्** पाप से अविद्ध, **कविः** कवि, **मनीषी** मनीषी, **परिभूः** परिभू, सब ओर होने वाला **स्वयम्भूः** स्वयम्भू, स्वयम् होने वाला **याथातथ्यतो** यथातथ्य **अर्थान्** अर्थों को **शाश्वतीभ्यः** शाश्वत **समाभ्यः** सम, विभाग के लिए **व्यदधात्** धारण कर लिया।

भावार्थ :- परमात्मा के स्वरूप का सुन्दर वर्णन किया गया है। वह **अकायम्** अर्थात् काया रहित है। वह अज्ञेय है, परन्तु वह स्वयम् तो सब कुछ जानने वाला है। वह हमारे लिए अज्ञेय है, अर्थात् हम उसे पूर्णतः नहीं जान सकते हैं। वह हमारी जानने की शक्ति की सीमा से परे है, परन्तु साधना-उपासना से हम उसे उसकी कृपा से जान भी सकते हैं। उपासक तो आत्म विश्वास से कहता है कि वेद अहम् पुरुषम् महान्तम्, अर्थात् मैं उस महान् पुरुष को जानता हूँ। साधना-उपासना से उसको जानकर ही तो उसके स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है। अर्थ अथवा इच्छाएं यथातथ्य होन चाहिए। वास्तविकता तथा व्यवहारिकता का ध्यान रखकर उचित इच्छाएं करें तो उचित है तथा वे पूर्ण भी हो सकती हैं, अन्यथा असीमित तथा काल्पनिक इच्छाएं चिन्ता तथा तनाव का कारण बन सकती हैं। शाश्वतीभ्यः का अर्थ है शाश्वतों के लिए। शाश्वत् अव्यय शब्द का अर्थ सदा, सर्वदा, सर्वकालिक होता है। इसके साथ ही श्वि धातु का अर्थ जाना, जानना, पाना, वृद्धि होना तथा श्वस धातु का अर्थ श्वास लेना है। शाश्वत का अर्थ सर्वकालिक, नित्य, अनादि-अनन्त काल तक रहने वाला माना जाता है। गति, ज्ञान, प्राप्ति के साथ वृद्धि, श्वसन अर्थात् प्राण जैसे गुणों को एकत्र कर आत्मा - परमात्मा का भावार्थ ले सकते हैं।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- स (सर्वनाम)। **परि** (उपसर्ग)। **अगात्** (अग - जाना, जानना, पाना)। **शुक्रम्** (शुक् - जाना, जानना, पाना, शुच् = शुद्ध होना, पवित्र होना)। **अकायम्** (अक् - जाना, जानना पाना, कि-कय - जानना, समझना)। **अव्रणम्** (अ - नहीं, व्रण - क्षत करना, घाव करना)। **अस्नाविरम्**

(अ - नहीं, स्नु - झरना, टपकना, बहना, स्ना = स्नान करना, शुद्ध होना)। **शुद्धम्** (शुध् - शुद्ध होना, पवित्र होना)। **अपापविद्धम्** (अ - नहीं, पाप् = पाप् होना, पाप करना, विध्-विद्ध - विधान करना, वेधना, वेध करना)। **कविः** (कु - शब्द करना, कविता करना)। **मनीषी** (मन् - जानना, समझना, मान्य करना, स्वीकार करना, विचार करना, मानना)। **परिभूः** (परि - सब ओर, भू- होना)। **स्वयम्भूः** (स्वयम् - अपने आप, भू- होना)। **याथातथ्यतो** (यथा - जैसे, जिस प्रकार, तथा - वैसे, उसी प्रकार)। **अर्थान्** (अर्थ - मांगना, चाहना)। **व्यदथात्** (वि - विशेष, दध - धारण करना, पालन करना, देना, अर्पण करना)। **शाश्वतीभ्यः** (शश्व् - नित्य होना, सदैव रहना, शश्वत होना, शाश्वत होना, शास = शासन करना, आशा करना, प्रभू होना, श्वि - जाना, वृद्धि होना, श्वस - श्वास लेना)। **समाभ्यः** (सम = समान होना, सम विभाग करना, न घबराना, परिणाम होना)।।8।।

सूक्त - 3

332. अन्धम् तमः प्र विशन्ति,
ये असम्भूतिम् उपासते।
ततो भूय इव ते तमो,
य उ सम्भूत्याम् रताः ।। 09 ।।।

मन्त्रार्थ :- ये जो **असम्भूतिम्** असम्भूति की **उपासते** उपासना करते हैं, **अन्धम्** अन्धकार **तमः** इच्छा, दुःख, अन्धकार में **प्र विशन्ति** प्रविष्ट होते हैं। **य** जो **सम्भूत्याम्** सम्भूति में **उ** ही **रताः** रमते हैं, रत रहते हैं, **ते** वे **ततो** उससे भी (घोर) **तमो** इच्छा, दुःख, अन्धकार में (प्रविष्ट होते हैं)।

भावार्थ :- सम्भूति का अर्थ है सम्यक् रूप से होने का भाव तथा असम्भूति का अर्थ है सम्यक् रूप से न होना। जो सम्यक् रूप से नहीं हुआ, उसकी उपासना से अन्धकार ही मिल सकता है, यह तो स्वाभाविक है। जो सम्यक् रूप से हुआ है, उसमें रत रहने का परिणाम भी ऐसा ही होता है, यह समझना महत्वपूर्ण है। सब कुछ सम्यक् रूप, अर्थात् आदर्श स्वरूप में हो ही

जाये, यह व्यावहारिक रूप से बहुधा सम्भव नहीं हो पाता है। अतः इस प्रकार आदर्श पूर्णतावादी दृष्टिकोण से प्रत्येक कार्य करने का प्रयास भी हमें समस्याग्रस्त बना सकता है, जीवन से सुख-शान्ति का प्रकाश छीन कर तनाव के अन्धकार में ले जाता है। जीवन में सन्तुलन आवश्यक है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अन्धम् (अन्ध - अन्धा होना, दिखाई न देना, आँखें मूंदना)। **तमः** (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। **प्रविशन्ति** (प्र - प्रकृष्ट, विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)। **ये** (सर्वनाम)। **असम्भूतिम्** (भू-होना)। **उपासते** (उप - समीप, निकट, आस् - बैठना)। **ततो** (सर्वनाम)। **भूय** (अव्यय)। **इव** (अव्यय)। **ते** (सर्वनाम)। **तमो** (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। **य** (सर्वनाम)। **उ** (अव्यय)। **सम्भूत्याम्** (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **रताः** (रम - रमना, प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना)।।9।।

333. अन्यत् एव आहुः सम्भवात्,
अन्यत् आहुः असम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणाम्,
ये नः तत् वि चचक्षिरे ।। 10 ।।

मन्त्रार्थ :- सम्भवात् सम्-भव अर्थात् सम्यक् रूप से होने से **अन्यत्** अन्य **एव** ही **आहुः** कहा गया है, **असम्भवात्** अ-सम्-भव अर्थात् सम्यक् रूप से न होने से **अन्यत्** अन्य **आहुः** कहा गया है। **इति** ऐसा **धीराणाम्** धीरों से **शुश्रुम** सुना है, **ये** जो **नः** हमारे लिए **तत्** उसको **वि चचक्षिरे** देखते है, कहते हैं।।10।।

भावार्थ :- सब कुछ सम्यक् रूप से हो, अथवा सब कुछ सम्यक् रूप से न हो, स्वाभाविक रूप से दोनो के परिणाम भिन्न होते हैं। अनुभवी लोग हमको बताते हैं कि क्या करना उचित होगा।।10।।

विशेष :- कहने के अर्थ में आह, प्राह जैसे शब्दों का प्रयोग बहुधा होता

है। इनको कहने के अर्थ वाली कथ्-वद् धातुओं का ही विशेष प्रायोगिक रूप माना जाता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अन्यत् (सर्वनाम)। **एव** (अव्यय)। **आहुः** (ह्वे - पुकारना, शब्द करना)। **सम्भवात्** (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **असम्भवात्** (अ - नहीं, सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **इति** (सर्वनाम)। **शुश्रुम** (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **धीराणाम्** (धी = धारण करना, धैर्य होना)। **ये** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **तत्** (सर्वनाम)। **वि** (उपसर्ग)। **चचक्षिरे** (चक्ष - साफ बोलना, कहना, देखना)।।10।।

334. सम्भूतिम् च विनाशम् च,
यः तत् वेद उभयम् सह।
विनाशेन मृत्युम् तीर्त्वा,
सम्भूत्या अमृतम् अश्नुते।। 11 ।।।

मन्त्रार्थ - यः जो **सम्भूतिम्** सम्यक् रूप से उत्पन्न **च** और **विनाशम्** विनाश **उभयम्** दोनों को **सह** साथ-साथ **वेद** जानता है, **विनाशेन** विनाश से **मृत्युम्** मृत्यु को **तीर्त्वा** पार करके **सम्भूत्या** सम्भूति से **अमृतम्** अमृत को **अश्नुते** प्राप्त करता है।

भावार्थ :- सम्भूति अर्थात् सम्यक् रूप से जो होता है, वह तो श्रेष्ठ है ही, उसे तो जानना ही है। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि विनाश को भी जाना-समझा जाये। संसार गुण-दोषमय है, सभी पक्षों को जान कर ही जीवन सुचारु रूप से चल सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- सम्भूतिम् (सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **च** (अव्यय)। **विनाशम्** (वि - विशेष, नश - खो जाना, नष्ट होना, दिखाई नहीं देना)। **यः** (सर्वनाम)। **तत्** (सर्वनाम)। **वेद** (विद्- जानना)। **उभयम्** (सर्वनाम)। **सह** (सर्वनाम)। **विनाशेन** (वि - विशेष, नश - खो जाना, नष्ट होना, दिखाई नहीं देना)। **मृत्युम्** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **तीर्त्वा** (तृ - तैरना, पार जाना, तीर - पूर्ण करना, समाप्त करना, पार लगाना)। **सम्भूत्या**

(सम् - सम्यक्, भू - होना, रहना, उत्पन्न होना)। **अमृतम्** (अ - नहीं, मृ = मरना)। **अश्नुते** (अश् = भोजन करना, व्याप्त होना)।।11।।

सूक्त - 4

335. अन्धम् तमः प्र विशन्ति,
ये अविद्याम् उपासते।
ततो भूय इव ते तमो,
य उ विद्यायाम् रताः।। 12 ।।।

मन्त्रार्थ :- जो **अविद्याम्** अविद्या की **उपासते** उपासना करते हैं, **अन्धम्** अन्धकार **तमः** इच्छा, दुःख, अन्धकार में **प्र विशन्ति** प्रविष्ट होते हैं। **ये** जो **विद्यायाम्** विद्या में **उ** ही **रताः** रत रहते हैं, **ते** वे **ततो** उससे **भूय** भी (घोर) **तमो** अन्धकार में (प्रविष्ट होते हैं)।।12।।

भावार्थ :- विद्या का अर्थ है विद्यमान, जानने योग्य तथा अविद्या का अर्थ है न जानने योग्य, अविद्यमान। वास्तव में जानने योग्य तो परम चेतन सत्ता परमात्मा ही है। परम लक्ष्य वास्तविक विद्या तो उसे जानना ही है। उसकी उपासना से अन्धकार मिल सकता है, यह बात समझने योग्य है। संसार में जीवन निर्वाह के लिए अध्यात्म के साथ ही सांसारिक ज्ञान भी महत्वपूर्ण है। यदि संसार की पूर्णतः उपेक्षा कर दें तथा परमात्मा की उपासना में ही लीन हो जाना चाहें तो यह भी व्यावहारिक रूप से सम्भव नहीं हो सकेगा। अतः जीवन यापन कठिन हो जायेगा, अन्धकार अनुभव होने लगेगा। इसी तरह केवल सांसारिक लाभ-हानि में रत रहने से भी जीवन में वास्तविक शान्ति नहीं मिल सकती है। जीवन में सन्तुलन आवश्यक है।।12।।

विशेष :- विद्या और अविद्या शब्द वेद में विशेष अर्थ रखते हैं। वि तथा अ उपसर्ग हैं। वि का अर्थ विशेष के साथ ही विपरीत भी होता है। अ का अर्थ नहीं होता है। द्या शब्द व्यापक अर्थ रखता है। वेद में द्यु शब्द का भी बहुत प्रयोग मिलता है। द्यु धातु का अर्थ अभिगमन करना, सम्मुख जाना, आगे जाना है। द्युत् धातु का अर्थ प्रकाश करना है। द्यु शब्द में दोनो धातुओं के अर्थ माने जाते

हैं। द्या-द्यै धातु का अर्थ तिरस्कार करना है। विद्या शब्द का अर्थ विशेष तिरस्कार अथवा तिरस्कार से विलग होना भी हो सकता है। व्यापक अर्थ में विद्या शब्द में विद् - जानना, रहना, विद्यमान होना के साथ ही द्यु, द्युत्, द्या-द्यै धातुओं के अर्थ भी समाहित हैं।।12।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अन्धम् (अन्ध - अन्धा होना, दिखाई न देना, आँखें मूंदना)। **तमः** (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। **प्रविशन्ति** (प्र - प्रकृष्ट, विश् = प्रवेश करना, भीतर जाना)। **ये** (सर्वनाम)। **विद्याम्** (विद् - विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **उपासते** (उप - समीप, निकट, आस् - बैठना)। **ततो** (सर्वनाम)। **भूय** (अव्यय)। **इव** (अव्यय)। **ते** (सर्वनाम)। **तमो** (तम् - अन्धकार होना, इच्छा करना, चाहना, मानसिक या शारीरिक व्यथा से दुःखित होना)। **य** (सर्वनाम)। **उ** (अव्यय)। **विद्यायाम्** (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **रताः** (रम् - रमना, रत् = प्रिय होना, मूल्यवान् होना, प्रसन्न करना)।।12।।

336. अन्यत् एव आहुः विद्यायाः,
अन्यत् आहुः अविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणाम्,
ये नः तत् वि चचक्षिरे।। 13।।

मन्त्रार्थ :- विद्यायाः विद्या का **अन्यत्** अन्य **एव** ही **आहुः** कहा गया है, **अविद्यायाः** अविद्या का **अन्यत्** अन्य **आहुः** कहा गया है। **इति** ऐसा **धीराणाम्** धीर जनों से **शुश्रुम** सुना है**, ये** जो **नः** हमारे लिए **तत्** उसको **चचक्षिरे** देखते हैं।।13।।

भावार्थ :- विद्या हो, अथवा अविद्या हो, स्वाभाविक रूप से दोनो के परिणाम भिन्न होते हैं। अनुभवी लोग हमको बताते हैं कि क्या करना उचित होगा।।13।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अन्यत् (सर्वनाम)। **एव** (अव्यय)। **आहुः** (ह्वे - पुकारना, शब्द करना)। **विद्याया** (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना,

जानना, समझना)। **अविद्यायाः** (अ - नहीं, विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **इति** (सर्वनाम)। **शुश्रुम** (श्रु - सुनना, श्रवण करना, जाना)। **धीराणाम्** (धी = धारण करना)। **ये** (सर्वनाम)। **नः** (सर्वनाम)। **तत्** (सर्वनाम)। **वि** (उपसर्ग)। **चचक्षिरे** (चक्षि - साफ बोलना, कहना, देखना)।।13।।

337. विद्याम् च अविद्याम् च,
यः तत् वेद उभयम् सह।
अविद्यया मृत्युम् तीर्त्वा,
विद्यया अमृतम् अश्नुते।। 14।।

मन्त्रार्थ :- यः जो **विद्याम्** विद्या को **च** और **अविद्याम्** अविद्या को **उभयम्** दोनों को **सह** साथ-साथ **वेद** जानता है, **अविद्यया** अविद्या से **मृत्युम्** मृत्यु को **तीर्त्वा** पार करके **विद्यया** विद्या से **अमृतम्** अमृत को **अश्नुते** भोग करता है, प्राप्त करता है।

भावार्थ :- सम्भूति तथा असम्भूति अथवा विनाश के समान ही विद्या तथा अविद्या को भी एकसाथ जाना-समझा जाये, यह आवश्यक है। सभी पक्षों को जान कर ही जीवन सुचारु रूप से चल सकता है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- विद्याम् (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना) **च** (अव्यय)। **अविद्याम्** (अ - नहीं, विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **यः** (सर्वनाम)। **तत्** (सर्वनाम)। **वेद** (विद्-जानना)। **उभयम्** (सर्वनाम)। **सह** (सर्वनाम)। **अविद्यया** (अ - नहीं, विद - जीना, विद्यमान होना, रहना, जानना, समझना)। **मृत्युम्** (मृ = मरना, देहत्याग करना)। **तीर्त्वा** (तृ - तैरना, पार करना, तीर - पूर्ण करना, पार लगाना)। **विद्यया** (विद - जीना, विद्यमान होना, रहना)। **अमृतम्** (अ - नहीं, मृ - मरना)। **अश्नुते** (अश् - भोजन करना, व्याप्त होना)।।14।।

सूक्त - 5

338. वायुः अनिलम् अमृतम्,
अथ इदम् भस्मान्तम् शरीरम्।

ओ3म् क्रतो स्मर, क्लिबे स्मर, कृतम् स्मर ॥ 15 ॥

मन्त्रार्थ :- वायुः गतिशील सृष्टिकर्ता (वा - गति करना, बहना, वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना) **अनिलम्** प्राणवान्, प्राणदाता, स्पन्दनशील चेतन (अन् - प्राण होना, चेतन होना, स्पन्दन होना) **अमृतम्** अविनाशी (है)। **अथ** अब **इदम्** यह **शरीरम्** शरीर **भस्मान्तम्** भस्म (भोजन) से चेतन रहने वाला (है)। **क्रतो** हे कर्मशील। **ओ3म्** ओम् का **स्मर** स्मरण करो, **क्लिबे** कोमल **स्मर** स्मरण करो। **कृतम्** कृतित्व का **स्मर** स्मरण करो।

भावार्थ :- परमात्मा ओम् ऋत को उत्पन्न कर उसके अनुसार सृष्टि की गति तथा रचना का नियामक है। गति, स्पन्दन ओम् में ही निहित है। वही अमृत अविनाशी है। गति, सृजन तथा स्पन्दन परमात्मा में निहित हैं, अतः अमृत - अविनाशी हैं। अब दूसरी ओर विचार करो, यह शरीर अन्त में भस्म हो जाने वाला है। जीवों का शरीर हो, प्रकृति का शरीर पर्वत आदि विराट सृष्टि हो, उसका अन्त होना ही है। अतः हे प्राणी ओम् का स्मरण करो, उस ओम् की कोमलता का स्मरण करो तथा अपनी कोमलता का स्मरण करो। परमात्मा की कोमलता प्राप्त करने के लिए उपासक में भी कोमलता की भावना होनी चाहिए। ओम् की कृति विराट सृष्टि का स्मरण करो तथा अपनी कृति का स्मरण करो। ओम् के स्वरूप का स्मरण रहे, उसकी करूणा, कोमलता, सामर्थ्य तथा अपने कार्य-स्वभाव, सामर्थ्य का स्मरण रहे, ओम् के तथा अपने कृतित्व का स्मरण रहे तो श्रेष्ठ विचार रहेंगे, जीवन उत्कृष्ट बना रहेगा, जीवन सफल होगा।

विशेष :- शरीर शब्द शृ - फटना, हिंसा करना, मारना तथा श्रि - सेवा करना, आश्रय करना धातुओं से निष्पन्न माना जाता है। इसका अर्थ है कि शरीर नाशवान् है, परन्तु यही आश्रय भी है, सेवा का साधन भी है। इसे अन्त में भस्म हो जाना है। भस् धातु का अर्थ खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना है। शरीर की परिणति तो इसी रूप में होनी है। इसे रोग, दोष, निन्दा आदि खा जाते हैं। शरीर को बने रहने के लिए भी खाना चाहिए। जीवन का अन्त होने पर यह कुछ अन्य जीवों का भोजन बनता है या अग्नि, मिट्टी आदि प्रकृति के तत्वों का।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- वायुः (वा - गति करना, बहना, वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना)। **अनिलम्** (अन् - प्राण होना, चेतन होना, स्पन्दन होना)। **अमृतम्** (मृ = मरना)। **अथ** (अव्यय)। **इदम्** (सर्वनाम)। **भस्मान्तम्** (भस - खाना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना, अन् - चेतन होना, जीवन होना, प्राण होना, समर्थ होना, जाना, जानना, पाना)। **शरीरम्** (शृ - सुनना, शृ - फटना, हिंसा करना, मारना, श्रि - सेवा करना, आश्रय करना)। **ओ3म्** (अव्यय)। **क्रतो** (कृ = करना)। **स्मर** (स्मृ-स्मरण करना)। **क्लिबे** (क्लीब - कोमल होना)। **स्मर** (स्मृ-स्मरण करना)। **कृतम्** (कृ - करना)। **स्मर** (स्मृ-स्मरण करना)।।15।।

339. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्,
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनो,
भूयिष्ठाम् ते नम उक्तिम् विधेम ॥ 16 ॥

मन्त्रार्थ :- अग्ने हे अग्नि (परमात्मन्), **अस्मान्** हमें **सुपथा** अच्छे मार्ग पर **नय** ले चलो। **विश्वानि** सभी **देव** दिव्य शक्तियाँ, **वयुनानि** रचनाशील **विद्वान्** विद्वान् **एनो** यह **जुहुराणम्** आदान- प्रदान (करने का वैदिक गुण) सिखाने के लिए **अस्मत्** हमसे **युयोधि** युद्ध किया, बद्ध किया, अलग किया, **ते** तुमको **भूयिष्ठाम्** पुनः पुनः **नम** नमन **उक्तिम्** कथन **विधेम** (हम) विधान करते हैं, विशेष रूप से धारण करते हैं।।16।।

भावार्थ :- हमें ऐश्वर्य तथा सफलतायें प्राप्त करनी हैं तो श्रेष्ठमार्ग पर चलना होगा। अच्छे मार्ग पर चलते रहने के लिए दिव्य शक्तियों अर्थात् विशेष क्षमतावान् साधन - सम्पन्न लोगों तथा रचनाशील विद्वानों के सहयोग की आवश्यकता है। वेद से दूर होने पर हम इतने अज्ञानी और स्वार्थी होते हैं कि समाज में आदान- प्रदान करते रहने का सद्गुण सिखाने के लिए रचनाशील विद्वानोंको हमारी दुष्प्रवृत्तियों से युद्ध करने जैसा कठिन प्रयास करना पड़ता है। परमात्मा की कृपा से ऐसे धैर्यशील परोपकारी विद्वानों का सहयोग मिलता है, इसके लिए हम परमात्मा को पुनः पुनः नमन करते हैं।।16।।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- अग्ने (अग् - गति करना, आगे जाना, ऊर्ध्व गति होना, अग्रणी होना)। **नय** (नी - ले जाना)। **सुपथा** (सु - अच्छा, सुन्दर, पथ - चलना)। **राये** (रै - शब्द करना, रय् = गति करना, जाना, रा - देना, दान करना)। **अस्मान्** (सर्वनाम)। **विश्वानि** (सर्वनाम)। **देव** (दिव् - तेजस्वी होना, चमकना, प्रशंसा करना)। **वयुनानि** (वे - बुनना, रचना करना, सृजन करना)। **विद्वान्** (विद् - जानना)। **युयोधि** (युध् - युद्ध करना, यु - मिलाना, अलग करना, बाँधना, गूँथना)। **अस्मत्** (अपादान, बहुवचन)। **जुहुराणम्** (हू - आदान-प्रदान करना)। **एनो** (सर्वनाम)। **भूयिष्ठाम्** (अव्यय)। **ते** (सर्वनाम)। **नम** (नम् = नमन करना, सम्मान करना, शब्द करना)। **उक्तिम्** (उक् - उच्-वद् - कहना, समझना)। **विधेम** (वि - विशेष, धा - धारण करना)।।16।।

340. हिरण्मयेन पात्रेण, सत्यस्य अपिहितम् मुखम्। ओम् खम् ब्रह्म ।। 17 ।।

मन्त्रार्थ :- सत्यस्य सत्य का **मुखम्** मुख **हिरण्मयेन** स्वर्णिम **पात्रेण** पात्र से **अपिहितम्** ढका हुआ है। **ओ3म्** ओम् **खम्** सर्वव्यापी **ब्रह्म** बड़ा (सबसे अधिक महान् है)।।17।।

भावार्थ :- सत्य के दर्शन में चमक-दमक ही बाधा है। जिनके पास धन-वैभव है, वे उसकी चमक में खोये हैं तथा साधनहीन विद्वान् सज्जनों के निर्मल हृदय नहीं देख पाते हैं। विद्वान् साधक भी साधनहीनता के कारण अपनी भावना तथा चिन्तन को समाज तक पहुँचा नहीं पाते हैं। समाज और सत्य ज्ञान के बीच वैभव की चमक बाधा बनी रहती है।।17।।

पदार्थ :-मूल (निरुक्त) - हिरण्मयेन (हिरण - प्रकाश होना, दीप्त होना, शब्द करना, ध्वनि होना)। **पात्रेण** (पा - रक्षा करना, पालन करना)। **सत्यस्य** (सत् = होना, सतत होना, निरन्तर होना, सत्य होना, अस्तित्व होना)। **अपिहितम्** (हि - जाना, पाना, प्रेरणा करना, अपि-हि - आच्छादित करना, अन्तर्हित होना, ढकना)। **मुखम्** (मुख - मुख्य होना, जाना, खाना)। **ओम्** (अव्यय)। **खम्** (अव्यय)। **ब्रह्म** (बृह् = वृद्धि होना, अधिक होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, उद्यम करना, बोलना, शब्द करना)।।17।।

341. यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म ।। ओम् खम् ब्रह्म ।। 18 ।।

मन्त्रार्थ :- यो जो **असौ** यह **आदित्ये** अविनाशी **पुरुषः** पुरुष (परम चेतन सत्ता परमात्मा है), **सो** वही **अहम्** मैं (जीव या सृष्टि का कोई अंश) **असो** यह (हूँ)। **ओ3म्** ओम् **खम्** सर्वव्यापी **ब्रह्म** बड़ा (सबसे अधिक महान् है)।।18।।

भावार्थ :- यदि इस चमकदार आवरण को हटा सकें तो सत्य हमारे सामने होता हैं। इस सत्य का साक्षात्कार सम्भव है, स्वाभाविक है, अवश्य हो जायेगा, बस वैभव की चमक का आवरण हटाकर देखना होगा, इस आवरण से मुक्त होना होगा। हम देखते हैं कि जो आदित्य अर्थात् परम चेतन सत्ता परमात्मा है, वही मैं भी हूँ। आत्मा - परमात्मा, जीव- ब्रह्म की एकता का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। यही सत्य है क्योंकि ओम् खम् ब्रह्म अर्थात् ओम् विराट सर्वव्यापक, सबसे बड़ा तथा महान् है। सब कुछ ओम् ही तो है और यही तो परम सत्य है।।18।।

विशेष :- आदित्य अर्थात् अदिति से उत्पन्न, अदिति से सम्बन्धित (अ-दिति, अ - नहीं, दी - क्षय होना, दो - खण्डन करना, अखण्डनीय अविनाशी, अक्षय तथा किसी का खण्डन न करने वाला), अथवा (आदि+ त्य) अर्थात् आदि तत्व के रूप में परम चेतन सत्ता परमात्मा। ओम् परमात्मा का मुख्य नाम है, यह अव्यय है। परमात्मा स्वयम् अव्यय है तो उसका नाम ओम् शब्द भी अव्यय है। ब्रह्म शब्द बृह् धातु से निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है वृद्धि होना, अधिक होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, उद्यम करना, बोलना, शब्द करना। परमात्मा सबसे बड़ा है, सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होकर उससे भी अधिक है। वह हमें उठाता है, गिरने से बचाता है, उद्यम करना, उद्योग करना सिखाता है, उसके लिए प्रेरणा तथा सामर्थ्य प्रदान करता है। वह शब्द करने वाला है। विशेष रूप से वेद को उसकी वाणी, उसका ही शब्द माना जाता है। इसीलिए वेद को शब्द-ब्रह्म तथा परमात्मा का शब्द स्वरूप ही कहा जाता है। वही हमको भी बोलना सिखाता है, वाणी की सामर्थ्य प्रदान करता है। वैदिक साहित्य में परमात्मा का मुख्य नाम ओम् है तथा उसके लिए ब्रह्म शब्द का

प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है।

पदार्थ -मूल (निरुक्त) :- यो (सर्वनाम)। **असौ** (सर्वनाम)। **आदित्ये** (अ-दिति, अ - नहीं, दी - क्षय होना, दो - खण्डन करना)। **पुरुषः** (पुर् = मुख्य होना, अग्रसर होना)। **सो** (सर्वनाम)। **अहम्** (सर्वनाम)। **ओम्** (अव्यय)। **खम्** (अव्यय)। **ब्रह्म** (बृह् = वृद्धि होना, अधिक होना, बढ़ना, बड़ा होना, उठाना, उद्योग करना, उद्यम करना, बोलना, शब्द करना)।**।18 ।।**

इति एकादशः अध्यायः

इति एकादशोपनिषद्

(बृहद् ईशोपनिषद् सम्पूर्ण)

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म ।।

ॐ

स्वामी शरण कृत साहित्य

मो. 9839105629, 8687849004

1. ऋग्वेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य के इस सार-संक्षेप संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य तथा शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण।

(बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

2. सामवेद भाष्य :- सामवेद भाष्य के इस सम्पूर्ण संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द

अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

3. अथर्ववेद भाष्य :- अथर्ववेद भाष्य के इस सार-संक्षेप संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

4. यजुर्वेद भाष्य :- यजुर्वेद भाष्य के इस सम्पूर्ण संस्करण में सन्धियों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

5. वेदायन भाष्य :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का मन्त्रार्थ, पदार्थ, भावार्थ तथा सरस गेय पद्यानुवाद भी दिया गया है। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य तथा शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

6. वेदायन प्रवचन :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का मन्त्रार्थ, पदार्थ, भावार्थ तथा सरस गेय पद्यानुवाद भी दिया गया है। इसके साथ ही इन मन्त्रों पर विस्तृत प्रवचन भी इस पुस्तक में संकलित हैं। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है। सभी के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

7. वेदायन (सरल पाठ, काव्यानुवाद, भावार्थ सहित):- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेदसूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरल पाठ, काव्यानुवाद एवम् भावार्थ। **रु. 100.00**

8. वेदायन (सरल पाठ, काव्यानुवाद) :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेदसूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरल पाठ, काव्यानुवाद एवम् भावार्थ। वेदपाठ तथा उपासना के लिए। **रु. 100.00**

9. वेद सूक्तायन :- चारो वेदों से चुने हुए 15 प्रमुख वेदसूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरल पाठ (छन्द पाठ), मन्त्रार्थ, विशेष भावार्थ-व्याख्या, व्याकरण-सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। **रु. 100.00**

10. यजुर्वेद एकादशी :- यजुर्वेद के अन्तिम 11 अध्यायों का मन्त्रार्थ, पदार्थ, भावार्थ दिया गया है। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य तथा शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

11. चतुर्वेद सरल पाठ :- प्रथम बार प्रस्तुत सन्धियों से मुक्त चारों वेदों का सरल पाठ जन साधारण के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। (बृहद् आकार) **रु. 2500.00**

12. ऋग्वेद सरल पाठ :- ऋग्वेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। (बृहद आकार) **रु. 900.00**

13. सामवेद सरल पाठ :- सामवेद का सम्पूर्ण सरल पाठ

प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। **रु. 500.00**

14. अथर्ववेद सरल पाठ :- अथर्ववेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है।

(बृहद आकार) **रु. 700.00**

15. यजुर्वेद सरल पाठ :- यजुर्वेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। **रु. 700.00**

16. वैदिक धात्वादि कोश :- पाणिनि तथा काशकृत्स्न प्रोक्त धातुपाठों को समाहित कर सम्पूर्ण धातुकोश तैयार किया गया है। उपसर्ग, अव्यय, संख्या, सर्वनाम शब्द भी दिये गये हैं। इसकी सहायता से वेद सहित सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का अर्थ किया जा सकता है। अत्यन्त उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

17. वैदिक शब्दकोश :- वैदिक पदों (शब्दों) का धातुज, व्याकरण-सम्मत प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ। इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत वैदिक शब्दकोश। (वृहद आकार) **रु. 900.00**

18. वैदिक शब्दकोश (लघु संस्करण) :- वैदिक पदों (शब्दों) का धातुज, व्याकरण-सम्मत प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ। इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत वैदिक शब्दकोश। **रु. 200.00**

19. सरल संस्कृत व्याकरण :- व्याकरण के मूल तत्वों पर आधारित इस पद्धति से शब्द रूप, धातु रूप, पाणिनीय सूत्र रटे बिना एक मास में संस्कृत पढ़ना, लिखना, बोलना सीख सकते हैं। दशकों के अनुभव के बाद प्रस्तुत उपयोगी चमत्कारिक व्याकरण प्रणाली। **रु. 95.00**

20. वैदिक इतिहास :- ब्रह्मा व मनु से आरम्भ कर बुद्ध तक का सम्पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास एक पुस्तक में सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। सूर्यवंश की 128 पीढ़ियों का इतिहास प्रथम बार प्रस्तुत किया है। सूर्यवंश, चन्द्रवंश की शाखाओं सहित मनु से भोज तक सम्पूर्ण वंशावली भी दी गयी है। **रु. 200.00**

21. ओम् साधना :- ओम् साधना, वैदिक संस्कृति, वैदिक आध्यात्मिक चिकित्सा, वैदिक योग साधना। **रु. 200.00**

22. चिन्तन प्रवाह :- वैदिक संस्कृति तथा जीवन दर्शन सम्बन्धी चिन्तन। **रु. 500.00**

23. वैदिक विज्ञान :- वैदिक संस्कृति, आध्यात्मिक चिकित्सा, वैदिक योग साधना। **रु. 50.00**

24. युगबोध :- प्रबन्ध काव्य। **रु. 300.00**

25. चेतना :- काव्य संकलन। **रु. 100.00**

26. नवांकुर :- काव्य संकलन। **रु. 20.00**

❖❖ ❖ ❖❖

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म॥

आगामी प्रकाशन योजना

1. वैदिक व्याकरण : पंचपाठी व्याकरण का समयानुकूल प्रस्तुतीकरण। अष्टाध्यायी सूत्रों का अनुवृत्ति सहित प्रस्तुतीकरण, जिससे प्रत्येक सूत्र स्वयम् ही सम्पूर्ण अर्थ स्पष्ट कर सके। व्यापक प्रभाव वाले सूत्रों को महत्व देते हुए, अपवादों को स्पष्ट करना तथा उनकी सीमाओं का स्पष्टीकरण करना। पंचपाठी की अन्य पुस्तकों का भी इसी भाँति सम्पादन तथा उणादि कोष आदि का अकारादि क्रम से प्रस्तुतीकरण।

2. वैदिक महापुराण : पुराण विद्या का व्यापक शोधपरक अध्ययन कर पंच-लक्षणों के आधार पर सम्पादन।

3. वैदिक जीवन : वैदिक संस्कृति तथा जीवन दर्शन के साथ ही वैदिक साहित्य का सम्पूर्ण परिचय।

❖❖ ❖ ❖❖

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म॥

ॐ मन्त्र

(यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः,
सो असौ अहम्, ओ3म् खम् ब्रह्म॥
ओम् खम् ब्रह्म॥

जो आदित्य पुरुष यह, मैं भी हूँ वही॥
ओम् ब्रह्म व्यापक परम॥
ओम् ब्रह्म व्यापक परम॥